घर की आन

सत्य प्रकाश संगर की अन्य पुस्तकें

अवगुण्ठन	कहानी संग्रह
नया मार्ग	,,
अफ्रीका का आदमी	,,
आजादी के बाद	(प्रेस में)

घर की आन

(उपन्यास)

सत्य प्रकाश संगर

सरस्वती प्रकाशन मन्दिर
१२/२८ पटेल नगर, नई देहली

प्रकाशक
सरस्वती प्रकाशन मन्दिर
१२/२८ पटेल नगर, नई देहली

मूल्य ३॥)

मुद्रक
नेशनल प्रेस,
श्रीनगर रोड, अजमेर

परिचय

श्री सत्य प्रकाश संगर भूपाल राज्य के राजकीय कालेज में इतिहास तथा राजनीति के प्रोफ़ेसर हैं। इससे पूर्व वे भूपाल राज्य के उच्च शिक्षाधिकारी रह चुके हैं। संगर हिन्दी ही के नहीं, उर्दू तथा अंग्रेज़ी के भी, ख्याति-प्राप्त लेखक हैं। यद्यपि हिन्दी के प्राङ्गण में पदार्पण हुए, आपको अधिक समय नहीं बीता, परन्तु इस अल्पकाल में, प्रस्तुत् उपन्यास के अतिरिक्त, आपके तीन कहानी संग्रह, "अवगुण्ठन," "नया मार्ग," तथा "अफ़्रीक़ा का आदमी", प्रकाशित हो चुके हैं और एक कहानी संग्रह प्रेस में है। संगर ने अपने कला कौशल से हिन्दी साहित्य में अपने लिये एक आदरणीय स्थान पैदा कर लिया है और इनकी गणना हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठ लेखकों में की जाती है।

हिन्दी के महान लेखकों एवं प्रमुख पत्रिकाओं ने इस तरुण कलाकार का यथोचित सम्मान तथा सादर स्वागत किया है।

उनके विचारानुसार संगर की कहानियों की विशेषता इनकी मौलिकता, स्वाभाविकता तथा रोचकता है। इनकी भाषा अत्यन्त सरल है। हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ लेखक श्री यशपालजी के कथनानुसार संगर आडम्बरहीन भाषा में लिखते हैं जिसके कारण उनकी कहानियों में स्वाभाविक वेग उत्पन्न हो जाने के कारण वे विश्वासोत्पादक बन गई हैं।

संगर ने मानव जीवन का अतीव गहरा अध्ययन किया है। परिणाम-स्वरूप उसके पास अनुभूतियों का एक बहुमूल्य तथा अक्षय कोष एकत्रित हो गया है। उन्होंने इन अनुभूतियों को अपनी व्यक्तिगत पूंजी न बना, इन्हें अपनी कहानियों द्वारा समाज की सम्पत्ति बना दिया है और ये अनुभूतियाँ 'समाज के लिये रसानुभूति का साधन बन गई हैं'। इन लौकिक अनुभूतियों द्वारा अलौकिक सृष्टि की रचना करके कलाकार ने अपनी मर्मज्ञता का सुन्दर परिचय दिया है।

संगर की कहानियों में प्रकृति-चित्रण विशेष रूप से आकर्षक है। 'वे प्रकृति के माध्यम को अपने मन्तव्यों और उस के अनुरूप वातावरण तैयार करने में बड़े सफल उपाय से काम में लाते हैं।'

संगर की रचनाओं में उपमाओं का बाहुल्य उल्लेखनीय है। 'पग पग पर नई उपमायें मिलती हैं। कहीं कहीं तो ये भाव-सौंदर्य को अत्यन्त रोचक एवं प्रभावोत्पादक बना देती हैं।'

हिन्दी में उर्दू मुहावरों का प्रयोग करके कलाकार ने हिन्दी की व्यापकता तथा सामर्थ्य बढ़ाने में बहुत योगदान दिया है। उस की यह देन हिन्दी के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, इस में कोई सन्देह नहीं।

प्रस्तुत उपन्यास में ग्राम समाज तथा पारिवारिक जीवन का स्वाभाविक चित्र अङ्कित किया गया है। कहानी इतनी रोचक और शैली इतनी आकर्षक है कि आदि से अन्त तक पाठक के मस्तिष्क पर बोझिल नहीं उतरती। इस में यथार्थता तथा आदर्शवाद का सुन्दर समावेश है और इस के चरित्र चलते फिरते सजीव स्त्री और पुरुष हैं। भाषा और भाव, शैली और अलङ्कार, सरलता तथा स्वाभाविकता की दृष्टि से संगर का प्रस्तुत उपन्यास अतीव रोचक तथा मनोरञ्जक है।

श्री राहुल सांकृत्यायन के विचारानुसार "भाषा, भाव और टेकनीक सभी दृष्टि से उपन्यास अच्छा और रोचक है।" श्री जैनेंद्रकुमार के कथनानुसार "गाँव का जीता जागता चित्र है।" श्री वृन्दावनलाल वर्मा ने "घर की आन" के विषय में लिखा है, "वास्तविकता के धरातल पर भावों के आकर्षक भवन खड़े किये हैं। संगरजी की भाषा में चुस्ती है, प्रवाह है, घटनाक्रम में कुतूहल है और चरित्र चित्रण के रङ्गों में सबलता है।"

श्री उपेन्द्रनाथ अश्क की दृष्टि में "घर की आन" की सब से बड़ी खूबी इसकी दिलचस्पी है जो वास्तव में एक खूबी

खूबियों का समूह । "संगर की शैली में सरलता और प्रवह-मानता के साथ हास्यव्यंग्य का हलका सा पुट रहता है और इस ने उपन्यास के कुछ स्थल बड़े ही सुन्दर बना दिये हैं।"

—प्रकाशक

"अवगुण्ठन" के विषय में कुछ सम्मतियां

संगरजी की कहानियों में यह बात स्पष्ट और सतह पर ही दिखाई दे जाती है कि वे व्यवसाई कलाकार का श्रमसाध्य परिश्रम नहीं हैं।..............परन्तु कला व्यवसाय की रूढ़ियों से उन्मुक्त होकर भी उनमें स्वाभाविकता की गहराई मौजूद है। अनायास मर्म को छू पाने की चुभन भी उन में है।

व्यक्ति की भावना और कलात्मक अनुभूति व्यक्ति की ही अपनी चीज़ बनकर नहीं रह सकती। संगरजी की ये कहानियां भी प्रकाशित हो जाने पर, केवल उनकी व्यक्तिगत मार्मिक अनुभूति न रह कर समाज के लिये रसानुभूति का साधन बन गई हैं। इन कहानियों की प्रमुख विशेषता इनकी सादगी की शक्ति है।

यशपाल

"अवगुण्ठन" की प्रायः सभी कहानियां रोचक हैं, जिन्हें लेखक ने अपने कलात्मक संतोष के लिये लिखा है। कहानियों के कथानक सीधे साधे हैं, वर्णन सजीव हैं और एक स्वाभाविकता का उनमें समावेश है।

सरस्वती

संगरजी ने यथार्थवादी पद्धति का कल्पनाशील प्रयोग किया है। सभी कहानियां सुपाठ्य, मनोरंजक और संगरजी के उज्ज्वल विकास की पूर्वसूचक हैं।

आल इण्डिया रेडियो (नागपुर)

संगरजी की कहानियां स्वाभाविकता के विशेष गुण से पाठक को अधिक आकर्षित करती हैं। भाषा की सरलता के कारण ये पाठक के मस्तिष्क पर बोझिल नहीं होतीं। संगरजी का कथा प्रारम्भ करने का ढंग निराला है। कहीं वे प्रकृति का संक्षिप्त वर्णन करके पात्र को अवतारण करते है और कहीं पहले ही वाक्य मे पात्र को ले जाते हैं। प्रायः सब कथाओं का आरम्भ ऐसी रीति से होता है कि आपाततः ही पाठक के हृदय में एक कौतुक की उत्पत्ति हो जाती है और कथा के अंत तक यह कौतुक बना रहता है। कौतुक तत्त्व की सृष्टि में लेखक को सर्वनाम शब्दों के द्वारा पात्र का अवतारण करने से विशेष सफलता मिली है और शैली में नवीनता आ गई है।

निस्संदेह लौकिक अनुभूतियों से अलौकिक सृष्टि की रचना कलाकार की मर्मज्ञता का परिचायक होती है।

उपमाओं का बाहुल्य भी विशेष उल्लेखनीय है। पग पग पर नई उपमायें मिलती हैं। कहीं २ तो ये भाव सौंदर्य को अत्यन्त रोचक एवं प्रभावोत्पादक बना देती हैं।

आधुनिक नवयुवकों की विचार धारा का समुचित प्रदर्शन करने में ये कहानियां विशेष महत्व रखती हैं।

भाषा में सौष्ठव लाने के लिये लेखक ने मुहावरों का प्रयोग किया है। इनमें उर्दूपन स्पष्ट झलकता है। संगरजी की यह देन हिन्दी साहित्य के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध होगी।

आल इण्डिया रेडियो (जालन्धर)

मौलिकता के दृष्टिकोण से भी सत्य प्रकाश संगर हिन्दी के गिने चुने मौलिक कहानीकारों में अनायास ही आ जाते हैं।

उनकी प्रस्तुत कहानियां वातावरण प्रधान हैं। एक व्यक्ति के जीवन के एक पहलू पर उसकी अनुभूतियों में पैठ कर एक चित्रण प्रस्तुत किया गया है। इन कहानियों में हमें मिलता है यथार्थता पर भावनाओं का भी कलेवर, किन्तु कहीं भी ये कहानियां स्वाभाविकता से परे नहीं हैं। ये कहानियां इस बात की द्योतक हैं कि संगरजी का मानव जीवन का अध्ययन अति गहरा है। इन कहानियों में प्रकृति चित्रण की विशेषता सब से मोहक है। संगर जी प्रकृति के माध्यम को अपने मंतव्यों और उनके अनुरूप वातावरण तय्यार करने में बड़े सफल तरीके से प्रयोग में लाते हैं। कहानियों के चरमोत्कर्ष (Climax) और अंत, संगरजी के सफल टैकनीक के सूचक हैं।

प्रदीप

सत्य प्रकाश संगर का पहाड़ी जीवन और पहाड़ की प्रकृति से बहुत ही घनिष्ठ परिचय है। प्रकृति वर्णन लेखक ऐसा सुन्दर करता है कि पढ़ते पढ़ते पहाड़ी प्रकृति का चित्र सामने आ जाता है और वहां के साधारण जन की छोटी छोटी बातों को भी वह नहीं भूलता।

रानी

भाषा पहले, बाद में व्याकरण, इसी तरह कहानी और उसके तन्त्र की बात है। प्रस्तुत पुस्तक की कहानियों का अपना तंत्र है या यों कहना होगा कि इनमें लेखक की अपनी शैली है। यह शैली की मौलिकता ही इसकी विशेषता है जिसकी एक अजीब छाप पाठक के दिमाग़ पर अङ्कित हो जाती है।

इनका वह प्रकृति-वर्णन, हिमालय की तराइयां, चोटियां, बर्फ़ का आवर्ण आदि इन सब में थोड़ी सी चूक दूर नीचे

खंदक में ले जा सकती है। किन्तु लेखक की सहज, स्वाभाविक सतर्कता सबको सुरक्षित रखे हुये है। इसी में लेखक की चतुराई है। इसमें ऐसा लगता है कि लेखक बर्फ से ढकी इन पहाड़ी चट्टानों का निवासी है।

कहानियों की भाषा रोजमर्रा के मुहावरों से भरपूर, सहज गति लिये हुए बोलचाल की फबती हुई भाषा है। प्रसंगानुकूल अंग्रेजी, उर्दू शब्दों का प्रयोग किया गया है जो शायद ही किसी को खटकेगा।

राष्ट्रभारती

श्री संगर अब तक उर्दू में कहानियां लिखा करते थे। हिन्दी के क्षेत्र में आने पर वह उर्दू के मुहावरों और शैली को भी साथ ही ले आये, जो निश्चय ही हिन्दी की व्यापकता को बढ़ाने में सहायक होगा।

इन कहानियों में प्लाट या कथानक को बाँधने की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया है, लेकिन इस कमी को लेखक ने काल्पनिक उड़ानों, भावनाओं के सुन्दर व प्रभावशाली दिग्दर्शन व मंजी हुई भाषा से पूरा कर दिया है। जो कुछ लेखक कहता है, वह स्वाभाविक रूप से पाठक के मर्म को छू लेता है।

एक बात विशेष रूप से आकृष्ट होती है, और वह है लेखक की उपमा देने की प्रतिभा।

सरिता

"नया मार्ग" के विषय में कुछ सम्मतियां

संगरजी की "नया मार्ग" शिर्षक कहानियां हिन्दी की अन्य कहानियों के एक दोष से मुक्त हैं। हम हिन्दी लेखकों का यह

दोष या कमज़ोरी है कि हमारी बोल चाल की भाषा में और लिखने की साहित्यक भाषा में बहुत अन्तर रहता है। हिन्दी को लिखने की भाषा बनने का सौभाग्य बहुत पुराना नहीं है। इस लिये उसके मंज पाने में कुछ अड़चनें आ रही हैं। संगर ने इस अड़चन को मिटाने में बहुत योगदान दिया है। इसी बात को दूसरे शब्दों में दुहराया जा सकता है कि "नया मार्ग" की कहानियां आडम्बरहीन भाषा में लिखी गई हैं। आडम्बर का अमलान होने के कारण इनमें स्वाभाविक वेग है और वे विश्वास उत्पन्न करती हैं।

जान पड़ता है लेखक ने कहानियां केवल आत्मतोष के लिये लिख डाली हैं। परन्तु आत्मतोष या स्वान्त: सुखाय का सिद्धान्त समाज के प्रति जिस उपेत्ता का द्योतक है वह संगर की कहानियों में नहीं है। इन कहानियों की सब से बड़ी सार्थकता यह है कि ये स्वाभाविक रूप से सप्रयोजन हैं। ऐसा जान पड़ता है कि लेखक समाज उद्धार का बीड़ा उठाये बिना या ऐसी सेवा का डंका पीटे बिना समाज की विषमताओं, उत्तरविरोधों को एक सजग कलाकार के रूप में अनुभव करता है और आडम्बरहीन भाषा में कह डालता है। यदि इसी ढंग की और कहानियां लिखी जायँ तो हमारी साहित्य की भाषा और साहित्य के उद्देश्य दोनों ही समस्याओं के सुलझाव में काफ़ी सहयोग मिलेगा।

यशपाल

संगरजी की कहानियों में यथार्थवाद का सुन्दर समन्वय पाया जाता है। आपने मानव को नज़दीक से देखा और परखा है। इसलिये मनोवैज्ञानिक चित्र खींचने में आप विशेष रूप से सफल हुये हैं।

प्रदीप

पहिला परिच्छेद

अमानतपुर, नगर से दस मील की दूरी पर एक छोटा सा गांव था। वहाँ की आबादी सोलह सौ पचास थी। वहाँ के निवासी *अधिकतर किसान थे, और अपनी अपनी भूमि में स्वयं हल* चलाते थे। सारे भारतवर्ष की भाँति यहाँ भी भूमि का विभाजन एक जैसा नहीं था। किसी के पास चालीस एकड़ भूमि थी, तो दूसरे के पास केवल चार ही और तीसरे के पास केवल एक। एक व्यक्ति के अतिरिक्त शेष सभी व्यक्ति खेतों में काम करते थे। वह व्यक्ति था ज़मींदार। बड़ा ज़मींदार जिसके पास पाँच सौ एकड़ भूमि थी। परन्तु उसकी सारी ज़मीन किसी दूसरे ग्राम में थी, यद्यपि वह अमानतपुर ही में रहता था। अमानतपुर के सारे किसान अपने आपको ज़मींदार कहते थे। किसी का साहस न था कि उन्हें किसान कह सके। प्रत्येक किसान ज़मींदार की सी अकड़ रखता। अपने सम्मान के लिये वह कैसा भी बलिदान कर सकता था।

उन्हें प्राणों का कोई मूल्य न था, और प्राणों पर खेल जाना उनके लिये एक साधारण बात थी। यह नहीं कि वे मृत्यु से डरते नहीं थे। जब भय का अवसर आता तो वे अत्यन्त डर भी जाते थे। परन्तु अधिकतर मान के प्रश्न पर वे मृत्यु को एक अतिथि समझते थे।

इन जमींदारों के अतिरिक्त वहाँ कुछ महाजनों के भी घर थे। ये लोग कुछ काम नहीं करते थे। परन्तु बेकार कभी नहीं रहते थे। जैसे तालाब के पास बगुले अवश्य मिलते हैं, लगभग इसी प्रकार ये लोग भी गाँव में थे। बगुलों का सम्बन्ध मछलियों से होता है, इनका किसानों से था। कहते हैं किसी समय में इन महाजनों के पास चांदी के कुछ टुकड़ों के अतिरिक्त और कुछ न था। इन्हें यह बात समझ में आगई कि ये टुकड़े बड़े क़ीमती हैं, यदि इनका ढङ्ग से प्रयोग किया जाय। निदान उन्होंने इन्हें उचित ढङ्ग से प्रयोग करना आरम्भ कर दिया। नत्थासिंह को लड़की की शादी के लिये पचास रुपये की आवश्यकता थी। वह दौलतराम महाजन के पास पहुँचा। उसे कष्ट में देखकर लालाजी का दिल पसीज गया, और उन्होंने उसे तुरन्त पचास रुपये देदिये। देते समय यह पूछा, "कब तक लौटाओगे?" उत्तर मिला "हाड़ी में।" हाड़ी में दो तीन मास का समय शेष था। लालाजी बोले, "देख, तू अपना ही आदमी है, अब तुझ से ब्याज आदि क्या लूँ। केवल दस रुपये लूँगा, और वह अभी लिए लेता हूँ, क्योंकि बाद में तेरी इतनी ही बचत होगी"। और यह कह कर लालाजी ने चालीस रुपये उसके

हाथ पर रख दिये। फिर बोले "याद रखने के लिये इन रुपयों को इस बही पर लिखे लेता हूँ, तू ज़रा अपना अंगूठा लगादे"। कितनी सुन्दर होती है यह बही, लाल-लाल रङ्ग की! नत्थासिंह ने बही पर अंगूठा लगा दिया, और रुपया लेकर घर आगया और विवाह रचाया। उस अवसर पर उस ने लालाजी को भोजन का निमन्त्रण दिया। उनके घर भी मिठाई पहुँचाई। इससे उनका दिल काफ़ी पसीजा, और परिणामस्वरूप जब नत्थासिंह हाड़ी के समय पर सारा रुपया न चुका सकने के लिए क्षमा माँगने आया तो लाला दौलतराम ने उसे क्षमा कर दिया। उससे बीस रुपये वसूल कर लिये और शेष फिर देने को कहदिया। "आखिर इतनी जल्दी भी क्या थी?" इसके पश्चात् सावनी आई, फिर हाड़ी और फिर सावनी! एक नहीं, बीस ऐसी हाड़ी और सावनी आईं। नत्थासिंह हर फ़सल पर रुपये अदा करता रहा, साथ ही कभी गुड़, शक्कर कभी तिल्ली, गेहूँ, कभी ज्वार और तेल लालाजी को पहुँचाता रहा। लालाजी ने कभी 'न' नहीं की। फिर जब नत्थासिंह मरगया तो इस ऋण का बोझ उसके लड़के मन्नासिंह पर पड़ा। वह जवान था, उसने भी अनेकों हाड़ियाँ और सावनियाँ देखीं और प्रत्येक अवसर पर सेठजी का ऋण चुकाता रहा। अब दौलतराम लाला से सेठ बन गये। उन्होंने ऋण देने का घेरा कभी छोटा नहीं किया था। शादियाँ बन्द न हुईं, बही समाप्त न हुई, और लालाजी ने दयालुता न छोड़ी। दूसरों का दुःख उनका अपना दुःख ठहरा। यह बात अलग थी कि बाद में दूसरों का दुःख उनका

सुख सिद्ध होता। परन्तु यह वाक्य असङ्गत है। प्राय: ऐसा होता कि सेठजी ऋणियों को उचित परामर्श देते। अब इतने बड़े ऋण को एकदम चुकाना तो कठिन था। "इतना ऋण कहाँ से बढ़ा सेठजी ?" ऋणी पूछता। "बापू तो कहता था कि पचास रुपये लिये हैं, और पाँच सौ दे चुके हैं।" लालाजी को इस पर बिलकुल क्रोध न आता, क्योंकि उन्होंने क्रोध को अपने वश में कर रखा था। वह केवल यह कहते-"बेटा तेरी भूल है। तेरा बापू तुझे झूठ बतला गया। उसने पचास रुपये नहीं पाँच हज़ार रुपये लिये थे।" "पाँच हज़ार!" वह चीख उठा। इस पर सेठजी को अवश्य दुःख हुआ। क्या वे अपनी ओर से ही ऐसा कह रहे थे ? उन्हें झूठ बोलने की क्या पड़ी है ? "आख़िर दोनों समय सन्ध्या करता हूँ। शिवालय जाता हूँ। चन्दन घिसकर लगाता हूँ, और इस पर भी तुम हमें झूठा कहते हो ? क्या तुम्हें ईश्वर का भी डर नहीं ?" अब बतलाइये चौधरी साहब ! यही नहीं। सेठजी कहते, "मान लीजिये यदि हम झूठ कहते हैं तो क्या हमारी बही भी झूठ कहती है। माना कि बही हमारी है और उस पर लिखा भी हमने अपने हाथ से है, परन्तु हस्ताक्षर तो हमारे नहीं। यदि हम पर इतना विश्वास नहीं तो बही भी भविष्य में स्वयं लिख लिया करो।" परन्तु 'अब पछताये होत का ?' अब स्वयं कैसे लिखें ? स्वयं न पढ़े, और न बाप दादा पढ़े, और अब क्या पढ़ेंगे ? अब तो बच्चों को पढ़ायेंगे। पास ही पाँच मील दूर भरतपुर में प्राइमरी स्कूल है, वहाँ भेजेंगे। फिर सेठ जी एक उपाय सुझाते इस आपत्ति

से छुटकारे के लिये चार कनाल भूमि हमें देदो। कैसी उचित बात थी! उसे मानने में उन्हें कोई आपत्ति न होती।

तो इसी प्रकार इस समय तक जबकि हमारी कहानी प्रारम्भ होती है, महाजन लोग कुछ भूमि के स्वामी बन बैठे थे। यदि थोड़ी सी बुद्धि भी काम करती हो, तो कुछ चाँदी के टुकड़ों से क्या नहीं कर सकते, यह बात महाजनों ने सिद्ध करके दिखादी। अब उनके अपने ठाठ थे। वे उन खेतों को आधे मूल्य पर उन्हीं किसानों को खेती के लिये देदेते। उनका निर्वाह बहुत भली प्रकार से उन जमीनों पर चलता। इसके अतिरिक्त व्यापार भी उन लोगों के हाथों था। फ़सल के अवसर पर वे सारे का सारा अनाज किसानों से खरीद लेते। कभी कभी तो पूरी फ़सल ही की बोली बोल देते। किसान को नक़द रुपये की अत्यन्त आवश्यकता होती। वह चाँदी के रुपये सामने देखकर कम मूल्य पर भी अपनी फ़सल साहूकार के हाथ बेंच देता। अमानतपुर के महाजन आस-पास के गाँवों का सारा अनाज समय पर निकाल कर उसे एकत्र कर लेते। फिर मण्डी लेजाकर उसे बेंच देते। वहाँ से सौदा लाते और दूकान में रखते। सौदे को उन किसानों को बेंचते। उनकी दूकान पर क्या न मिलता था? हलदी, प्याज से लेकर मलमल, गबरून तक, गाँव की प्रत्येक आवश्यकता वहीं पूरी होती। एक सेठ तो अन्य सभी व्यक्तियों से अधिक बुद्धिमान था। वह अपने पास पुरानी चीजें रखता जैसे खुम्ब, निबौली, बेर आदि। बे-मौसम की चीज नहीं मिलती, परन्तु उसकी दूकान से मिल जाती।

औषधि आदि के लिये ये पुरानी वस्तुएँ बड़े काम की होतीं। जब किसी अन्य स्थान से न मिलतीं तो इसकी दूकान पर मिल जातीं, और वह डटकर दाम वसूल करता।

इनके अतिरिक्त दूसरी जातियों के थोड़े थोड़े लोग भी वहाँ बसते थे। तीन चार दर्जियों के घर थे। वे लोग नक़द पैसा लेकर नहीं सीते थे, अपितु फ़सल पर किसानों के घरों से अनाज ले आते थे। हाँ, महाजनों के घरों से इन्हें नक़द पैसे मिलते थे, और बड़ी सस्ती सिलाई होती थी, अर्थात् नगर की अपेक्षा। आज भी नगर का साधारण दर्ज़ी बच्चे के गरम कोट की सिलाई आठ रुपये लेता है, परन्तु अमानतपुर में आप वही कोट दो रुपये में सिला सकते हैं। नाइयों के भी चार पाँच घर थे, और कहारों के भी। नाई और कहार भी नक़द वसूल न करते, फ़सल के अवसर पर अनाज ही लेते। नाई के बिना गाँव का जीवन ही व्यर्थ है या यों कहिये कि नाई के बिना गाँव उन्नति नहीं कर सकता। यदि वह न हो तो न विवाह हों और न बच्चे पैदा हों, और गाँव समाप्त होजाए। लड़के और लड़कियों के लिये उनका होना कितना आवश्यक है? सारा गाँव नाइयों के तीन चार घरों में बँटा हुआ था। प्रायः लोग सिरों पर बाल रखते थे, परन्तु वे डाढ़ी के बाल कटवाते रहते थे, आठ दस दिन में एक बार। फ़सल के अवसर पर दो महीने में एक बार नाई की आवश्यकता पड़ती। फिर वह अपने देशी औज़ार लेकर बैठता, और अपनी चिलम की राख अपने पास रख लेता

और कहता–"चौधरी ! औज़ारों का मामला है, ख़ून को रोकना मेरे बस का रोग नहीं, परन्तु राख फिर भी बड़े काम की वस्तु है"। और जब उसके उस्तरे से जख़्म होकर ख़ून की धार गालों के नीचे बहने की कोशिश करती तो वह राख को उठाकर उन घावों पर रखदेता। कुछ मिनटों में ख़ून अपने आप रुक जाता। विवाह के अवसरों पर नाई कितना महान् कार्य पूरा करते। नौ-जवान उसे घूँस देते, और अनेक प्रकार के बहानों से अपनी होने वाली पत्नी की सुन्दरता के विषय में पूछते। कभी कभी उसके साथ भेष बदलकर जाते और दर्शन भी कर आते। कभी कभी उन नवयुवकों का सन्देश भी लेजाते। नवयुवतियाँ, द्वार की ओट में खड़ी होकर, नाई को अपने माता-पिता से बात चीत करते सुनतीं। वह लड़के के माता-पिता, घर-द्वार, और सम्बन्धियों आदि का विस्तार से वर्णन करता। वह बेचारी सांस रोके, द्वार से लगी सब सुनती, परन्तु वह मुख्य बात सुनने की प्रतीक्षा करती। इन सब बातों से उसे कोई प्रसन्नता न थी। फिर नाई लड़के के बारे में कहता–"बड़ा सुन्दर युवक है, मालिक वह तो। हमारे गाँव में कोई लड़का उस जैसा सुन्दर नहीं।" लड़की का दिल तेज़ी से धड़कने लग जाता। खुशियें आकर उसमें समा जातीं, और वह शीघ्र ही इस समाचार को अपनी सहेलियों में पहुँचाती। वे उससे छेड़ख़ानी करतीं। नाई लड़के के माता-पिता से यह कहता कि लड़की अति सुन्दर है। उस जैसी सुन्दर लड़की इस इलाक़े में मिलना कठिन है। इस प्रकार उसकी दृष्टि में प्रत्येक

विवाह-योग्य लड़की और लड़के बहुत सुन्दर थे। उसने कभी किसी की बुराई नहीं की। इसलिये नहीं कि बुराई करना उसके स्वभाव में ही न था, अपितु इसलिये कि उसे अपनी जीविका का ध्यान था। और यदि किसी अन्य व्यक्ति ने किसी ऐसे वर की प्रशंसा की जो उसे स्वयं पसन्द नहीं, तो न केवल वह उस लड़के-लड़की के पचास दोष बखानता अपितु यह भी बतलाता कि उसकी माँ डोमनी के पेट से पैदा हुई है और उसका बाप उसे भगाकर लाया है। उसका बाप, अपने बाप का सगा बेटा नहीं था। उन्होंने अपनी एक लड़की को बेचा है, वह यह करते हैं और वह करते हैं। कहिये, अब कौन वहाँ सम्बन्ध करता ?

इसके अलावा सुनार, लोहार और बढ़ई लोगों का ग्राम में होना आवश्यक होता है। इनके बिना ग्राम का व्यावसायिक जीवन अपूर्ण रहता है। कुछ घर रावभाटों के थे। ये लोग शादियों पर बाजा बजाते और नक़लें करते। यही इनका प्रमुख कार्य था। वे फ़सल पर अनाज लेते। मेहतरों के दस बारह घर थे। आरम्भ में, वास्तव मे एक ही भङ्गी था। यह सब उसी का परिवार था।

चमार ग्राम के एक पृथक् भाग में रहते थे। इनका निवास स्थान अलग था। वैसे तो भङ्गी भी जुदा ही थे। इन लोगों को कोई छू न सकता था। और यदि भूल से कभी कोई छू जाय, तो उसे नहाना पड़ता था। सर्दी के दिनों में उसे पानी के छींटे मार कर शुद्ध कर लिया जाता। यह बात अलग थी कि लड़कियों की कमी

के कारण बहुत से जमींदारों के छोकरे क्वाँरे ही रह जाने के कारण, इन लोगों की लड़कियों और स्त्रियों से छेड़खानी करते, और उनकी मार-पीट भी करते, परन्तु यह अपराध क्षम्य था। इसलिये कि चमारों को जमींदारों के विरुद्ध बोलने का साहस न था, जमींदार एक दूसरे के विरुद्ध कुछ न कह सकते। साहूकार व्यर्थ के झगड़े में पड़ना कभी पसन्द न करते। इसमें भी क्या पैसे मिलने थे ? शेष व्यक्तियों में साहस ही न था।

न तो यहाँ कोई सिनेमा था, न थियेटर। फिर नगर से दूर होने के कारण लोग प्राय: खेल तमाशे से बचे रहते, परन्तु इस अभाव को पूरा करने के लिये उन्होंने दूसरे ढङ्ग निकाल लिये थे। प्रति वर्ष होली के अवसर पर वेश्याओं का नाच होता। होली से पूर्व मीरासी गाँव के द्वार की छत पर खड़ा होकर ढोल बजाना आरम्भ करता। फिर लोग चन्दा इकट्ठा करके समीप के नगर से वेश्याओं को लाते। दस बारह दिन यह काम रहता, लोग स्वयं स्वांग रचाते। मुक़द्दमे लड़ना भी एक विशेष कार्य था। थोड़ी आबादी के होते हुए भी अमानतपुर सारे जिले में प्रसिद्ध था। जिला कोर्ट के वकील, मजिस्ट्रेट, जज इसके नाम से परिचित थे। कोई ऐसा दिन न था, जब अमानतपुर का कोई मुक़द्दमा अदालत में न हो। पहिले तो यह कार्य केवल महाजनों तक सीमित था, परन्तु अब वह केवल किसी एक वर्ग का सर्वाधिकार न रह गया था। भला कब तक कोई किसी को ऐसी नियामत से बचा सकता ? निदान बात-बात पर मुक़द्दमेबाजी चलती। कुछ ऐसे

भी मनुष्य थे जिनका पेशा एक व्यक्ति को दूसरे के विरुद्ध उकसा कर, लड़ाई कराना था। फिर वे दो दलों में बँटकर दोनों व्यक्तियों को मुक़द्दमे के लिये उकसाते, आधे एक ओर से गवाही के लिये जाते, आधे दूसरी ओर से। कुछ लोगों ने तहसील के कुछ वकीलों से निजी सम्बन्ध जोड़ रखा था, और वे उनको मुक़द्दमे देकर उनसे कमीशन प्राप्त करते।

एक विशेष कार्य था प्रतियोगिता का, किसी वस्तु में भी क्यों न हो। ऐसा भी होता कि महीनों गाँव में शाक-भाजी देखने को न मिलती। जमीदारों के गाँव में उन दिनों वैसे ही सब्जी बोना अपमान-जनक समझा जाता था। बाहर से भी कोई न लाता कि सम्भवतः बिके या न बिके। तब गाँव वाले बातें करते कि अब तो सब्जी अवश्य आना चाहिये। सन्तराम झीवर अपनी स्त्री का एक चाँदी का गहना बेंच कर सब्जी का काम शुरू करता। वह बैंगी लेकर शहर जाता और उसमें मौसम के अनुसार शाक लाद लाता। खूब बिक्री होती, हाथों-हाथ सब्जी बिक जाती। अब सब्जी का बिकना या लोगों को एक नई वस्तु का मिलना कोई बड़ी बात न थी। लेकिन सन्तराम की इतनी बिक्री को सहन करना बहुत बड़े दिल का ही काम था। और गाँव में उसकी जाति में या उसके मित्रों में ऐसा कोई न था जिसके पास बड़ा दिल हो। पाँच सात दिन के बाद एक अन्य व्यक्ति सब्जी लाना आरम्भ कर देता, फिर दूसरा, फिर तीसरा। दो सप्ताह में जहाँ पहिले आलू के दर्शन होना कठिन था अब वहाँ आलू की मण्डी

लग जाती। स्पेंसर के "survival of the fittest" सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक दूकानदार दूसरे को निकालने का प्रयत्न करता। इसका उपाय एक था, क़ीमतों में कमी करना। सन्तराम चिल्लाता "चलो आलू नौ आने सेर," भगत रामेश्वर चिल्लाता "पौने नौ आने सेर"। महताबचन्द कहता "साढ़े आठ आने" और रामकिशन बोलता "सवा आठ आने", फिर चक्कर चलता और सन्तराम आठ आने से शुरू करता। चौथे आदमी तक आकर मूल्य में अन्तर पड़ता। फिर तीसरा चक्कर और फिर चौथा। अब इन चारों को उकसाने वालों की कमी न होती। उस छोटे से गाँव के छोटे से बाजार में ग्राहकों का तांता बँध जाता। वे ख़रीदते तो किसी से नहीं, केवल पूछते जाते। "क्यों भाई, सन्तराम ने छः आने भाव कर दिया, तुम्हारा क्या ख्याल है ?" इसी प्रकार पूछ-पूछ कर वे सब को उकसाते और अन्त में भाव पाँच आने सेर पहुँच जाता। और सच यह था कि ये लोग छः आने सेर के हिसाब से खरीद कर लाते थे। पाँच आने वाले के सब आलू बिक जाते। अब गाँव में जब एक आदमी पाँच आने सेर आलू बेंचे तो चाहे इसके सब आलू समाप्त हो जाएँ, फिर भी लोग दूसरे से नहीं लेंगे। अतएव दूसरों की सब्ज़ी न बिकती। वह सड़ने लग जाती। अगली बार इन्हें सब्ज़ी लाने की हिम्मत न होती। जिसकी बिकती वह इतने घाटे पर बिकती कि वह दूसरी बार लाने का नाम न लेता। इसके बाद सब्ज़ी लाने का कार्य समाप्त हो जाता। यही हाल हलवाई का था। कभी एक भी हलवाई की

दूकान न होती कभी तीन लग जातीं। फिर उनकी होड़ चलती। गाँव में होड़ के ढोल पिटते, परन्तु जब तक ढिंढोरे पीटने वाले लौटकर आते मिठाई के भावों में काफी अन्तर हो जाता। क्योंकि मुकाबला प्रति सेकिन्ड तेज़ होता जाता। तीन रुपये सेर वाली मिठाई डेढ़ रुपये सेर बिकने लगती। दूसरे व्यक्ति की मिठाई न बिक सकती इसलिये घाटा उठाता। परन्तु हलवाई सब्ज़ी वाले से चालाक होते, वे एक बार घाटा उठाकर दूसरी बार निकाल लेते। असली घी के स्थान पर वह वनस्पति का प्रयोग आरम्भ कर देते। और खांड के स्थान पर गुड़। और दाव लगते तो वे तेल भी चलाते। अब गांव वाले कहाँ परखें इन छोटी-छोटी बातों को, उन्हें तो सस्ते भाव से मतलब था।

एक और भी काम था। गाँव में दो चार आदमी ऐसे थे जैसे कि प्रत्येक गाँव में होते हैं। जो कि कोई न कोई दिमाग़ी पुर्ज़ा ढीला होने के कारण प्रतिदिन विचित्र बातें करते हैं। रहीम मीरासी व्यापार करता था। महाजनों को रुपया कमाते देख, उसके मुँह में पानी भर आया, और उसने बकरियों का व्यापार करना आरम्भ किया। मीरासी को वैसे तो व्यापार से कम ही रुचि होती है, और फिर उसके ऊंच-नीच से एकदम अपरिचित होता है। बकरियों के बारे में उसकी जानकारी भी न थी। इस प्रकार जो बकरी वह दस रुपये में लाता दो मास के पश्चात् उसका व्यय उठाकर उसे सात आठ रुपये में बेंच देता। वह स्वयं चाहे बेंचना पसन्द करता या नहीं, परन्तु लोग उसे ऐसा करने पर

उसे विवश कर देते। सन्ता दर्जी अपना निजी काम छोड़ कर दुकानदारी आरम्भ करता। उसका पुर्जा अधिक ढीला था और दूसरे वह गरीब था। अतः उससे अधिक मज़ाक़ किया जाता। कभी-कभी कोई बाहर का आदमी गाँव में फँस जाता तो उसको उल्लू बनाया जाता।

इसका एक विशेष कारण यह था कि गाँव में एक मुख्य दल बिलकुल बेकार था। यह दल किसी विशेष फिरके से सम्बन्ध न रखता था। यह गाँव के उन लोगों पर निर्भर था जिनके पास खाने को तो था परन्तु काम न था। इस दल की सरदारी कुछ पढ़े-लिखे लोगों के हाथ में थी। अधिकतर इस पार्टी में भी आपस में सिर-फुटव्वल रहता था। लेकिन इनके गिरोह बने हुए थे। कभी एक गिरोह का प्रभाव रहता, कभी दूसरे का। भगतसिंह, चेलाराम, दौलतसिंह और सब्बूराम का नाम उनमें प्रमुख था। प्रायः इन गिरोहों में फौजदारी की नौबत आजाती। वे तलवारें निकाल कर उलझ पड़ते और जय-घोष लगाते हुए एक दूसरे पर टूट पड़ते। घमासान लड़ाई होती। एक-आध मरजाता। पाँच सात सख्त घायल हो जाते। दूसरों के हल्की चोटें आतीं। पुलिस आती। वकीलों के घर खुशियें होतीं। उनके मुन्शी मिठाई बाँटते, और गाँव में काफी देर इस बात की चर्चा रहती। फिर सजाएँ होतीं। अपीलें होतीं और कुछ समय के लिये लोग इधर से हटकर अपना ध्यान अन्य कामों की ओर लगाते। और फिर वही बात।

इन्हीं कारणों से लोगों में फूट थी। कुटुम्बों की पुरानी दुश्मनी और पुराने द्वेष चले आरहे थे। बाप के मरने के बाद लड़के उन वैरों को सम्पत्ति में पाते। कभी कभी प्रकट रूप से ये द्वेष दबे से प्रतीत होते परन्तु अन्दरूनी तौर से वे तेज़ी से चलते रहते। दूसरे गाँव वालों के द्वारा वे अपने वैरियों से बदला लेने से न चूकते। दूसरे गाँव के मुक़ाबले में वे कभी इकट्ठे न होते अपितु बदला लेने का यह उन्हें स्वर्ण-अवसर प्राप्त होता। यह अवसर अप्रैल मास में प्राप्त होता जब कि गेहूँ की फ़सलें काटते। उन दिनों एक गाँव वाले दूसरे गाँव वालों को फ़सल काटने के लिये निमन्त्रण देते। इसे वे 'आवत' कहते थे। एक गाँव के किसान टोली बनाकर सायङ्काल दूसरे गाँव पहुँचते और सारी रात और दूसरे सारे दिन खेतों में गेहूँ काटते। देखते देखते खेत कट जाते। फिर रात्रि को इन मेहमानों का सत्कार होता। उस दावत में केवल एक वस्तु परोसी जाती, और वह थी घी। मामूली सी खाँड मुँह में डालकर ये लोग घी के बर्तन को मुँह पर लगाते और उसे गट-गट कर पी जाते। जैसे घी नहीं, शर्बत पी रहे हों। घी मुक़ाबले पर पिया जाता। फिर सारी की सारी टोली अपने स्वागत करने वालों को अपने गाँव आने का निमन्त्रण देकर रात के समय वापिस लौटती। यह टोली कभी भी ख़ामोशी से घर न लौटती। ये लोग गाते बजाते शोर मचाते आते। ये अपने देहाती गाने गाते। जिनको वे अपनी भाषा में 'बोली' कहते। अधिकतर बोलियाँ गन्दी होतीं, लेकिन उन्हें उचित समझा जाता। मार्ग में

कई ग्राम पड़ते। वहाँ आकर बोलियाँ और भी तेज़ होजातीं। अमानतपुर के कुछ पढ़े-लिखे आदमी मार्ग के लोगों को उभारते कि उनके गाँव के पास आकर ऐसी गन्दी गालियाँ नहीं सहन करनी चाहियें। वे टोली के कुछ आदमियों के कानों में भी फूँक मार देते। मार्ग के गाँवों के लोग टोली को ललकारते, शरारती लोग उनकी ललकार का उत्तर देते और सारी टोली को उभारते। देखते देखते युद्ध आरम्भ हो जाता। शरारती लोग चुपचाप खिसक आते और साथियों को खूब मार पड़ती। दूसरे दिन घायल लोगों को छकड़ों पर लाद कर लाते।

ग्राम में मन्दिर भी थे। यह मन्दिर मनुष्यों के लिये नहीं, जातियों के लिये बने थे। एक था महाजनों का मन्दिर, दूसरा सुनारों का, तीसरा दर्जियों का, चौथा काश्तकारों का। किसी एक मन्दिर में दूसरी जाति के लोग कम ही जा सकते थे। वैसे तो एक जाति वाले भी अपने मन्दिर में कम ही जाते थे। उन्हें अपने कामों से अवकाश ही नहीं मिलता था। जो थोड़ा बहुत अवकाश मिलता वह झगड़ों और मुक़द्दमों में व्यतीत हो जाता। हां, रात को मन्दिरों में दिये जरूर जलाये जाते। आरती के बिना ही दिये जलते। जिस गाँव के लोगों के हृदयों के दिये बुझे रहते हों, वहाँ मन्दिरों में दिये जलाने से देवताओं को भी क्या प्रसन्नता होती है? इसी कारण ब्रह्मा, विष्णु, शिव या ठाकुरजी कोई भी प्रसन्न न दिखाई देते और उनकी प्रसन्नता की झलक ग्राम में दिखाई न देती।

दवा-दारू के लिये लोगों को बड़ी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता। लेकिन वे ऐसे सज्जन थे कि उन्होंने कभी इस दुःख को मुँह पर लाने की आवश्यकता न समझी। भारतवर्ष का देहाती इस दृष्टि से गर्व कर सकता है कि कठिन आपत्तियों में भी वह शिकायत मुँह पर नहीं लाता। मार खाने, गाली खाने, ताने सहने, दरिद्रता का जीवन व्यतीत करने का उसका ऐसा स्वभाव बन गया है कि वह प्रत्येक दशा को ईश्वरी-देन समझता है। भाग्य ने इस स्थान पर उस पर बड़ी कृपा की है। वह भाग्य पर इस सीमा तक विश्वास करने लग गया है कि बीमारी के आने पर भी वह इतना दवा-दारू में विश्वास नहीं रखता, जितना जादू-टोनों में। चिकित्सा के स्थान पर वह जन्त्र-तन्त्र में अधिक भरोसा रखता है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह केवल उसका अपराध है। सम्भव है कि यह बात ठीक हो। हमारे उस समय के शासकों ने कम से कम संसार को यही बतलाया। यह लोग मौन होकर लगान देते रहे। दुर्भिक्ष में भी, फसलों के नष्ट होने पर भी, महाजनों से उधार लेकर भी और लड़कियों के गहने बेंच कर भी उन्होंने लगान चुकाया। कुछ किसान तो इतने राज्य-भक्त सिद्ध हुए कि अपने शासकों के लिये उन्होंने लड़कियों को बेचकर भी भूमि-कर अदा किया। सरकार ने जी खोलकर उसका बदला दिया। अंग्रेजी सरकार में अन्य दोष हों तो हों, एक नहीं था। वह हस्तक्षेप की पालिसी में विश्वास नहीं रखती थी। उसने ग्राम वासियों को पूर्ण स्वतन्त्रता दी। बीमार पड़ने की, मरने की, और

इन राजनैनिक नेताओं को देखिये कि ऐसे भले शासकों के विरुद्ध अकारण शोर मचाते रहे। अब अंग्रेजी राज्य के वरदानों को गिनने बैठें तो पृष्ठ के पृष्ठ लिखे जासकते हैं। सड़कें, पुल, औषधालय, पाठशाला, कालेज, मोटरगाड़ी, हवाई जहाज़, आखिर कहाँ तक गिनते जाँय। परन्तु भारत की पुरानी सभ्यता केवल देहातों में ही पाई जाती है। हस्तक्षेप न करने की नीति पर आचरण करते हुए उन्होंने इस वर्तमान समय के आविष्कारों को गाँवों तक पहुँचने ही नहीं दिया। इसका गाँवों पर स्वास्थ्यप्रद प्रभाव पड़ा। मामूली सा सिर दर्द होने पर नगर के निवासी और विशेष कर धनाढ्य पुरुष डाक्टर के पास भागते जाते हैं, और यहाँ पर असाध्य ज्वर की भी परवाह नहीं। हैजा फैलने पर शहर में कितना शोर मचता है, डाक्टर भागे भागे फिरते हैं, लोगों के टीके लगाते हैं और उनकी भुजा विकृत करते फिरते हैं। यहाँ देखिये, हैज़ा छोड़ ताऊन, चेचक या कोई और भयङ्कर रोग क्यों न फैले, लोगों को चिन्ता ही नहीं होती। उनका साहस उनका साथ ही नहीं छोड़ता। भला घबराने की आवश्यकता ही क्या है? अधिक से अधिक मर ही जायेंगे न। इससे अधिक तो कुछ नहीं। यह अंग्रेजी राज्य की विशेष कृपा थी कि उन्होंने भारत के देहातों को औषधालय की बरकत से सुरक्षित रखा, और लोगों के आचरण को इतना ऊँचा उठाया!

अमानतपुर में कोई औषधालय न था। आज भी नहीं। आख़िर यह कौनसी बुरी बात है जिसका हमारे हाकिम अंग्रेज़ों

का अनुकरण न करें। साधारण रोगों को तो अमानतपुरवासी ऐसे ही सहन कर लेते हैं। तकलीफ़ पड़ने पर वे चार मील की दूरी पर स्थित एक दूसरे गाँव से एक डाक्टर को लाते हैं। उस डाक्टर ने उस ग्राम में इसलिये दूकान खोली कि नगर में ऐसा करने के लिये लाइसेन्स की आवश्यकता थी, और वह लाइसेन्स वाले डाक्टरों से कहीं योग्य था। उसने अपने हाथों से कम-से-कम सौ मनुष्यों को दुखी जीवन से छुटकारा दिलाया था। उसके अनुभव ने उसे उस प्रदेश भर में प्रतिष्ठा दिलाई थी। फिर वह शहर वाले डाक्टरों की तरह घर आने की, दूसरे गाँव जाने की फ़ीस लेता और दो आने की दवा दो रुपये में बेचता। होम्यो-पैथिक दवा को अंग्रेजी दवा कह कर बेचता। वह अपने पास पानी पर्याप्त मात्रा में रखता और उसे निर्भयता से और बिना हिचकिचाहट के दवाओं में मिलाता, और उसे दवा के स्थान पर सिरिंज में डालकर, इंजेक्शन लगाता। वह दवा के पैसे शहर के डाक्टर की तरह वसूल करता। इन बातों ने न केवल उसकी प्रतिष्ठा ही जमा दी थी अपितु उसका प्रभाव भी बढ़ा रखा था। अमानतपुर के निवासी भी कभी कभी आवश्यकता पड़ने पर इन डाक्टर साहब के पास जाते और अपनी बीमारी में वृद्धि कराते। डाक्टर का कुछ न बिगड़ता, उनकी सहन शक्ति बढ़ती।

इनके अतिरिक्त अमानतपुर में एक वैद्यराज भी थे। उन्होंने इसलिये इसको निवास स्थान बना रखा था, क्योंकि दूसरी किसी जगह उनकी वैद्यगिरी चलती न थी। यहाँ वह इसलिए चल

निकली थी कि दवा के वह पैसे वसूल नहीं करते थे। फ़सल आने पर अनाज ले लेते। यह दोनों पार्टियों के लिये लाभदायक सौदा था। वह भिन्न भिन्न प्रकार की दवाओं में विश्वास न करते थे। उनके पास, केवल एक दवा थी। वह प्रत्येक रोग के लिये प्रयोग में लाई जासकती थी। पेट दर्द हो, आँखें दुखती हों, पाँव में काँटा लगा हो, दाँतों में कीड़ा लगा हो, नींद न आती हो, कान दुखते हों, खट्टी डकार आती हो, चोट लगजाय, खाँसी हो, पेशाब अधिक उतरता हो या न आता हो, क़ब्ज़ हो या दस्त लग रहे हों, अर्धाङ्ग हो या मिर्गी की शिकायत, वह उसे अपना चूर्ण देते, जिसे वह राम-बाण बताते। उनका कहना था कि सब रोगों की जड़ पेट है। अत: कोई भी रोग क्यों न हो वह उसे दूर करने के लिये राम-बाण चूर्ण की आवश्यकता समझते। भाग्यशाली अच्छे हो जाते, भाग्यहीन का इलाज तो ब्रह्मा भी नहीं कर सकते।

अमानतपुर में पाठशाला न थी। इसकी आवश्यकता भी न थी। सरकार को विश्वास था कि किसानों को शिक्षित लड़के की अपेक्षा अशिक्षित लड़का अधिक लाभप्रद सिद्ध होता है। वह उसकी कृषि में सहायक सिद्ध होता है। पढ़कर क्या करेगा। अत: उनके लाभ का ध्यान रखते हुए सरकार ने वहाँ पाठशाला नहीं खोली। दो मील दूर भरतपुर में प्राइमरी स्कूल था, इसके साथ पोस्ट आफ़िस भी मिला हुआ था। वहाँ के स्कूल मास्टर स्कूल के साथ साथ पोस्ट आफ़िस का भी नियन्त्रण करते थे, अपनी खेती को भी देखते, और इसके अतिरिक्त आसपास के ग्रामों की राज-

नीति में भी भाग लेते। शिक्षित होने के कारण वे इन विषयों में अधिक ध्यान रखते, और विशेषकर अमानतपुर के विषय तो उन्हें प्राणों से अधिक प्रिय थे। वहाँ के झगड़ों में खूब दिलचस्पी दिखाते।

अमानतपुर में एक महाजनों का कुटुम्ब था। इन्हें लोग शागिर्दपेशा कहते थे। इस बात पर आज तक लोग एक राय नहीं होसके कि उन्हें यह पदवी कैसे मिली। कुछ लोगों का विचार है कि ग्राम में आने से पूर्व यह कुटुम्ब इस पदवी को साथ लाया था। कुछ का कहना था कि यह पदवी उन्हें यहीं आकर दी गई। परन्तु साधारण लोग यह समझते थे कि इनके परदादा को लोग इस नाम से छेड़ते थे। इसका कारण यह था कि उनके परदादा के बाप को अपने लड़के को पढ़ाने का बहुत शौक़ था। इस मत-लब के लिए उन्होंने उसे आस-पास की भिन्न-भिन्न पाठशालाओं में भेजा। परन्तु या तो उसकी बुद्धि कुंठित थी या उस पर कोई बात असर न करती थी या उसे पढ़ने में रुचि न थी। उनके पिता मास्टर के बाद मास्टर बदलते, लेकिन उसमें कुछ अन्तर न आया। इस कारण लोगों ने उनका नाम शागिर्द-पेशा रख दिया। वह नाम ऐसा चढ़ा कि कुटुम्ब ही को लोग शागिर्द-पेशा कहने लगे। परदादा का नाम था गोविन्दराम, उनके लड़के का नाम था अचेतराम और उनके लड़के का नाम अनन्तराम। अब अनन्त-राम के दो बेटे थे, मनोहरलाल और रणबीर चन्द। था तो कुटुम्ब महाजनों का परन्तु इस कुटुम्ब को रुपये के लेन-देन में कोई रुचि न थी। इस कुटुम्ब का अलग धन्धा था, वह था देशी

खाँड बनाना। उनकी खाँड की खांचियां लगतीं। अनन्तराम के समय में खांचियों के काम से उन्हें बड़ा लाभ हुआ। इस कारण उसने अपने दोनों बच्चों को शिक्षा दिलाने का पक्का विचार कर लिया। दोनों को उन्होंने स्कूल भेजा। स्वयं भी अपना पुराना काम छोड़कर कोई नया काम करने का विचार किया। उनकी माँ ने उन्हें मना किया कि कुल का काम छोड़ना बुरी बात है, परन्तु अनन्तराम बुद्धिमान थे। उन्होंने दूसरा कार्य आरम्भ किया। उस समय उस प्रान्त में होज़री के काम से कोई परिचित न था। परन्तु वह नगर जाकर उस काम को देख आया था। यह उसकी इच्छा थी कि उसे स्वयं आरम्भ करे। इस कारण वह पहले पहल जुराब बुनने की चार मशीनें लाया। इनके लिये कारीगर भी शहर से लाया। उसका काम खूब उन्नति पकड़ गया। धीरे धीरे उसने मशीनों को बढ़ाना प्रारम्भ किया और थोड़े ही समय में उनकी संख्या सौ तक होगई। शनैः शनैः आस-पास के ग्रामों से लोग जुराब बुनने का काम सीखने के लिये आने लगे और उसके पास अच्छे कारीगर एकत्रित होगये। उसने एक बड़ा कारख़ाना बनाया जिसमें सब कारीगर एक समय में साथ बैठ सकें। अपना कार्यालय भी वहीं बनाया। एक कमरा सूत तैयार करवाने, दूसरा सूत रँगने, तीसरा मशीनों की मरम्मत कराने, चौथा स्टोर रूम और पाँचवाँ इस्त्री करने का कमरा था। उसका काम ख़ूब चमकने लगा। अच्छा माल तैयार होकर दूर तक जाता। कभी कभी अनन्तराम को स्वयं भी बाहर जाना

होता। उस समय वह अपना काम मुनीमजी को सौंप जाता। कभी कभी मुनीम ही को बाहर भेजता। परन्तु वह अनुभव करने लगा कि बच्चों को कालेज में पढ़ाने से कोई विशेष लाभ न होगा। बी. ए. पास कर भी लिया तो भी नौकरी तो नहीं करवाना था। नौकरी में क्या मिल जायगा? अधिक से अधिक सौ रुपयें की जगह। परन्तु दो सौ रुपये के नौकर तो वही रख सकता था। फिर लड़कों को व्यापार की शिक्षा देना भी आवश्यक था। न जाने कब आँखें बन्द हो जावें तो इतना बड़ा काम धरा का धरा रह जायगा। इसलिये उन्होंने दोनों बच्चों को कालेज न भेजने का निश्चय करलिया था। ज्योंही मनोहर ने दसवीं पास की उन्हों ने उसे काम पर लगा लिया। उसने दो वर्ष के अन्दर ही पूरा काम सीख लिया और पिता के काम में पूरी पूरी सहायता देने लगा। न केवल वह कारीगरों के कार्य से ही परिचित हुआ, अपितु उसने मशीनरी के कार्य से भी परिचय पा लिया। जुराबें बुनने के सारे काम से वह पूर्ण रूप से परिचित हो गया। यही नहीं, वह बाहर भी जाने लगा और इससे उसका अनुभव और भी विशाल होगया। वह दिल्ली, कलकत्ता, मदरास जाता और बड़े बड़े व्यापारियों का मित्र बन गया। वह लिखा पढ़ा था, समझदार था, तीव्र बुद्धि और गम्भीर स्वभाव का था। बाहर के काम में भी निपुण बन गया। अनन्तराम अब बहुत प्रसन्न था। उसे एक साथी मिल गया। वह अब केवल उसका लड़का ही न था अपितु विशेष परामर्श देने वाला व्यक्ति भी था। अब उन्हें काम की चिन्ता

नहीं, केवल परलोक की चिन्ता थी। परन्तु इससे पूर्व उन्हें बच्चों की शादी की चिन्ता थी। इसमें कोई कठिनाई उपस्थित न हुई। भला ऐसे बड़े घर में कौन अपनी लड़कियाँ देने को तैयार न था। दस मील दूर दूसरे गाँव के एक सेठ ने दोनों लड़कों को अपनी लड़कियाँ देने का विचार प्रगट किया। परन्तु अनन्तराम दुनियादार थे, दुनिया को देख चुके थे, उन्होंने लाला काशीराम से स्पष्ट रूप से कहदिया कि वह दो बहिनों को एक ही घर में न लेंगे। इस कारण उनकी बड़ी लड़की नीलिमा की सगाई मनोहर से की गई। सगाई क्या थी, साधारण लोगों के लिये शादी से भी बढ़कर थी। काशीराम ने शगुन के एक रुपये के स्थान पर एक हजार दिये। अनन्तराम से मिलनी करते समय उन्हें और उनकी पत्नी को सौ सौ रुपये भेंट किये और सौ रुपये रणवीर को। फिर बर वधू के लिये अच्छे और बहुमूल्य दुशाले भेंट किये। मिठाई और फलों का तो इतना प्रबन्ध था कि सारे गाँव में बाँटे जाने पर भी समाप्त न हुए। अनन्तराम ने गाँव के एक एक कुटुम्ब को फल और मिठाई भेजी। भङ्गी चमारों और मीरासियों के मुहल्लों में भी मिठाई बँटवाई। रागियों को खूब दिल खोल कर इनाम दिये गये। कारखाने के कारीगरों को मिठाई के अतिरिक्त जलपान भी कराया गया। जलपान के लिये उन्होंन इतना आग्रह किया कि लाला अनन्तराम को इनकी इच्छा के आगे झुकना ही पड़ा। फिर क्या था। बोतलें खुलगईं और वह उड़ी कि वैसाखी पर भी क्या उड़ेगी। कारीगरों के साथ गाँव के दूसरे रसिकों ने भी भाग लिया।

परन्तु इतने पर भी समाप्ति न हुई। गाँव वाले असली मनबहलाव चाहते थे और उनके लिये असली मनबहलाव एक ही था। वह था रंडियों का नाच और नक़लें। अनन्तराम को लोगों की इच्छा के आगे सिर झुकाना पड़ा। चार दिन गाँव में ख़ूब रौनक़ रही जैसे मेला हो। लोगों को अपने अपने काम की सुध जाती रही। सब तमाशों में तल्लीन थे। लाला अनन्तराम का इस पर यथेष्ट व्यय हुआ। परन्तु व्यय की तो उन्हें चिन्ता न थी। रुपये का अभाव न था, दो ही तो लड़के थे, और उनकी सगाई प्रति दिन तो होना न थी। फिर सारे गाँव वाले प्रसन्न हो गये। आस-पास के प्रान्त में धूम मच गई। नक़लें और नाच देखने के लिये पन्द्रह-पन्द्रह और बीस-बीस कोस से लोग आते थे। नाच और नक़लों का समाचार देहात में अधिक शीघ्र फैलता है और मनबहलाव के भूखे देहातियों के लिये इससे बढ़कर और क्या रुचिकर बात हो सकती है? जो भी वापिस जाता, अनन्त-राम का नाम लेता जाता। जाकर उसके गुण बखानता, क्योंकि उसने प्रत्येक के लिये गुड़ के शर्बत का प्रबन्ध किया था। भला इससे बढ़कर कोई दूसरा दानी और कौन हो सकता है?. गर्मी के दिनों में ठण्डा पानी ही कितना आनन्द देता है और यहाँ तो शर्बत मिल रहा था।

रणवीर रसिक स्वभाव का था। उसे खाने और पहिनने का ख़ूब शौक़ था। नगर में वह बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत करता। स्कूल में उसके पास गाँव के लोग पहुँच जाते। वे दो-दो चार-चार

दिन उसके पास ठहरते। रात को तो होस्टल में उन्हें इतने दिन ठहरने की आज्ञा न मिलती परन्तु दिन को वे उसे साथ लिये फिरते। उनमें एक विशेष व्यक्ति भगतसिंह था। उसके विषय में विस्तार से बाद में लिखा जायगा, यहाँ इतना कह देना ही काफी है कि वह रणवीर से मित्रता रखता और शहर में जाकर उससे बिना मिले न आता। वहाँ जाकर कई कई दिन रुकता। उसने रणवीर की मित्रता नगर की वेश्याओं से करा रखी थी। वे छिप-कर वहाँ जाते और खर्च रणवीर का होता। वहाँ पीने पिलाने का काम भी चलता। जबतक दोनों भाई स्कूल में इकट्ठे रहे, रणवीर पर मनोहर का नियन्त्रण बना रहा। परन्तु उसके शहर छोड़ते ही भगतसिंह ने रणवीर से मित्रता गाँठली। चार साल लगातार परीक्षा में फेल होने पर भी वह अन्त में पास न हो सका। हेडमास्टर साहब ने अनन्तराम को बुलाया और उनसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वे सिर पीट कर रह गये कि उनका लड़का बाज़ार में जाए और इस प्रकार फिरे। परन्तु जवान लड़के को डांटना भी उचित न था। इससे लाभ के स्थान पर हानि अधिक थी। उन्होंने स्कूल से उसका नाम कटवा लिया और हेडमास्टर के विरोध करने पर भी उसे घर ले आये। यही उचित समझा गया कि उसे काम पर लगाया जाय। परन्तु साथ ही लाला अनन्तराम जैसे अनुभवी पुरुष ने यह भी देखा कि बच्चे को कुसङ्गति से बचाने का एक ही उपाय था कि उसे विवाह के बन्धन में बाँध दिया जाय। लड़कियों की भला क्या कमी थी।

रतनपुर के सेठ लाला गिरधारीलाल अपनी लड़की सुषमा का सम्बन्ध करगये। गाँव में वही नाच रङ्ग और खुशियाँ। पाँच दिन तक मेला सा लगा रहा। गिरधारीलाल सेठ काशीलाल से हलके थे, परन्तु नाक ऊँची रखने के लिये उन्होंने हर बात में काशीलाल से अधिक शान दिखाई। जहाँ काशीलाल का एक हज़ार व्यय हुआ उसने बारह सौ रुपये खर्च किये।

अनन्तराम केवल सगाई ही नहीं, विवाह भी करना चाहते थे। परन्तु रणवीर से पूर्व मनोहर की शादी होना चाहिये थी। इस लिये उन्होंने मनोहर के ससुर को विवाह संस्कार करने के लिये पत्र लिखा। लड़की वाले तो शादी के लिये चिन्तित होते ही हैं। जिनके घर में जवान लड़की है उन्हें शान्ति कहाँ? लड़की को बढ़ते देखकर उनका खून जम जाता है। हमारे देश में यह एक विशेष विपत्ति है। लोगों को एक तो यह शिकायत है कि लड़कियाँ बहुत जल्द बढ़ती हैं, दूसरे उनके लिए अच्छे वर नहीं मिलते। फिर ज्यों ज्यों वह जवान होती जाती है, उन्हें घर की चहार दीवारी के अन्दर बन्द रखना जान-जोखम का काम होता है। इसी कारण हमारे देश में लड़कियाँ एक विशेष भार बन जाती हैं, और स्पष्ट है कि सारे माता-पिता इस भार से बचने के लिये उतावले रहते हैं। काशीराम यह समाचार पाकर फूले न समाये। तुरन्त पण्डितजी को बुलाकर उन्होंने मुहूर्त निकलवाया। उधर तिथि के निश्चय होते ही लाला अनन्तराम ने सेठ गिरधारी लाल को समाचार भेज दिया। उन्होंने भी उसके चार दिन

बाद की तारीख निकाली।

जिस धूम-धाम से ये दोनों शादियाँ रचाई गईं उसके उदाहरण आस-पास के सुदूर प्रान्तों में भी न मिलते थे। आज तक उस प्रान्त में किसी बारात में पचास से अधिक मनुष्य न गये होंगे, और यहाँ पाँच-पाँच सौ। शादियाँ क्या थीं महोत्सव थे। उन दिनों देहात में मोटरों का चलन नहीं था और न मोटर की वह शान ही समझी जाती थी। हाँ, बड़े बड़े रथों, शानदार बैल गाड़ियों और घोड़ा गाड़ियों की कमी न थी। सुन्दर बैलों की जोड़ियों से खींचे जाने वाली सजी हुई गाड़ियों और रथों का लम्बा जुलूस लोगों ने आज तक न देखा था। सब से आगे वर्दी पहने हुए बाजे वाले और फिर बैण्ड वालों के रथ थे। बाद में वर का रथ और उसके पीछे बारातियों के। गाँव के प्रत्येक घर से एक एक व्यक्ति निमन्त्रित था। कोई ऐसा न था जिसने इस बुलावे को स्वीकार न किया हो। हाँ, कुछ आदमियों को मनाने में लाला अनन्तराम को घोर प्रयत्न भी करना पड़ा। किस गाँव में ऐसा नहीं होता? सब कहीं, मनमुटाव और दुश्मनियाँ होती हैं। आजकल इन बातों के सिवाय और बातें तो कम सुनने को मिलती हैं। फ़सल के मौसम के अतिरिक्त लोग प्रायः बेकार होते हैं, और उन दिनों ऐसे कामों में खूब दिल लगता है। इसके विरुद्ध प्रचार, तो उसके विरुद्ध शोर। एक की चुगली तो दूसरे की टांग घसीट। ये बातें गाँव में खूब होती हैं। अनन्तराम का काम बहुत बढ़ा हुआ था, इसलिये लोगों को इन से इस कारण जलन होना

स्वाभाविक था। केवल उनके बढ़ते हुए गौरव से सब कोई दबता था। पैसे वाले से कौन नहीं दबता? पैसे से क्या कुछ नहीं किया जा सकता? अफ़सर पैसे वालों के मित्र, पुलिस वालों का उनसे मेल, बड़े बड़े आफ़िसों तक उनकी पहुँच। परन्तु इसका यह अर्थ न था कि लोगों के दिलों में भी उनके विरुद्ध द्वेष न था। उनका बढ़ा हुआ सम्मान केवल कुछ व्यक्तियों को छोड़कर सब की आँखों में खटकता था। हृदय से कोई उन्हें न चाहता था। यदि लोगों की सम्मति ली जाती कि क्या वे उनके गौरव और शान को उन्नत होता या अवनत होता देखना चाहते हैं तो निःसन्देह बहुमत दूसरी बात का निर्णय देता। परन्तु चढ़ते हुए सूर्य की पूजा करना मनुष्य का स्वभाव है। उनके मुख पर प्रत्येक उनकी प्रशंसा करता, चापलूसी करता, खुशामद करता। कोई भी उन्हें अप्रसन्न करना न चाहता था। इस कारण बिना कहे सुने, बहुतसे व्यक्ति जाने के लिये उद्यत होगये। कुछ ऐसे अवश्य थे, जो अधिक चाटुकारिता कराना चाहते थे। पहली शादी थी और फिर लाला अनन्तराम घमंडी बिलकुल न थे। उन्होंने ऐसे लोगों को मनाने में अपनी शान की हानि न समझी। वे स्वयं उनके पास गये, उनकी पत्नी, उनकी स्त्रियों के पास गईं और समझा बुझा कर, उन्हें शादी में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया। कुछ घराने तो शागिर्द-पेशा कुटुम्ब से अत्यन्त घृणा करते थे, और वे इनके सर्वनाश पर खुशियाँ मनाने को सदा तैयार रहते थे। इनकी एक-एक बात उनके दिल में कांटे की तरह खटकती। जब इनकी ओर

से सगाई-उत्सव में नाच और गाने होते, तो उनकी छातियों पर साँप लौट लौट जाते। परन्तु लाला अनन्तराम ने उन्हें भी मनाया।

लाला काशीराम ने भी अतिथि सत्कार में कोई कसर न उठा रखी। उन्होंने बरात से सात दिन ठहरने की प्रार्थना की थी, परन्तु लाला अनन्तराम चार दिन से अधिक ठहरने पर राज़ी न हुए। इन चार दिनों में ऐसा स्वागत हुआ जो इन लोगों का कई जन्मों में न हुआ होगा। दूध, मिठाई और फलों की ख़ूब भरमार थी। खाते पीते बरातियों की नाक में दम आगया। परन्तु खेल तमाशे के कारण उनका दिल ख़ूब लगा रहा। अमानतपुर-वासियों के स्वभाव से परिचित होने के कारण, काशीराम ने नाच गाने और तमाशे का प्रबन्ध कर रखा था। सदैव की भाँति आस-पास के देहात से तमाशा देखने वालों की अत्यधिक भीड़ इकट्ठी हो जाती।

दान-दहेज़ में तो लालाजी ने कमाल ही कर दिखाया। लोगों की और स्वयं अनन्तराम की आँखें खुली-की-खुली रह गईं। एक अति उत्तम दो घोड़ों की गाड़ी के साथ आभूषणों, वस्त्रों और नक़दी के ढेर लगा दिये। लोगों को काशीराम के ऐश्वर्य का तो ज्ञान था, परन्तु यह किसी को अनुमान न था कि वे इतना दहेज़ में भी दे सकते हैं। फिर उनके दो और भी पुत्रियाँ थीं। उनका भी ध्यान आवश्यक था। परन्तु लोगों की तो यह आदत होती है कि कम देने पर तो और भी त्रुटियां निकालें। बरात की बिदाई के समय लाला अनन्तराम ने रुपयों की वर्षा की। दो हज़ार रुपयों

के पैसे लेकर उन्होंने थैलियाँ भरलीं और जब तक वे समाप्त न हुईं फैंकते रहे।

रणवीर का विवाह ऐसे ठाठवाट से न हो सका। गिरधारी लाल ने अनुकरण करने का बहुत प्रयत्न किया, परन्तु वे काशी-राम से बहुत न्यून थे। अधिक प्रयत्न करने पर भी मुक़ाबला न हो सका। दहेज भी उनसे इतना न बन सका। बरात में भी इतने आदमी न गये।

वास्तव में अनन्तराम गिरधारीलाल की दशा से परिचित थे, परन्तु चिरपरिचित और लोभी न होने के कारण, उन्होंने इस नाते को स्वीकार किया था।

दूसरा परिच्छेद

लाला अनन्तराम के सब कार्य पूरे होगये। उनके दोनों बच्चों का विवाह होगया, और वे दोनों घर के काम में भी लग गये। वे स्वयं शनैः शनैः काम में अरुचि दिखाने लगे। मनोहर पर उन्होंने सारे कार्य का भार डालदिया। रणवीर उसके अधीन कार्य करता, और अब वह भी कार्य में चतुर बन रहा था। वास्तव में उसकी आवारा आदत उचित मार्ग पर आजाने के कारण सुधर गई थी। दूसरे, दौरे पर अब प्रायः रणवीर ही जाता, इस प्रकार सैर सपाटे के कारण वह सन्तोष अनुभव करता। उनके पिता अब अधिक समय पूजा-पाठ में लगाते। गाँव से बाहर उन्होंने एक अति सुन्दर उद्यान बनवाया था, जिसमें आम, जासुन, सन्तरे और माल्टे के वृक्ष लगाये थे। वहीं पर एक सुन्दर छोटासा घर भी बनवाया था। वे स्वयं वहीं चले जाते और दिन का अधिक भाग पूजा-पाठ में व्यतीत करते।

उनके पास वहाँ साधु सन्त या कोई और महात्मा आजाते। वे उनकी आवभगत करते। उनके लिये भोजन आदि का वहीं प्रबन्ध होता, वे अपने बच्चों के दैनिक जीवन में हस्तक्षेप न करना चाहते थे। जब उन्हें आस-पास किसी स्थान पर किसी बड़े सन्त या महात्मा के आने का समाचार मिलता, वे वहाँ उनके दर्शनों के लिये अवश्य जाते और उन्हें प्रेम से अनुरोध करके अपने साथ लाते। प्रति वर्ष वे अमानतपुर में एक साधुओं का मेला भरवाया करते थे। जिसमें पाँच सौ के लगभग सन्त महात्मा पधारते, और दस दिन तक ठहरते। सारा व्यय इनकी ओर से होता। चन्दा एकत्रित करना वे एक दु:खदायी काम समझते थे, अत: किसी के समक्ष पैसे के लिये हाथ न पसारते। अब बच्चों की शादी के बाद वे पहले से दुगुना बड़ा मेला भरवाते और दस के स्थान पर उसे बीस दिन तक रखते। इसमें केवल भोजन आदि का सत्कार ही न होता था, अपितु शास्त्रों के विभिन्न विषयों पर भी विवाद होता। भिन्न भिन्न साधुओं में विवाद होता और सब से अधिक कीर्तन पर बल दिया जाता। भिन्न भिन्न मतों के साधु कीर्तन के समय इकट्ठे हो जाते। यूँ तो लालाजी ने उद्यान में अपना छोटा मन्दिर बना रखा था, परन्तु कीर्तन की दृष्टि से वह छोटा था। अत: बाहर पण्डाल में बैठकर कीर्तन चलता और घण्टों चलता रहता। ढोल, मृदङ्ग, तालियों की उच्च ध्वनि में लोग झूमने लगते, और सुध-बुध भूल जाते। लाला अनन्तराम का तो बुरा हाल होता। गाँव के बहुत से लोग भी एकत्रित होते। दूसरे अन्य ग्रामों से

भी अधिक लोग आते। कीर्तन के पश्चात् प्रसाद बँटता था, लोग इस कारण भी एकत्रित हो जाते। परन्तु सब इस बात पर हैरान थे कि रुपये में खेलने वाला, और कौड़ियों को जोड़ पैसा कमाने वाला एक धनी पुरुष इतना बड़ा धर्मात्मा हो सकता है। क्या यह वास्तविकता थी या केवल पाखण्ड ? पाखण्ड करने से उन्हें कोई लाभ न था। दिखलावे से उन्हें कुछ मिलने का नहीं था। तो क्या यह उनकी दिलचस्पी थी ? यह वास्तव में कमाल था। उनको देखकर दूसरे लोगों के दिल में भी ईश्वर-भक्ति चमक उठती। उनके चेहरे की शान्ति और तेज से यह प्रकट होता कि वह स्वार्थ से प्रेरित होकर नहीं, बल्कि लगन और प्रेम के कारण ईश्वर-भक्ति में लगे हैं। युवावस्था में यथेष्ट धनोपार्जन किया। खूब परिश्रम किया और अपनी सज्जनता एवं कठोर परिश्रम के कारण रुपयों के ढेर जमा किये। अपने कार्य को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया। दूर-दूर तक अपने नाम का सिक्का बिठाया। अब सब कार्य पूर्ण होगये। बच्चों की शादी हो गई। वे काम में लग गये। अब सांसारिक बन्धनों में बँधे रहना कहाँ की चतुराई थी ? जीवन-संग्राम में वे खूब डटकर लड़े। मैदान छोड़ने का नाम नहीं लिया। परन्तु अब क्या लाभ ? राम-नाम के लिये तो कोई समय ही नहीं। अन्तिम यात्रा की भी तो तैयारी चाहिये। इन बातों का ध्यान रखते हुए उन्होंने अपना ध्यान ईश्वर-भक्ति की ओर लगाया और इसमें कितना ही व्यय करने में कभी न सकुचाये। भय भी किसका था ? उनके हाथ भी

कौन पकड़ सकता था ? हाथ से कमाया हुआ पैसा था। क्यों न खर्च करें ? फिर लड़के भी हस्तक्षेप न करते थे। उन्हें हस्तक्षेप करने का अधिकार भी न था।

एक दिन बैसाखी के अवसर पर एक ऐसा ही उत्सव हो रहा था। एक हज़ार के लगभग साधु एकत्रित थे। उनके देखने के लिए इससे दुगुने मनुष्यों की भीड़ थी। बैसाखी वाले दिन ये सब लोग एकत्रित होकर, नदी पर गये, जो वहाँ से केवल दो मील दूर थी। स्नान के पश्चात् वहीं कीर्तन हुआ और प्रसाद बाँटा गया। कीर्तन करता हुआ यह जुलूस गाँव वापिस आया। सायं पुनः कीर्तन था। अपरिमित उत्साह के साथ सब लोग कीर्तन में लगे थे। लाला अनन्तराम सुध-बुध भूले मगन थे। लोग इनकी तल्लीनता देख कर आश्चर्य में थे। कीर्तन समाप्त हुआ, परन्तु लाला अनन्तराम की समाधि न टूटी। पास बैठे मनुष्यों ने उन्हें हिलाया। परन्तु व्यर्थ। उनकी समाधि सदैव के लिए लग चुकी थी !

कुहराम मचगया। उनकी मृत्यु का समाचार एकदम गाँव में फैल गया। गाँव से बाहर जाने में भी इसे देर न लगी। कुछ घण्टों में हज़ारों व्यक्ति जमा होगये। उनकी अत्यन्त शानदार अर्थी बनाई गई, भारी जुलूस निकाला गया। साधुओं ने उनकी अर्थी को कन्धा दिया। लाला अनन्तराम का नहीं, यह मृत्यु का जुलूस था। लोग इनका नहीं, मृत्यु का दाह संस्कार करने जारहे थे। उनकी मृत्यु, स्वयं मृत्यु के मुँह पर तमाचा था। यह मृत्यु नहीं,

ईश्वर की ओर से निमन्त्रण था, जैसे ईश्वर ने उन्हें स्वयं बुला लिया, मृत्यु के द्वारा नहीं। अर्थी के जुलूस के साथ हजारों व्यक्ति एकत्रित थे। 'राम नाम सत्य है' और हरि-कीर्तन से आकाश गूँज रहा था। जब उनका दाह संस्कार किया गया और अग्नि ने प्रचण्ड रूप धारण किया, तो महात्मा अनन्तराम की जय के आकाशभेदी नारे गूँज उठे और साथ ही मनुष्यों के नेत्रों से अविरल अश्रुधारा प्रवाहित हो उठी। दुःख की नहीं, हर्ष की। क्या गौरवपूर्ण मृत्यु थी वह! ऐसी मृत्यु देवताओं को भी नहीं मिल सकती! यह उनके पूर्व-जन्म और इस जन्म के पुण्यों का फल था कि ऐसी महान् मृत्यु हुई। वे जिये भी शान से और मरे भी शान से। उनके शत्रु भी उनकी मृत्यु पर गर्व करते थे। आखिरकार अनन्तराम अमानतपुर के थे। उनका जीवन और मृत्यु अमानतपुर के लिये गौरव की बात थी। उनके कारण अमानतपुरवासी अपना मस्तक ऊँचा कर सकते थे। जब कोई बाहर का पूछता—"क्या आप अमानतपुर के निवासी हैं? उसी अमानतपुर के जहाँ के लाला अनन्तराम हैं", तो उनकी छाती फूल सी जाती। वह राजाओं की तरह जिये और राजाओं की तरह मरे।

उनकी वृद्धा पत्नी अपने पति की लाश को जलते देख मूर्छित होगई। पानी के छींटे मारकर उन्हें होश में लाने का प्रयत्न किया गया। परन्तु कुछ लाभ न हुआ। उनकी आत्मा अपने स्वामी की आत्मा के पीछे पीछे उड़ गई। उनके शरीर का भी वहीं दाह-संस्कार

किया गया। दो जीवन-साथियों को चिता में एक साथ सुलादिया गया। बच्चों को तो वे अवश्य अनाथ छोड़ गये। परन्तु एक ने दूसरे का साथ न छोड़ा।

वापिस लौट कर सब से बड़े महात्मा ने यह प्रस्ताव किया कि ऐसे ईश्वर-भक्त का एक विशेष स्मारक बनना चाहिये। इस विषय पर अधिक समय तक विवाद होता रहा। अन्त में यह निर्णय हुआ कि उनकी एक समाधि बनाई जाय और इसके साथ एक शिवालय बनाया जाय। उनकी पवित्र स्मृति में एक मिडिल स्कूल और एक निःशुल्क औषधालय का निर्माण किया जाय। मनोहर को इस निर्णय से पूर्ण सहमति थी। रणबीर इनकार करने का साहस न कर सकता था। मनोहर ने महात्मा से प्रार्थना की कि जब तक कार्य सम्पूर्ण न हो जाय वह वहीं रुकें और कार्य समाप्त होने के पश्चात् भी देखरेख के लिये वहीं रहें। पहली बात तो मानने योग्य थी, परन्तु दूसरी को वे कैसे मान सकते थे। समाधि, स्कूल और औषधालय एकसाथ बनने प्रारम्भ होगये। उनका नाम अनन्तराम के पीछे नहीं रखा गया। क्योंकि वे भक्त थे, इसलिये स्कूल और औषधालय के साथ रामकृष्ण का नाम रखा गया।

तीसरा परिच्छेद

सब का विचार था कि मनोहर को काम सम्भालने में कोई कठिनाई न होगी, और यह सत्य सिद्ध हुआ। काम तो उसने पहिले ही सम्भाल रखा था। लाला अनन्तराम ने जैसे मृत्यु का बढ़ता हुआ हाथ देख लिया था। इसी कारण उन्होंने मनोहर के ऊपर सारा बोझ डालना प्रारम्भ कर दिया था। मनोहर ने उसे खूब सम्भाला। रणवीर अधिकतर दौरे का काम करता। अब काम पहले से बढ़ रहा था। लाला जी की मृत्यु सन् १९३७ में हुई थी। चार वर्षों के पश्चात् मशीनों की संख्या सौ से दो सौ होगई। एक और कारखाना बनाया गया। कारीगर और मज़दूर दुगुनी संख्या में काम पर आने लगे। प्रायः रात्रि को भी कार्य होता। कारीगर अमानतपुर ही में बसने लगे। अमानतपुर की चहल-पहल बढ़ने लगी। औषधालय बनकर तैयार होगया। बाहर के देहात से बीमार लोग दवा-दारू के लिये आते। पाठशाला भी

चल निकली। इसमें चार श्रेणियां तो एक साथ खोली गईं थीं, क्योंकि अमानतपुर के लड़के, भरतपुर से हटकर गाँव के स्कूल में प्रविष्ट होगये। फिर भरतपुर में लोगों को शिक्षा की बहुत शिकायत थी क्योंकि मास्टर साहब के पास इसके लिये इतना समय ही कहाँ बचता था। चार वर्षों में ही मिडिल स्कूल उन्नति के शिखर पर पहुँच गया। अब प्रत्येक श्रेणी के लिये एक एक अध्यापक नियुक्त हुआ था। इनके अतिरिक्त संस्कृत, फ़ारसी और साधारण विज्ञान के लिये तीन अध्यापक नियुक्त किये गये। एक ट्रेन्ड हेडमास्टर रखे गये। छात्रों की संख्या आरम्भ में तो स्वाभाविक रूप से कम थी, अब एक सौ पचास के लगभग थी। मनोहर ने शाला के लिए एक कमेटी बनादी, जिसमें गाँव के प्रतिष्ठित और प्रमुख व्यक्तियों को सदस्य बनाया। सेक्रेटरी रणवीर था। परन्तु प्रायः वह दौरे पर रहता, अतः एक ज्वाइन्ट सेक्रेटरी चुन रखा था। वह पढ़ा-लिखा और अच्छा काम करने वाला व्यक्ति था। उसका नाम तो भगतसिंह था, परन्तु लोग उसे गुरु के नाम से पुकारते थे। वह ग्राम के कार्यों में अधिक रुचि दिखाता। स्कूल की कमेटी में मनोहर ने उसे रखना आवश्यक समझा। कमेटी के प्रधान के लिये मनोहर ने गाँव के ज़मींदार को चुना था। पद के कारण नहीं, अपितु उनकी वयोवृद्धता, सूझ और विवेक के कारण। स्वयं वे उप-प्रधान थे। मैनेजर का काम वे स्वयं करते, क्योंकि वास्तव में पूरी पाठशाला का प्रबन्ध उनके अधीन था। इस कार्य में वे मुनीमजी से सहा-

यता लेते थे। वास्तव में नियन्त्रण तो हेडमास्टर साहब के हाथ था। ये उनकी देखरेख करते थे।

औषधालय के लिये भी एक कमेटी नियुक्त थी। इसके प्रधान गाँव के एक प्रसिद्ध व्यक्ति हरनामसिंह थे। हरनामसिंह फौज में कम्पाउन्डर थे, अब पैन्शन पा रहे थे। उनकी खेती भी थी। वे अमीर न थे, परन्तु सज्जन व्यक्ति और भक्त स्वभाव के थे। वह अनन्तराम के विशेष मित्रों में से थे। उनसे अच्छा मनुष्य मनोहर को मिलना कठिन था। औषधालय के कामों में अत्यन्त रुचि दिखाते और अपने विचार परामर्श से लाभ पहुँचाते थे। सेक्रेटरी का काम गाँव के नम्बरदार मुन्नासिंह को सौंप रखा था। मनोहर स्वयं वाइस प्रेसीडेन्ट और रणवीर असिस्टेन्ट सेक्रेटरी थे। अंग्रेजी औषधालयों में विश्वास न रखने के कारण एक अच्छे अनुभवी वैद्य को औषधालय का इन्चार्ज बना रक्खा था। उनका धुरेन्द्र नाम था। वह अपने कार्य में दक्ष थे। जल्द ही वे प्रसिद्ध होगये। ग्राम में यदि कोई व्यक्ति उदारता से और निःस्वार्थ कार्य करे, तो देहाती अवश्य उसकी सेवा का अभिनन्दन करते हैं।

चार वर्ष पश्चात् औषधालय भी खूब उन्नत होगया। उधर हर वर्ष अनन्तराम की समाधि पर मेला लगता। उसी प्रकार दूर दूर से लोग आते। कीर्तन, सत्सङ्ग, भजन होता। मनोहर अपने पिता की याद धूम धाम से मनाता। साधु सन्तों का व्यय सहन करता। वैसे अब दूसरे मनुष्य भी श्रद्धा से साधुओं के भोजन का प्रबन्ध करते। मन्दिर में चढ़ावा चढ़ता। उसके प्रबन्ध के

लिये एक कमेटी महात्मा तुलसीगिरी की अध्यक्षता में बना रखी थी और वह कमेटी सब फण्डों की देखरेख करती। यह रुपया केवल मेले के लिये व्यय होता, जो बचता वह डाकखाने में जमा करा दिया जाता जिससे कि आगामी वर्ष के व्यय की कमी-बेशी पूरी को जासके।

भरतपुर से पोस्ट ऑफिस उठकर अमानतपुर में आगया। यह मनोहर के प्रयत्नों का परिणाम था। वैसे भी जब अमानतपुर हर प्रकार से उन्नति कर रहा था, तब कोई कारण न था कि वहाँ पोस्ट ऑफिस न खुले। मनोहर स्कूल मास्टर को पोस्ट ऑफिस सुपुर्द करने के अत्यन्त विरुद्ध था। इस में मास्टर को कमीशन तो मिल जाता है परन्तु बच्चों की शिक्षा में बहुत बाधा पहुँचती है।

इस प्रकार लाला अनन्तराम की मृत्यु के पश्चात् ग्राम प्रति दिन उन्नति करने लगा। पाठशाला और औषधालय खुलने से शागिर्द-पेशा कुटुम्ब ही का नहीं, अमानतपुर का नाम भी प्रसिद्ध होने लगा। कारखाना जोरों पर था, मेला खूब भरता। इस अवसर पर गाँव के लोगों को धनोपार्जन का स्वर्ण अवसर प्राप्त होता। इन दिनों उनकी खूब बिक्री होती। ग्राम के दूकानदार भी अपनी दूकानें लेकर आते। व्यापार की उन्नति होती। अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त मवेशियों का लेनदेन भी होता। एक मुख्य विशेषता यह थी कि इस मेले का प्रबन्ध गाँव की कमेटी करती। कभी झगड़े का अवसर न आता।

दोनों भाई दो प्राण एक शरीर से रहते। अलग होने की

बात भी न थी। मनोहर बड़ा भाई ही नहीं बाप की जगह था। वह उसे छोटा भाई नहीं, लड़का समझता। उन दोनों के पारस्परिक व्यवहार और विचार भी पिता-पुत्र के समान थे। वैसे अवस्था में दोनों में सात वर्ष का अन्तर था। रणवीर, पिता के जीवन में भी, बड़े भाई का पिता के समान आदर करता। मनोहर पहले भी उसे बच्चा समझता, और बच्चों की तरह उससे लाड़-प्यार करता था। पिता की मृत्यु के पश्चात् वह उसका विशेष ध्यान रखता था। घर में उसके लिये खूब सुन्दर कमरा अच्छी तरह सजाकर रखा गया था। उस छोटे ग्राम में उसके लिये सोफ़ासेट और रेडियो मँगवा कर रखा था। उस कमरे के नाप की दरी और ग़ालीचा मँगवाया गया और कमरे में सुन्दर सुन्दर चित्र लगाये गये। कमरे की सजावट के लिये दीवारों के लिये सुन्दर काग़ज़ मँगवाया गया। केवल मनोहर के लिये एक मुख्य नौकर नियुक्त था, जिसे कठोर आज्ञा दे रखी थी कि और कोई काम न करे। जब वह दौरे से वापिस आता तो अपनी ससुराल से आई हुई बग्घी उसके लिये निश्चित कर रखी थी। उसकी अनुपस्थिति में वह बग्घी रणवीर की स्त्री सुषमा के बैठने के लिये रख छोड़ी गई थी। बाग़ में रणवीर के लिये उसने एक विशेष कमरा बनवाकर उसे सजाया गया था। यही नहीं, उसके भोजन का वह विशेष ध्यान रखता। एक अच्छी दुधारू गाय सदा रणवीर के लिये निश्चित रहती। यद्यपि भोजन इकट्ठा बनता था, तथापि मनोहर का यह आदेश था कि उस गाय का दूध,

मक्खन और मलाई केवल रणवीर के लिये सुरक्षित रहे। उस गाय का नाम 'वीरा' रख छोड़ा था। कोई गाय भी उसके स्थान पर आती तो उसका नाम भी 'वीरा' ही रखा जाता। भाई के लिये वह सब्जी और फूल का भी काफ़ी प्रबन्ध करता। सब्जियाँ तो वैसे बाग़ में भी पैदा होतीं और सन्तरे, माल्टे, आम आदि भी लगते। परन्तु इनके अतिरिक्त दूसरी सब्जियाँ और फल वह उसके लिये शहर से मँगवाता। सारी की सारी चीज़ पहिले रणवीर के पास जाती। वह जितनी चाहता, प्रयोग में लाता, शेष दूसरों में वितरित की जाती। उसके वस्त्रों का भी वह विशेष ध्यान रखता। वस्त्रों का जो कोई नया डिज़ाइन निकलता उसमें वह रणवीर का सूट अवश्य बनाता। जूते भी नित्य नये फ़ैशन के लाकर देता। सुषमा के वस्त्रों आदि का भी वह विशेष ध्यान रखता।

इन कारणों से रणवीर अपने बड़े भ्राता पर इस सीमा तक आश्रित रहता, कि साधारण से साधारण आवश्यकता के लिये भी वह उससे ही अनुरोध करता। उसे स्वयं ख़रीदने की आदत छूट ही गई थी। पहले तो हरएक वस्तु की इतनी अधिकता होती कि उसे माँगने की बारी ही न आती। दैवयोग से यदि कभी आवश्यकता पड़ भी जाती तो वह एक पत्र लिख कर अपने भाई के पास भेज देता, और यदि वह वस्तु गाँव में न मिलती, तो उसी समय बग्घी जुत जाती और वस्तु शहर से मँगाई जाती।

रणवीर की स्त्री सुषमा का तो वह आवश्यकता से अधिक

ध्यान रखता। उसका एक विशेष कारण भी था। सुषमा के पिता उसके ससुराल की स्थिति के व्यक्ति न थे। वह उनसे अधिक हलके थे। यद्यपि गिरधारीलाल ने काशीराम का अनुकरण करने का यथा-शक्ति प्रयत्न किया, परन्तु मनोहर से वास्तविकता छिपी न थी। उसके अपने ससुराल से कुछ न कुछ सदैव आता ही रहता। नीलिमा अगर एक घण्टे के लिये भी मायके आती तो वह उसके साथ अगणित वस्तुएँ बाँध देते। मनोहर उसे अधिक मना करता, वह अपनी माता से बहुतेरा कहती, परन्तु कोई सुने भी। मनोहर को यह भय रहता कि सुषमा उसे महसूस करेगी। मनुष्य की इस दुर्बलता से वह पूर्णतया परिचित था। विशेषकर स्त्रियों की भावनाओं को वह इतना जानता था कि सुषमा के पिता की दरिद्रता उसकी अपेक्षा उसे ईर्ष्या की अग्नि में भस्म कर सकती है। इस कारण जब कभी नीलिमा मायके से विशेष वस्तुएँ लाती, वह उसी समय किसी न किसी बहाने से कोई गहना या वस्त्र सुषमा को लाकर देता। परन्तु सुषमा दूध पीती बच्ची न थी। वास्तविकता से वह अपरिचित न थी। उसके दिल में, अपनी भाभी के प्रति द्वेष पैदा होता। प्रायः स्त्रियाँ तो बात करतीं ही थीं कि एक ससुराल से वस्तुओं का तांता लगा रहता है, और दूसरे से कुछ आता ही नहीं। अब वह उन स्त्रियों की ज़बान कैसे पकड़े? उन्हें कैसे बताये कि इसका पिता भी किसी समय काशीराम से अधिक धनवान था। एक समय दाल के सट्टे में एकदम दो लाख का घाटा पड़ गया। उसके उपरान्त वह

सँभल न सका। यदि वह उस समय, मामा के कहने पर सट्टा न करता तो आज की स्थिति में कितना अन्तर होता। फिर वह नीलिमा से कहीं अधिक वस्तुएँ लाती। परन्तु इन स्त्रियों को कौन समझाए ?

स्वयं नीलिमा अपनी भौजाई का बहुत ध्यान रखती। उस पर अपने बड़े दर्जे या मायके की सम्पन्नता का कभी प्रभाव न डालती। प्रभाव तो दूर की बात ठहरी, वह उसे किसी प्रकार से भी कुछ अनुभव न होने देती। उस पर मनोहर का आदेश। इसलिये वह अपनी छोटी भावज से सदैव नम्रता का व्यवहार करती। यद्यपि इसके लिये अलग नौकरानी थी, फिर भी उसने उसे कह रखा था कि यदि छोटी बहू कोई आदेश दें, तो उसे अविलम्ब करना होगा, उसका अपना काम छोड़कर भी।

परन्तु एक बात पर उसका बस न था। विवाह के उपरान्त वह दो बच्चों की माता बन गई थी। एक पुत्र, एक पुत्री। दिनेश और मीना। परन्तु सुषमा के एक भी बच्चा न था। इसके लिये वह और मनोहर स्वयं चिन्तित रहते थे। परन्तु मनुष्यों का इन बातों पर क्या अधिकार ? सुषमा के लिये यह एक और हार थी। क्या वह बाँझ थी ? यदि वस्तुतः ऐसा था तो क्या ये लोग रणवीर का दूसरा विवाह न कर देंगे ? आखिर स्त्री को किसी वस्तु से बड़ी तो समझा नहीं जा सकता। वस्तु के लाभदायक न होने के कारण उसे फैंक दिया जाता है। स्त्री यदि बच्चा भी न देसके, तो किस काम की ? फिर क्यों न उसे छोड़कर दूसरी स्त्री का प्रबन्ध

किया जाय। यदि सचमुच इन मनुष्यों के हृदय में यह बात समा जाय, फिर? और आदमियों का क्या ठिकाना? उनका प्रेम कब एकसा रहता है? और रणवीर तो शादी के पूर्व भी स्त्रियों को जानता था। यदि किसी ने उसके हृदय में यह ज्ञान उत्पन्न कर दिया कि उसकी स्त्री बेकार है, बाँझ है, वह बच्चा देने के अयोग्य है और यदि वह सचमुच इस बात का विश्वास करले और फिर उसे दूसरे स्थान से सम्बन्ध भी आने लगें? उसके बाप से बड़े सेठों के यहाँ से, जो दहेज से उनका घर-बार भरदें? फिर? फिर वह क्या करेगी? वह तो कहीं की न रहेगी, उसका जीवन समाप्त हो जायगा। वह जीते जी मिट जायगी। कोई उसका ध्यान न रखेगा। उसकी दशा दासी के समान हो जायगी। अभी वह नीलिमा से परास्त होकर बैठी है। घर तो मनोहर और उसकी पत्नी का है। सर्वे-सर्वा तो वही हैं। प्रत्येक स्थान पर मनोहर ही का नाम है। उसका पति तो सेवक ही है। वह आज्ञा की प्रतीक्षा में ही रहता है। पहले तो उसकी कोई इच्छा नहीं, यदि हो भी तो कौन सुनता है?

ये विचार उसे परेशान करते रहते। पति बहुधा दौरे पर रहता। नीलिमा के बच्चों की ओर वह अधिक ध्यान न देती, वह अपने आप ही में कुढ़ती, स्वयं ही उलझती। विचारों के ताने-बाने में ही उलझी रहती, केवल कभी कभी उसके पास भगतसिंह की पत्नी शारदा आती।

चौथा परिच्छेद

एक दिन शारदा घर आकर भगतसिंह से बोली—

"छोटी बहू प्रसन्न दिखाई नहीं देती।"

"यदि प्रसन्न दिखाई भी दे तो हमें उस से क्या मिल जायेगा ?"

"घर में किसी वस्तु का अभाव नहीं। मनोहर उसे किसी बात से दुःखी नहीं करता। बड़ी बहू उस से कितना प्यार करती है ....।"

"बड़ी बहू के प्यार से क्या होता है ?" भगतसिंह ने उसे बीच ही में टोका "रणवीर उसे प्यार करता है या नहीं ?"

"क्यों नहीं करता ?" शारदा बोली, जैसे उसके पति ने विचित्र बात कही हो। "यदि वह प्रेम न करेगा तो और कौन करेगा ? दूसरे रणवीर तो उसका सेवक है, परन्तु .... ?"

"रुक क्यों गई ? कोई विशेष कारण है ?" उसने हैरानी से पूछा।

"विवाह हुए चार वर्ष बीत गये, परन्तु बच्चा नहीं हुआ।" वह आह भरकर बोली।

"तो इसमें मेरा क्या अपराध है ?"

"क्या बेकार बात कर देते हैं आप भी ? आप के अपराध की इसमें क्या बात है ?"

"मैंने सोचा कि तुम किसी की ओर से वकालत कर रही हो।" वह हँस कर बोला।

"इसे छोड़ो। दूसरों को कहने से पहिले अपनी चारपाई के नीचे तो डण्डा फेरो। खुद के बच्चा है नहीं, दूसरों को दान की सोच रहे हैं।"

"इसमें तो तुम्हारा अपराध है।"

"हाँ ! हर बात में स्त्री ही का अपराध होता है।" वह व्यङ्ग से बोली। फिर रुक कर कहने लगी—

"वहाँ भी शारदा का अपराध होगा।"

"नहीं रणवीर का" भगतसिंह ने कहा।

"उसको कैसे मालूम ?"

"मैंने वैसे ही कह दिया। हो सकता है ठीक हो।"

"परन्तु वह बेचारी उदास सी रहती है।"

"केवल इतनी बात पर ?" भगतसिंह ने कुछ जेब में ढूँढ़ते हुए कहा।

"यह क्या छोटी सी बात है ?"

"तो तुम भी तो उदास रहती होगी ?" उसने सिग्रेट केस से

सिग्रेट निकाल कर मुख में रखते हुए पूछा।

"हटो भी" शारदा बोली। उसके मुख मण्डल पर लालिमा नाच रही थी। "आपको तो सदा मजाक सूझता है।"

"किस पाजी को मज़ाक सूझता है।" उसने दियासलाई जलाकर, सिग्रेट को सुलगाते हुए कहा—"इतनी गम्भीर बात, और मैं मजाक करूँ।" फिर एक कश लगाकर बोला—"तुमने बतलाया नहीं कि उसकी उदासी का दूसरा कारण क्या है?"

"कारण तो विशेष कोई दिखाई नहीं देता।" वह बोली। "परन्तु स्त्रियाँ कितने ही बड़े घर की क्यों न हों ईर्ष्या, द्वेष इन्हें बहुत प्रिय होता है।"

"तुम्हारा अभिप्राय है कि वह बड़ी बहू से ईर्ष्या रखती है?"

"हो सकता है।" शारदा ने कहा।

"हो सकता है।" उसने अपनी बात को दुहराते हुए कहा। वह मूढ़े पर पाँव के बल बैठा था, और वह आँगन में उसके पास बैठी पोनियाँ बना रही थी। सिग्रेट का धुआँ भगतसिंह के नेत्रों के सामने मँडराता हुआ ऊपर को उठ रहा था। उसने फिर कश पर कश लगाया। सिगरेट की लाल चिनगारी चमक रही थी, और धुआँ घूम रहा था। उसने जल्दी जल्दी कश लगाने आरम्भ किये। फिर सिगरेट को आँखों के सामने लाया, परन्तु वह अभी आधी शेष थी। उसे जैसे इस बात पर क्रोध आगया कि इतनी पीने के बाद भी वह समाप्त न हुई, और उसने उसे बुझा कर आँगन में फैंक दिया। शारदा अपने कार्य में लगी थी। अपने पति की

ओर आकर्षित न हुई। वह वहाँ से उठा, और ड्योढ़ी में आकर चारपाई पर लेट गया।

ड्योढ़ी तीन कामों के लिये प्रयोग में लाई जाती थी। उसमें एक ओर तो भैंस बँधती थी, सदैव नहीं, बरसात में और सर्दियों में और दोपहर को गर्मियों में। दूसरी ओर भूसा, उपले और ईंधन पड़ा था। बीच में एक चारपाई पड़ी रहती थी, उस पर कुछ बिछा न था। वह पीठ के बल उस पर लेटकर छत की कड़ियाँ गिनने लगा, जैसे कड़ियों में जीवन आगया। वे हिलीं और वे उसे उतनी ही नाचने वाली नर्तकियाँ दिखाई दीं। कितनी नर्तकियाँ नाच रहीं थीं? नहीं केवल चार थीं। चारों नाचती रहीं। फिर उनमें से एक आगे बढ़कर बायाँ हाथ कान पर और दायाँ ऊपर हवा में उठाकर, गाने का अन्तरा कहती—

"लम्बी बाँह करके ओ लम्बी बाँह करके" दूसरी नर्तकियाँ इस अन्तरे को उठातीं और दुहरातीं।

"लम्बी बाँह करके, ओ लम्बी बाँह करके।" फिर आगे वाली नर्तकी नाचने लगती और शेष तीनों तालियाँ बजाती हुई गातीं।

"गेड़ा दे लम्बिये मटियारे, लम्बी बांह करके"

"गेड़ा दे लम्बिये मटियारे, लम्बी बांह करके"

वे खूब जोश में आकर नाचतीं, उनके साथ जैसे विद्युत् शक्ति से चलायमान होकर, सारा समूह जोश में आजाता, और गाँव वाले "वाह वाह" का शोर बुलन्द कर देते। परन्तु वे नागरिकों की

तरह कोरी दाद न देते। उसके साथ ही रुपयों की वर्षा आरम्भ हो जाती। उस समूह में से एक मनुष्य खड़ा हुआ। यह था जगतसिंह, भगतसिंह का बाप। उसके दायें हाथ में रुपया था, और वह अपना हाथ ऊपर हवा में नचा रहा था। उसे खड़ा देख सब से आगे वाली नर्तकी उसकी ओर बढ़ी। मनुष्यों ने शीघ्र ही उसे मार्ग दिया। परन्तु जब वह गुज़री तो कुछ मनुष्यों ने उसके लँहगे को ज़रा छुआ। फिर उसे चूमा। दूसरों ने उसके पाँव की मिट्टी को उठाकर चूमा। इससे उनको अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ। दूसरे उसकी ओर निराशा की दृष्टि से देख रहे थे। जब वह जगतसिंह के पास पहुँची, तो उसने उसे रुपया दिया और उसे आँख मारी। इस पर सारे समूह में तालियाँ गूँज उठीं। हू हू का शोर बुलन्द हुआ। इस सब का रुपया लेने वाली पर कुछ प्रभाव न पड़ा। उसके लिये वह कोई नई बात न थी। वह तो ऐसी बातों की अभ्यस्त हो चुकी थी। वह इन बातों से अप्रसन्न न होती। इनके न होने से वह अवश्य निराश होती। परन्तु ग्रामवासियों के लिये उसकी मुसकराहट, उसकी हँसी, उसकी एक अदा, सञ्जीवनी बूटी होती। जैसे वह मुर्दों में जान डाल रही थी। जैसे मुर्झाई हुई आत्माओं को नव जीवन प्रदान कर रही हो। वह फिर लौट कर आई। फिर गाना आरम्भ हुआ। परन्तु अभी उसने वही अन्तरा उठाना आरम्भ ही किया था कि दूसरे कोने से सुक्खासिंह रुपये लेकर खड़ा होगया। वह उधर चली। फिर तीसरा व्यक्ति, चौथा, पाँचवाँ, छठा और मुक़ाबला

आरम्भ होगया। जगतसिंह उस दिन आवश्यकता से अधिक चढ़ा चुका था। और वह भी भट्टी की बनी हुई, जो कि गाँव में आम तौर से बनाई जाती थी। वह रुपयों से जेब भरे बैठा था। साधारणतया नाचने वालियों को लाने का प्रबन्ध उसी के माथे होता, और कम से कम इस कारण से वह दिल खोल कर खर्च भी करता। किसी को साहस न होता कि उसे परास्त कर सके। परन्तु होड़ के बिना हार मानने को कोई तैयार न था। चारों ओर से रुपयों की वर्षा आरम्भ हो जाती। नाचने वाली बड़ी प्रसन्न होतीं। ऐसा मुक़ाबला उनके अनुकूल होता। तो उस दिन जगतसिंह ने पी रखी थी। नाच और गाना चलरहा था। रुपयों की होड़ जारी थी। तब लोगों का ध्यान गाने से हट कर मुक़ाबले की ओर लगा हुआ था। सारे गाँव वाले अधिक रुपये तो दे नहीं सकते, दो दो, चार चार तो प्रसन्नता से दे सकते थे क्योंकि रंडियों और नर्तिकाओं को फ़सल काटने के बाद ही बुलाया जाता था, और तभी सब की जेब में पैसे होते थे। लेकिन घरवालियों का भी तो ध्यान रहता था। साधारणतया अनाज बिकने ही वे सब रुपया अपने हस्तगत कर लेती थीं। वे जानती थीं कि उनके पुरुष रुपये की सूरत को तरसते हैं, और रुपया मिलते ही निरङ्कुश हो जाते हैं। वे गाँव के इस दुर्भाग्य को तो जानती थीं। ये लोग उन नगर की सस्ती स्त्रियों के कितने भूखे होते हैं और केवल दर्शन के। वे दर्शन को ही बहुत कुछ समझते हैं। इस बात को जानते हुए उनकी स्त्रियाँ यथा-शक्ति रुपये को अपने अधिकार में

कर लेती थीं। वह अनाज शहर में बेचते और दो चार रुपये लँगोट की लाँग में बाँध कर रख लेते, और इस अवसर पर व्यय करते। गेहूँ उस समय बहुत सस्ते दामों में बिकते थे, इस कारण थोड़ी बिक्री होती और वे थोड़े ही रुपये बचा पाते थे। जब नृत्य आरम्भ होता, और जगतसिंह सब से पहले रुपया निकाल कर बात आरम्भ करता, तो सब लोग लँगोटों की लाँग खोलकर बैठ जाते और एक एक करके अपनी एकत्रित पूँजी को इसी के लिये व्यय करते। जब सब लोग अपने रुपये व्यय कर चुके, तो मैदान में केवल दो व्यक्ति रह गये। सुक्खासिंह और जगतसिंह। जगतसिंह सब कुछ सहन कर सकता था, पर इस अवसर पर मुक़ाबला सहन न कर सकता था। वह गाली खाकर इतने क्रोध में न आता, जितना वेश्याओं को रुपया देने के विषय में, अपने समक्ष खड़ा व्यक्ति देखकर। एक समय था जब उसके पास ग्राम में सब से अधिक भूमि थी, ५० एकड़। अब प्रति वर्ष रंडियाँ आतीं और भूमि कम होती जाती, इतनी कि उस समय उसके पास केवल आठ एकड़ रह गई थी। परन्तु ज़मीन घटने के साथ, उसका दिल छोटा न हुआ। सम्भवतः बढ़ता ही गया। फिर उसका कोई दूसरा काम भी न था। शराब और रंडी ! बस। सिगरेट वह न पीता। जुआ वह न खेलता। मुक़द्दमें बाज़ी वह न करता। उसमें गुण भी थे। वह निडर था, बहादुर था, साहसी था, निर्धनों का सहायक था। उसके पास एक दयालु और सहानुभूति से भरा हृदय था। परन्तु वह किसी अन्य पुरुष को अपने

मुक़ाबले पर न देख सकता, और विशेष कर इस विषय में। जब दोनों बीस-बीस रुपये दे चुके, तो जगतसिंह ने दो रुपये के हिसाब से आरम्भ किया। ज्यों ही बानो घेरे में गई, सुक्खासिंह ने खड़े होकर उसे आवाज़ दी और दो रुपये उस की ओर बढ़ाये। परन्तु वह घेरे में जाने न पाई थी कि जगतसिंह ने उसे संकेत किया। ज्यों ही उसने आँख मारकर उसके हाथ पर दो रुपये रखे, तालियाँ गूँज उठीं। फिर सुक्खासिंह की बारी आई। लोगों के लिये नाच से बढ़कर इसमें कहीं अधिक प्रसन्नता थी। नाच और गाना उनके मनोविकारों को उभारता और रुपयों का मुक़ाबला उनकी युद्ध-भावनाओं को। देहातियों के लिये मन बहलाव प्राणों से प्रिय होता है। और वे ऐसे अवसरों पर जीवन की बाज़ी लगा देते हैं। जब लगभग आध घण्टे मुक़ाबला चलता रहा तो सुक्खासिंह ने खड़े होकर पाँच रुपये का नोट दिखाया। लोगों ने तालियाँ पीट कर, हड़बोम मचादी। जगतसिंह के शरीर में आग लग गई। मानो सुक्खासिंह ने पाँच रुपये का नोट नहीं दिखाया, बल्कि उसके अन्दर विष भरा तीर चुभोया था। उसकी आँखों में जैसे अङ्गारे चमकने लगे। सुक्खासिंह की इतनी हिम्मत! क्रोध का प्रथम आवेग जिह्वा पर होता है। वह बे-बस होकर बोला—

"माँ फिरे माँगती और बेटा करे दान। कमबख़्तों को खाने को तो मिलता नहीं, और ख़ैरात बाँट रहे हैं।"

"हम किस साले से माँगने जाते हैं!"

"साले तेरे पास पैसा है ही कहाँ ? चोरी की होगी !"

"मैं तेरी माँ बेचकर पैसे लाया हूँ !"

"ठहर तेरी ऐसी ...."

जगतसिंह दो हाथ लम्बी गाली देकर सुक्खासिंह की ओर लपका। लोग मार्ग से हट गए। रंडियाँ भाग निकलीं। बच्चे चिल्लाते हुए दौड़े, और लोग घेरे में खड़े होगये। जगतसिंह के हाथ में लाठी थी, जिस पर एक ओर लोहा मढ़ा हुआ था। वह सुक्खासिंह के पास जाकर चिल्लाया:—

"आज मेरी लाठी खून माँग रही है।" और लाठी को बायीं तरफ़ से घुमाकर उसने सुक्खासिंह के सिर पर दे मारी। प्रहार घातक था। इससे पूर्व कि सुक्खासिंह अपनी लाठी का प्रहार करता एक दूसरा प्रहार उसके सिर पर पड़ा। सिर फट गया। लहू के फव्वारे छूट कर भूमि को रँगने लगे। पृथ्वी लाल होगई, सुक्खासिंह पछाड़ खाकर गिर पड़ा। इसके उपरान्त वह बेहोश हो गया।

"कोई इसका और साथी हो तो निकल आए मैदान में।" जगतसिंह ने ललकार कर कहा।

सब मौन खड़े रहे।

"यदि किसी में साहस है तो आजाए। फिर किसी को कहने का अवसर न रहे। अगर चाहें तो एक साथ आ जाएं।"

सब लोगों ने एक दूसरे की ओर देखा, जैसे आँखों से बातें कर रहे हों। परन्तु कोई न बोला। दुर्भाग्य से सुक्खासिंह के

दोनों लड़के अपने मामा के घर गये हुए थे, और आज उनके लौटने की सम्भावना थी। परन्तु वे अभी तक आये न थे। यदि वे होते तब तो युद्ध छिड़ जाता, और जगतसिंह को किये का दण्ड मिल जाता। परन्तु अब समय के चक्कर में कौन पड़े ? नेतासिंह, तोतासिंह, मिलखासिंह, नरोत्तमदास और अछरूमल्ल, बेहोश सुक्खासिंह को उठाकर उसके घर लाये।

उसकी स्त्री अपने पति की यह दशा देखकर क्रोध से तमतमा उठी। वह उसे रंडियों का तमाशा देखने से बहुत रोकती थी। इससे घरों का सर्वनाश और वंश का सत्यानाश हो जाता है। वह उसे भगतसिंह का उदाहरण देती जो घर फूँक कर तमाशा देख रहा था। परन्तु सुक्खासिंह ने उसकी एक न मानी, और आज करनी का फल पा रहा है। मगर जगतसिंह कौन होता है उसे सजा देने वाला ? उसकी इतनी हिम्मत ! आज उसने उसके पति को पीटा, कल उसके बच्चों को मार डालेगा ! नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। उसने एकदम एक विशेष व्यक्ति को धरमपुर भेजा कि शीघ्रातिशीघ्र उसके पुत्रों को बुलाकर लाए। सुक्खासिंह के सिर में देशी शराब डालकर उस पर पट्टी बाँधी गई, और शराब की एक बोतल उस पर उंडेल दी गई। आधी रात तक मानसिंह और गम्भीरसिंह लौट आये। उनके नेत्रों में खून उतर आया, और वे अपनी लाठियों को निकाल कर तेल देने लगे। कृपाणों को निकाल कर भी तेज किया गया, और दूसरे दिन प्रातः ही जगतसिंह से प्रतिशोध लेना निश्चय हो गया।

उनके आने का सन्देश पाकर उनके दल के अन्य व्यक्ति पौ फटने से पूर्व उनके घर आ पहुँचे। लड़कों के निर्णय की बात सुनकर बूढ़ा विक्रमसिंह बोला:—

"हाथ में आये हुए शिकार को गँवाना मूर्खता की हद है।"

"आज उसका सिर, कहीं और बेशक हो, उसके धड़ पर नहीं होगा।" मानसिंह बोला।

"यही तो मूर्खता है", विक्रमसिंह ने कहा।

"क्यों?"

"उसे मारने से ये दोनों भी फाँसी चढ़ जावेंगे। तीन आदमी जान से जावेंगे, दो घर नष्ट हो जायेंगे, और हाथ कुछ न आएगा।"

"तो फिर क्या करना चाहिये?"

"वही जो अवसर चाहता है। पुलिस में जाकर रपट करो। सुक्खासिंह को बैलगाड़ी पर लादकर थाने ले चलो। अस्पताल से सर्टिफिकेट लो। थानेदार आयगा, और जगतसिंह पकड़ा जायगा।"

"परन्तु जगतसिंह के विरुद्ध साची देने की किसमें हिम्मत है?"

"अभी न्याय और धर्म दुनिया से उठ नहीं गया है।"

"क्या मतलब?"

"लाला अनन्तराम झूठ नहीं बोल सकते।"

"क्या वे गवाही देने चलेंगे?"

"उन्हें जाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। पुलिस यहाँ

आयगी, और उनसे पूछेगी, वे मर भले ही जाएँगे परन्तु सत्य से मुँह न मोड़ेंगे। फिर पुलिस स्वयं उन्हें अदालत में बुलाएगी।"

विक्रमसिंह की युक्ति से सब की आँखों में चमक आगई। मानसिंह और गम्भीरसिंह ने अपनी दोनों लाठियाँ और कृपाणें बाहर कहीं छिपादीं, ताकि तलाशी के अवसर पर कुछ हाथ न लग सके, और अगले दिन वे थाने पहुँचे।

वही हुआ जिसकी विक्रमसिंह को आशा थी। अनन्तराम गवाही देने से डरते थे। परन्तु वे घटनास्थल पर उपस्थित थे। जो उनकी आँखों ने देखा, उन्हों ने बयान कर दिया। अदालत में जाकर भी वे झूठ न बोल सके। अब अनन्तराम की साक्षी का पुलिस और अदालत में बहुत विश्वास था। अदालत शायद सारे गाँव वालों की गवाही को इतना महत्व न देती जितना कि अकेले अनन्तराम की गवाही को। जगतसिंह ने उसकी बड़ी हाथाजोड़ी की, चापलूसी की कि वह उसके विरुद्ध गवाही न दे। परन्तु अनन्तराम क्या कर सकता था। उसका अपराध भी क्या था? वह अपनी इच्छा के विरुद्ध साक्षी देने गया, और उसने वही कहा जो उसकी आँखों ने देखा। इसका फल जगतसिंह को भुगतना पड़ा। उसे इस अपराध में पाँच वर्ष का कठोर दण्ड दिया गया।

जब वह जेल से लौट कर आया तो नाच तमाशे बन्द हो चुके थे। उसकी खेती नष्ट हो चुकी थी। उसकी स्त्री और छोटे बच्चे उसे सम्भालने में असफल रहे। घर का नक़शा बिलकुल

बदल चुका था। उसकी युवावस्था, उत्साह और साहस समाप्त होगया। पाँच साल उसके लिये पाँच शताब्दियों के बराबर थे।

और उसकी बरबादी का कारण कौन था? केवल अनन्त-राम। गाँव का कोई दूसरा व्यक्ति इतना साहस न कर सकता था। अनन्तराम की देखा-देखी दूसरों को साहस होगया।

वह अनन्तराम के इस व्यवहार को कभी भूल न सका। जेल से लौट कर, उसने अनन्तराम से बोल-चाल बन्द नहीं की। उससे प्रगट रूप मे मेल-जोल रखा। परन्तु उसके सीने का घाव कभी न मिटसका। जिस दिन वह अन्तिम यात्रा की तैयारी कर रहा था, उसने भगतसिंह को संकेत से समीप बुलाया। फिर उसके कान में बोला—

"अगर तुम अनन्तराम से प्रतिशोध न लोगे, तो मेरी आत्मा कभी शान्त न होगी। उससे अवश्य प्रतिशोध लेना।"

"यदि वह मरगया?"

"तो उसके बच्चों से। भूलना मत।" और उसने आँखें मूँदलीं।

बदला .... बदला .... बदला जैसे भगतसिंह को छत की कड़ियों और म्यालों पर केवल एक ही शब्द दृष्टिगोचर हो रहा था। बदला! उसने करवट ली। सामने दीवार और द्वार पर उसे एक ही वस्तु दिखाई दी। बदला। अनन्तराम से बदला, उसके बच्चों से बदला, उसके कुटुम्ब से बदला। उसने अनुभव किया कि सारा वातावरण

प्रतिशोध के शब्द से भरपूर है। वायु-मण्डल एक ही शब्द से व्याप्त है। जैसे दूर दूसरी दुनियां से वह आवाजें सुन रहा है, "बदला। बदला। बदला।" उसके पिता की आत्मा चिल्ला चिल्ला कर पुकार रही है, "बदला! बदला!! तुम बदला नहीं लेरहे, और मैं अशान्त हूँ। मुझे शान्ति चाहिये, और शान्ति का अर्थ है बदला।"

"शारदा!" वह चिल्लाया।

"क्या है?" वह भागी, घबराई हुई सी आई और बोली, "तुमने तो मेरी जान ही लेली थी।"

"बात ही ऐसी थी।" उसने उठकर कहा।

"कैसी बात? क्या बात?" वह अत्यन्त घबरा रही थी।

"पानी का गिलास लाओ।"

वह भागी भागी पानी का गिलास लाई। जब वह पी चुका तो उसने गिलास उससे लेकर भूमि पर रखा, अपने दुपट्टे के आँचल से उसके माथे का पसीना पोंछने और आश्चर्य से उसका मुख देखने लगी। वह बोला—

"शारदा! तुम्हें बापू का अन्तिम सन्देश स्मरण है?"

"नहीं! क्या सन्देश, कौनसा सन्देश? मैं नहीं समझी।"

"आवश्यकता भी नहीं। तुम क्या कह रहीं थीं कि सुषमा अप्रसन्न रहती है?"

"हाँ! परन्तु बात तो बतलाओ।"

"बात यह है शारदा" वह उसके मुख पर आँखें जमाते हुए

बोला। "मनोहर के पिता ने मेरे पिता का नाश किया, अर्थात् हमारा नाश किया। उसका बदला मनोहर को चुकाना होगा, सुषमा और रणवीर के द्वारा। तुम सुषमा से मित्रता करो। गहरी मित्रता। उसे अपनी मुट्ठी में करो। फिर उसे नीलिमा और मनोहर के विरुद्ध भड़काओ, इतना अधिक कि लपटें लपक कर शागिर्दपेशा वंश को समाप्त करदें। सुनती हो?"

"परन्तु ....।"

"परन्तु वरन्तु कुछ नहीं।" वह चिल्लाकर और आँखों से चिनगारियाँ निकालता हुआ सा बोला। तुम बात को ध्यान से सुनलो। इन विषयों में स्त्रियों को समझाने की आवश्यकता नहीं पड़ती। तुम स्त्री हो। यह गुण तुम्हारे स्वभाव में आवश्यकता से अधिक है। केवल इसे जागृत करने की आवश्यकता है। मुझे प्रति दिन का विवरण बताना होगा। तुम सुषमा को सम्भालो, मैं रणवीर को सम्भालता हूँ और देखो", वह रुक कर बोला "तुम्हारे व्यवहार से इस बात का पता तक न चले कि तुम्हारे दिल में मनोहर या उनके वंश के विरुद्ध कुछ भी सन्देह है। प्रगट रूप से तुम नीलिमा से भी मित्रता रखना। दोनों से मिलते रहना, परन्तु अपने कार्य से नहीं चूकना।"

पाँचवाँ परिच्छेद

अगले दिन शारदा रणवीर के घर गई। उसे पता था कि रणवीर दौरे पर बाहर गया हुआ है, और सुषमा उसे अकेली मिलेगी। सुषमा उस समय सिर धो चुकी थी, और छत पर बाल सुखा रही थी। बड़ी बहू नीचे रसोई में लगी हुई थी। उसे देख कर सुषमा बोली:—

"आओ बहिन, कैसे आना हुआ ?"

"मैंने सोचा बहुत दिन हो गये हैं, मिल ही आऊँ। क्या बाल धोए हैं ?"

"हाँ कुछ न कुछ तो करना ही चाहिये।"

"आजकल शायद भैया बाहर गये हुए हैं।"

"वे घर कब रहे हैं ?"

शारदा को बात करने का बहाना मिल गया। बोली—

"बहिन बुरा न मानो तो एक बात कहूँ।"

"क्या ?"

"भला छोटे भैया हमेशा दौरे पर ही क्यों रहते हैं ?"

"दूकान के काम के कारण ।"

"परन्तु काम अकेले उनका तो नहीं है।" फिर बात बदल कर बोली—

"बहिन आओ, तुम्हारे तेल लगादूँ ।"

"परन्तु तेल तो नीचे है, चलो नीचे कमरे में चलते हैं।" और दोनों कमरे में आगईं ।

सुषमा जमीन पर मूढ़ा रख कर बैठ गई, और शारदा पीढ़ी पर। तेल की शीशी उसके बालों में उंडेलते हुए बोली:—

"बहिन, तुमने क्या अपराध किया है कि अकेली सड़ती रहो। क्षमा करना, मैं ईश्वर-लगती कहती हूँ, और मैं ही क्या, सारा गाँव भी तो कहता है .... " वह एकदम रुक गई।

"क्या कहता है ? कहो ना, रुक क्यों गईं !"

"ना बहिन, मैं ना कहूँगी। कहने वाला सदैव बुरा बनता है। तुम मुझे ही कोसोगी।"

सुषमा ने पीछे मुड़कर उसका हाथ पकड़ लिया और कहने लगी—

"तुम्हें मेरी सौगन्द। बताओ भी, क्या कहते हैं ?"

"एक शर्त पर बतला सकती हूँ।"

"क्या शर्त ?"

"कि तुम भूलकर भी मेरा नाम किसी से मत लेना, अपने

पति से भी नहीं।"

"प्रतिज्ञा करती हूँ।"

"क़सम खाओ।"

"क़सम खाती हूँ।"

"देखो बहिन ! भाग्य को कोई अपने वश में न कर सका। परन्तु बड़ी बहू का विचार है कि वह करलेगी।"

"मतलब ?"

"तुम मुझे अकारण विवश करती हो। कहते सब हैं, पकड़ी मैं जाऊँगी।"

"परन्तु तुम्हें मेरी बात का विश्वास नहीं ?"

"मुझे स्वयं पर इतना भरोसा नहीं, जितना तुम पर है।"

"बात यह है, तुम रणवीर को लड़का नहीं देसकीं। यह तुम्हारा अपराध तो है नहीं, परन्तु बड़ी बहू का यही विचार है। और इसी लिये वह अपने देवर की दूसरी शादी की सोच रही है।"

"दूसरी शादी की ?" वह चिल्ला कर बोली।

"बहिन चिल्लाओ मत।" शारदा उसके मुख पर हाथ रख कर बोली—"बड़ी बहू सुनलेंगी तो आफ़त आजायगी।"

"परन्तु तुम्हें यह कैसे पता चला ?" वह आश्चर्य से भर कर बोली।

"और लोगों की जिह्वा पर आजकल बात ही क्या है ? सुना है बड़ी बहू की एक बहिन बड़ी सुन्दर है। उनका विचार है कि

रणवीर के लिये वह बहुत योग्य रहेगी। बहाना तो लड़के का है, परन्तु बात तो स्पष्ट प्रगट है।"

"क्या ?" वह घबरा कर बोली—

"बहिन ! क्या तुम बनती हो या सचमुच इतनी भोली हो ? क्या तुम साधारण सी बात भी नहीं समझ सकतीं ? आखिर इतना बड़ा घर। लाखों की सम्पत्ति। यदि उनकी बहिन होगी, तो ...." वह अचानक रुकी और घबरा कर बोली—"बाहर कोई है ?"

"नहीं, कोई नहीं।"

"तब सही।" शारदा की जान में जान आई। फिर साँस खींचकर बोली—

"बड़े आदमियों के दिल में भी इतनी खोट होती है। अत्याचार की बात तो यह है कि बड़े बाबू भी स्त्री के वश में हैं, वे उनकी हाँ में हाँ मिलाते हैं। क्या मजाल कि बड़ी बहू की इच्छा के विरुद्ध घर में एक पत्ता भी हिले। लोग तो कहते हैं कि बड़े बाबू खाँसते भी उनकी आज्ञा से हैं, और वह हैं कि घर में अपनी हुकूमत समझती हैं।" फिर वह रुक गई और शनैः शनैः उसके बालों को दाहिने हाथ की हथेली से घिसने लगी, फिर बाएँ से। फिर बारी बारी। इस कार्य से सुषमा को कितना आराम मिल रहा था, परन्तु शारदा की बातों ने उसके अन्दर सोई हुई चिनगारी को फूँकना आरम्भ करदिया था। ये बातें पहिले भी उसके दिल में उठा करती थीं। परन्तु वह इनके

विचार ही से काँप उठती थी। क्या ऐसा विचार करना पाप नहीं ? उसके पति अपने भाई की कितनी इज्जत करते हैं। उन्हें पिता के समान समझते हैं, उनकी बात से इनकार करने का साहस नहीं कर सकते, और भाई भी, कम से कम, प्रगट में तो उन्हें बेटे से बढ़कर मानते हैं। दौरे पर भेजते हुए उनके आराम का कितना ध्यान रखते हैं। स्वयं आकर उनका बिस्तर बँधवाएंगे, स्वयं सन्दूकों में कपड़े रखवाएंगे। यात्रा के पूरे सामान की जांच पड़ताल करेंगे, साथ हमेशा दो नौकर भेजेंगे, ताकि लल्ला को मार्ग में कष्ट न उठाना पड़े, और सदैव उन्हें लल्ला कहेंगे। फर्स्ट क्लास की सीट रिजर्व करायेंगे। जेब-खर्च के लिए वह जितने जी चाहे रुपये लेलें। फिर उनके जाने के उपरान्त मेरा कितना ध्यान रखेंगे। बार बार आकर मेरी आवश्यक्ताओं के विषय में पूछेंगे। फल, मिठाई के ढेर लगाते रहेंगे। बड़ी बहू अनेक बार पूछेंगी। भला इस सब का क्या अर्थ है ? उसने शारदा से कहा —

"शारदा ! तुम नहीं जानती, ये लोग मेरी कितनी ख़ातिर करते हैं ?"

"बलिदान से पहिले बकरे की भी ख़ूब ख़ातिर की जाती है।"

फिर दाईं हथेली, फिर बाईं, दायीं और बाईं। जैसे चाबुक लगाने से घोड़ा तेज हो जाता है, हथेली घिसने से सुषमा के विचारों का घोड़ा सर-पट दौड़ने लगा। बलिदान का बकरा या बकरी ? तो क्या उसे भी बलिदान कर दिया जावेगा ? भाभी

की इच्छाओं पर ? इसीलिए उसकी आव-भगत की जा रही है ? परन्तु इसमें उसका क्या दोष है ? दोष यह है कि वह बच्चेवाली नहीं, परन्तु इस बात को कौन पूछता है ? वह जानती थी कि गांव में नानकचन्द की स्त्री के बच्चा न होने के कारण उसका दूसरा विवाह हुआ था। दोनों स्त्रियाँ घर पर मौजूद थीं, परन्तु पहली स्त्री पर क्या बीतती है, यह कौन नहीं जानता ? उसका नाम था रूपा। और दूसरी का नाम था सरला। वह रूपा और सरला के जीवन की तुलना करने लगी। यदि वे दोनों इकट्ठी एक घर में रह सकती हैं तो वह क्यों न अपनी सौत के साथ रह सकेगी ? उसने शारदा से पूछा—

"तुम रूपा के घर जाती हो ?"

"हाँ! क्या रूपा ?" वह चौंक कर बोली। "हाँ ! हाँ !! रूपा के घर ?" "क्यों नहीं जाती हूँ ? परन्तु बहिन, क्या है, उस बेचारी का जीवन ! कुत्ते से भी बुरा। शायद उसे विष नहीं मिलता। मैं उस दशा में एक क्षण भी प्रतीक्षा न करती।" कुछ देर रुक कर बोली—

"फिर तुम्हारी और उनकी दशा में महान् अन्तर है। तुम्हारी बहिन तो इस घर में नहीं जो तुम्हारी सहायता करे। यहाँ तो तुम्हारे विरुद्ध सदैव एक विरोधी दल बना रहेगा। उन दोनों की हर बात में एक ही सम्मति होगी। तुम्हारे विरुद्ध उनका षड्यन्त्र चलता रहेगा। तुम्हें हर बात में दबना होगा। रूपा का पति तो उससे बात भी करता है, उससे मिलता भी है, परन्तु

भैया की भला क्या मजाल होगी कि तुम से मिल सके ? अभी देखो ना पूस का मास है, क्या इस मास में भी पति अपनी पत्नी से दूर रहते हैं ? यदि मेरा पति इस मास कहीं बाहर चला जाय, तो मैं उस से बात भी न करूँ। यदि दस दिन लगातार हत्था-जोड़ी न करे तो नाम बदल लूं। बहिन, इतनी लम्बी रातें, अकेली स्त्री से कट सकती हैं ? परन्तु वह तो सेवक ठहरा। बहिन, क्षमा करना, यह दुष्ट जीभ बस में भी तो नहीं रहती। अब न बोलूंगी।" और फिर मौन हो गई।

"तुम क्यों डरती हो ? शारदा ! किसी की क्या ताक़त है कि तुम्हारा बाल भी बांका कर सके। मैं समझती हूँ कि तुम मेरे हित की कहती हो।"

"राम तुम्हारा भला करे, बहू।" वह दोनों पैर उठाकर पीढ़ी पर चौकड़ी लगाती हुई बोली—

"मुझे तो तुम्हारी हरी-भरी जवानी और भोली सूरत पर दया आती है। नहीं तो गाँव में और औरतें भी हैं, नव-विवाहिता बहुएं हैं। लोग दो छोड़ तीन विवाह कराते हैं, परन्तु मेरी बला से। अब तुमसे क्या छिपाऊं। छोटे भैया और यह (भगतसिंह) कब से एक दूसरे के मित्र हैं। ये घर पर आकर प्राय: उनकी बातें करते हैं, और उनकी तारीफ़ के पुल बाँधते हैं। परन्तु एक बात यह भी कहते हैं कि वह बहुत भोले हैं। बड़े भैया की अपेक्षा सीधे हैं। किसी दिन बुरी तरह ठगे जायँगे। उनकी बातें सुनकर मेरे हृदय में तुम्हारे लिए सहानुभूति

जाग उठती है। और मुझे क्या कुछ लेना-देना है ? यदि इनका मित्र न होता, तो एक छोड़ दस विवाह करता। अब तुम नहीं जानतीं। चिन्ते जाट ने तीन शादियाँ कराईं। तीनों में जूता चलता है। उनका घर रणक्षेत्र बना रहता है। परन्तु मुझे क्या ? मैंने उधर देखा भी नहीं। अब बहिन, आदमियों की बातों से हमें क्या ? परन्तु मैंने तो और भी सुना है।"

"क्या ?"

"बहिन, बहुत देर हो गई है, कोई आजायगा। अब फिर आऊंगी।"

"कोई नहीं आता। तुम न डरो। पहिले बताओ तुमने क्या सुना ?"

शारदा ने बन्द कमरे में चारों ओर देखा, जैसे उसे दीवारों से भय हो। फिर वह उसके कान के पास मुँह ले जाकर बोली–

"यही कि दुकान का सारा काम बड़े बाबू के नाम चलता है। आवश्यकता पर कभी भी छोटे बाबू को पृथक् किया जा सकता है। बाद में शोर मचाने से क्या लाभ होगा ? आप लोग मुँह तकते रह जायेंगे, और वहाँ सब उलट-पलट हो जायगा।" फिर बोली "अच्छा बहिन, अब मैं चलती हूँ, बड़ी देर होगई। फिर मिलूंगी।" इतना कहकर शारदा अपने घर की ओर रवाना होगई।

छठा परिच्छेद

रणवीर दौरे से लौटा तो सुषमा का चेहरा देखकर चकित होगया। न मुख-मण्डल पर वह तेज, न गालों पर पके सेब की लालिमा। न आंखों में वह चमक, न बातों में चंचलता और न वह चपलता। इस परिवर्तन का कारण? क्या वह उसकी स्मृति में बहुत परेशान रही है? वह पन्द्रह दिन के पश्चात् ही तो लौटा है, इससे पूर्व वह कभी कभी एक मास के पश्चात् भी आया है। पन्द्रह दिन में ही यह परिवर्तन कैसा? हो न हो उसे मायके की याद सताती है। परन्तु इसमें कौन-सी बड़ी बात थी। भाभी को उसका एक संकेत ही पर्याप्त था, और सब ठीक हो जाता। वह तुरन्त उसे भेजने का प्रबन्ध कर देती। परन्तु क्या वह भाभी से ही तो अप्रसन्न नहीं? हो सकता है। परन्तु उनके विवाह से लेकर आज चार वर्ष तक कोई उलाहने का अवसर नहीं आया है। माताजी के बाद घर में हम तो उन्हें ही माता समझते आये हैं। सुषमा

भी उन्हें माँ से अधिक समझती है। फिर भाभी भी तो कितनी अच्छी हैं। क्या किसी भाभी ने अपने देवर और देवरानी से आज तक इतना प्रेम किया है ? मेरे विचार में तो यह असम्भव है। भला, इतना प्रेम कौन कर सकता है ? माना कि सम्मिलित कुटुम्ब है और इसमें मेरा बराबर का भाग है, परन्तु दुनियां में पैसा ही तो सब कुछ नहीं। प्रेम पैसे से तो खरीदा नहीं जा सकता। भैया और भाभी दोनों मेरा और सुषमा का कितना ध्यान रखते हैं ! मैं नहीं जानता कि सुषमा की माँ भी उससे इतना प्रेम करती होगी। क्या मैं उसे जानता नहीं ? अपने दूसरे बच्चों का भी वह इतना ध्यान नहीं रखती। कोई पुरानी कमीज पहिने फिरता है, तो किसी का जूता ही नहीं। कोई कोट के बिना ही फिर रहा है, और किसी का पाजामा फटा हुआ है। उनके घर पर कोई अनुशासन नहीं। परन्तु यहाँ तो हर बात भिन्न है। इस बात की मुझ से भाभी को अधिक जानकारी है कि मेरे ट्रंक में कितने सूट और क़मीजें हैं, कितने पाजामे और धोतियाँ हैं। सुषमा के कपड़ों की भी उसे गिनती है। सूट, साड़ियाँ, जम्पर, जैसे उसकी अंगुलियों पर गिने हों। फिर बिलकुल समय पर स्वयं ही नये कपड़े सिलवाती रहेंगी। यह भैया का सूट, और यह नीलिमा की साड़ी। ज्योंही मरदाना या जनाना कोई नया डिज़ाइन निकला, उसके कपड़े सिलकर आगये। हमें तो यह भी पता नहीं चलता कि कपड़ा आता कहाँ से है, क्या भाव आता है, कौन उसे सीता है ? जैसे यह सब चमत्कार हो।

अपने जूतों का मुझे इतना ध्यान नहीं जितना भाभी को है। यही बात खाने की है। न तो सुषमा को चिन्ता, न मुझे, कि आज क्या बनेगा, कहाँ से आएगा, कौन पकाएगा ? हम दोनों का तो केवल खाने-भर से सम्बन्ध रहता है। बस।

तो फिर यह सब क्यों ? कुछ तो बात अवश्य है। उसे कोई कारण दृष्टिगोचर नहीं हुआ। सम्भव है कि उसे बच्चे का ध्यान हो। परन्तु इस पर किसी का क्या बस है। सुषमा की अपनी सगी भाभी ही का क्या हाल है ? विवाह हुए बारह वर्ष होगये, परन्तु सन्तान का कोई चिह्न नहीं। तो क्या वह इस चिन्ता से मर रही है। बच्चा होना ईश्वर के अधीन है या मनुष्य के ? यदि ईश्वर के, तो हमें पश्चात्ताप से क्या लाभ है ? यदि मनुष्य के, तो इसके साधन जुटाओ। यह क्या कि अप्रसन्न होकर लेट गए !

उसने पूछा—"सुषमा आखिर बात क्या है ?"

वह फिर भी मौन रही और चादर में सिर छिपाए, सिसक सिसक कर रोने लगी।

वह परेशान होगया पहिले जब वह दौरे से लौटकर आता था, वह बन-ठन कर और सज-धज कर उसकी प्रतीक्षा किया करती। नये से नया, सुन्दर सूट और बढ़िया जूता पहिन, आँखों में सुरमा, माथे पर बिन्दी, चेहरे पर क्रीम और पाउडर, अधरों पर हलकी हलकी लाली लगाए वह उसका स्वागत करती, उसकी बलाएं लेती। वह जी भर कर उसे प्यार करता।

फिर वह और प्यार करता भी किसे था ? इतने दिन दौरे पर उसे केवल इसके, किसी अन्य का ध्यान भी तो नहीं आता था। वह उससे मिलने के लिए भागा-भागा आता। सब से पूर्व उससे ही आकर मिलता। वह भी उससे कितना प्यार करती। मीठी-मीठी बातें करती। घर के सब समाचार कहती। भाभी ने उसे यह बना कर दिया, बड़े भैया ने उसके लिए शहर से यह मँगवाया। मनोरमा ने ये हँसी व विनोद की बातें कीं। रुक्मणी ने यह हँसी-मजाक किया। किस प्रकार रुक्मणी ने एक पड़ौस में आये हुए हाथ देखने वाले को बनाया, और किस प्रकार पड़ौस में एक विवाह में स्त्रियों ने शरारत की। परन्तु इस बार तो ऐसे पड़ी है, जैसे साँप सूंघ गया हो।

"आखिर कोई बात तो होगी ?" उसने उसकी चारपाई पर बैठकर, उसे हिलाते हुए पूछा।

"कुछ नहीं", वह मुँह छिपाये बोली।

"फिर इस प्रकार लेटी हुई रो क्यों रही हो ?"

"यों ही।"

"पहिले तो ऐसा कभी न हुआ था।"

वह मौन रही।

"यदि तबियत खराब है," वह बोला "तो डाक्टर को बुला लाऊँ ?"

"वह क्या करेगा ?"

"मैं कुछ नहीं कर सकता, डाक्टर कुछ नहीं करने का, तो

फिर कौन कर सकता है ?"

"ईश्वर।"

"क्या रोग इतना भयङ्कर हो गया है ? परन्तु मैं भी तो जानूँ।"

"तुम जानकर क्या करोगे ?"

"तो और कौन करेगा ?"

"जिसके पास दिल है।"

"अब तक तो मेरा विचार था कि मेरे पास दिल है। और सम्भव है कि तुम्हारा भी यही विचार था। नहीं जानता कि यह परिवर्तन कैसे हुआ ? तो तुम मुझे बतलाओगी नहीं ?"

"मैं बतलादूँ यदि उसका कोई लाभ हो। आप या तो उसे हँसकर टाल देंगे या सब घर वालों को इकट्ठा करके उनके सामने दुहराएंगे कि यह क्या बक रही है। या मुँह फुला कर स्वयं भी एक ओर लेट जाओगे।"

"विषय गम्भीर मालूम होता है। परन्तु फिर भी तुम बतलाओ तो।"

"एक शर्त पर।"

"क्या शर्त ?"

"कि मेरी बात को मानना होगा।"

"यदि मानने वाली होगी तो।"

"फिर आप मुझे मत सताइए, मुझे आराम करने दीजिये।" और वह मुँह छिपा कर लेट गई।

कौनसी ऐसी बात है, वह सोचने लगा। अवश्य कुछ गड़बड़ है। इसे कोई नई धुन सूझी है या इसके सिर पर भूत सवार है। अवश्य कुछ गम्भीर बात है। इससे पूर्व तो आज तक इसने कभी ऐसा नहीं किया। उसकी हैरानी बढ़ने लगी। आख़िर न रहा गया। बोला—

"अच्छा तुम्हारी शर्त स्वीकार करता हूँ।"

"शपथ खाओ", वह लिहाफ़ के अन्दर से बोली।

"हाँ शपथ खाता हूँ।"

"मेरी।"

"तुम्हारी, अपनी दोनों की।"

"तो लो सुनो" वह लिहाफ़ के अन्दर से मुँह निकाल कर बोली। "आप घर और दूकान का बँटवारा करा लीजिये।"

"बँटवारा ? घर और दूकान का!" वह चिल्लाकर बोला और चारपाई से उठकर सोफ़े में धँस गया।

"बस ? तभी इतनी देर से व्याकुलता के साथ बात सुनने की इच्छा प्रगट कर कहे थे ? मैं तो आप से कह रही थी कि आप क्यों व्यर्थ परेशान हो रहे हैं। जब मैं भट्टी में जल रही हूँ, तब आप क्यों व्यर्थ सेंक के लिए दु:खी हो रहे हैं ? मैं तो इस बात को जानती थी कि आपभी, भाई भाभी को प्रसन्न करने के लिए, प्रसन्नता के साथ अपनी स्त्री का बलिदान दे सकते हैं। फिर स्त्री का अधिकार भी क्या है ? वह तो वैसी ही है जैसे मेज़ कुर्सी।"

"परन्तु कोई कारण तो हो ?"

"कोई कारण ?" वह चारपाई पर बैठकर बोली।

"आप पूछिये क्या कारण नहीं"। फिर रोष से बोली—

"आपको तो अपने हानि-लाभ की चिन्ता नहीं, परन्तु मैं कैसे आंखें होते हुए देखने से इनकार करदूँ ? एक नहीं, हर बात में यहां चालाकी बर्ती जाती है। भैया और भाभी आपसे बुद्धिमान हैं, वह हमें विष देकर नहीं, अमृत देकर मारना चाहते हैं।"

"कैसे ?" वह मुसकराकर बोला।

"वे भी ऐसे ही मुसकराते रहते हैं और मीठी छुरियां चलाते रहते हैं। आप समझते नहीं, तो कोई क्या करे।"

"उदाहरण ?"

"आपको सूचित भी न किया जायगा, और आपका प्रत्येक वस्तु से अधिकार छीन लिया जायगा।"

"कैसे ?"

"कैसे ? माना कि बड़े बाबू तुम्हारे सगे भैया हैं, परन्तु भाभी तो सगी नहीं। यदि आप मनुष्य की प्रकृति को थोड़ा बहुत समझते हैं, तो आप इस बात को मत भूलिए कि भाभी को आपकी अपेक्षा अपना पुत्र अधिक प्यारा है। उसके लिए वह तुम्हारा पूरा बलिदान दे सकती है। वह इस बात को भली प्रकार जानती है कि हमारे बच्चे उसके बच्चों के मार्ग में रोड़े बनेंगे।"

"परन्तु हमारे बच्चे हैं ही कहाँ ?"

"यह मेरा अपराध तो नहीं, परन्तु इसका अभिप्राय यह नहीं कि बच्चे होंगे ही नहीं। मैं कितनी ही ऐसी स्त्रियों को जानती हूँ जिनके शादी के दस दस बारह बारह वर्षों के पश्चात् बच्चा पैदा हुआ। यह तो ईश्वर की लीला है, इस पर हमारा और तुम्हारा कोई वश नहीं। परन्तु जिस वस्तु पर हमारा वश है, हमें उससे आँखें नहीं बन्द करना चाहिये। इस समय तो सब ठीक चल रहा है, परन्तु कल की भगवान् जाने। यदि थोड़ी बहुत गड़बड़ हो जाय, और आपस में मन-मुटाव हो जाय, तो तुम्हें यहां से कुछ न मिलेगा। आप मुझसे अधिक बुद्धिमान हैं। आप बतलाइये कि कितने ही घनिष्ट सम्बन्ध होने पर भी किस घर में आपसी फूट नहीं पड़ी? किस घर में बँटवारा नहीं हुआ? कहाँ भाई भाई सदा ही आपस में मिलकर रहे? यहाँ यदि यही दशा आज नहीं, तो कल आ जाएगी। परन्तु तब तक शायद समय हाथ से निकल जाय, और आप मुँह ताकते रह जाँय।"

"यह बात मेरी समझ में नहीं आई।" उसने सोफ़े से पीठ लगाकर ऊपर छत की ओर देखकर कहा।

"मेरी समझ में भी नहीं आई थी," वह बोली।

"तो फिर किसने तुम्हें समझाया?"

वह फौरन सँभल गई और बोली, "किसी को समझाने की क्या आवश्यकता थी? यहाँ मेरा अपना है ही कौन? मायके में तो कोई होता ही है। फिर मायके गये मुझे कई मास बीत गये।"

"तो तुमने खुद ही यह सब सोचा!"

"मनुष्य स्त्री को सदैव मूर्ख समझता है, चाहे वह उसे कितना ही नाच क्यों न नचावे।"

"तो तुम मुझे नचा रही हो?"

"मैं नहीं, तुम्हारी भाभी", वह व्यंग से बोली।

"वह बेचारी क्या नचाएगी!"

"मनुष्य को कोई दूसरा व्यक्ति इतने धोखे में नहीं रख सकता जितना कि वह स्वयं को। आग की चिनगारी को वह कितना तुच्छ समझता है, परन्तु जब वह घर जला कर रख देती है, तो उसकी आँखें खुलती हैं। लेकिन फिर क्या लाभ?"

"मुझे तुम्हारी युक्तियों में कोई सत्यता नहीं प्रतीत हुई।"

"वह तो तभी प्रतीत होगी जब सिर पर आ पड़ेगी। परन्तु फिर 'का वर्षा जब कृषि सुखाने'।"

"मुझे तो कृषि के सूखने का कोई भय नहीं दिखाई देता।"

"मूर्ख किसान भी ऐसा ही कहा करते हैं, और जब वह सूख जाती है, तो भाग्य को कोसते हैं। बुद्धिमान किसान वर्षा न होने की दशा को पूर्व ही ध्यान में रखते हैं, और पानी का प्रबन्ध करते हैं।"

वह मौन होगया और छत की तरफ़ चुपचाप ताकने लगा। उसने यह अनुभव किया, जैसे उसका सिर चकरा रहा है। वह सुषमा के हृदय की तह तक पहुँचने का प्रयत्न कर रहा था। आख़िर कौनसी बात उसे यह सब विचारने और कहने को उकसा रही है। क्या गाँव में उनका कोई वैरी है? कोई भी तो

नहीं। सब उनका कितना मान करते हैं। कोई उनसे कड़वी बात भी नहीं करता। पिता द्वारा स्थापित व्यवहार, मनोहर ने और उसने नियमानुसार स्थिर किया हुआ है। कारखाने का काम जोरों से और निहायत ईमानदारी से चलाया जा रहा है। किसी नौकर को किसी प्रकार की शिकायत का अवसर नहीं दिया जा रहा। आज तक कोई अतिथि उनके घर से निराश लौट कर नहीं गया। किसी ऋण मांगने वाले का निषेध नहीं किया गया। और उसके ब्याज की दर, कितनी मामूली, बैंक से भी थोड़ी। किसी से मुक़द्दमा नहीं, झगड़ा नहीं। क्या कोई हमसे ईर्ष्या करता है? किसी को क्या आवश्यकता है? लेकिन है भी क्यों नहीं? यह तो बहुत बुरी आग, और भयङ्कर रोग है। इसकी चिकित्सा भी क्या है? और है भी तो यह स्वाभाविक। अब सब लोगों की स्थिति उन जैसी मजबूत तो है नहीं। उनके घर ईश्वर की पूर्ण कृपा है, किसी वस्तु का अभाव नहीं। ऐसे भी तो घर हैं, जहाँ कमी ही कमी है। परन्तु इससे क्या होता है? अब केवल इस बात पर कोई क्या करेगा। फिर अगर ईर्ष्या है भी तो इतना साहस कौन कर सकता है कि यहाँ आकर उनके घर फूट डलवाये। क्या किसी औरत ने उसकी स्त्री के कान भर दिये हैं? परन्तु कौन स्त्री ऐसा कर सकती है? वह तो किसी के घर अधिक जाती नहीं। कुछ स्त्रियाँ उसके पास आती हैं अवश्य। मनोरमा, शारदा, रुक्मिणी, बलवन्तकौर, सचेतकौर आदि। परन्तु इनमें से किसी को क्या आवश्यकता पड़ी है कि वे ऐसी

वैसी बातें करें। इनमें से केवल शारदा ही है जो अन्य स्त्रियों के मुकाबले अधिक आती है। वह मेरे प्रिय मित्र भगतसिंह की पत्नी है। भगतसिंह को तो मुझ से कोई अप्रसन्नता नहीं। स्कूल-कमेटी में वह, अस्पताल-कमेटी में वह, गाँव की हर बात में भैया उसे आगे रखते हैं। उसका कितना आदर करते हैं। परन्तु पिता जी अवश्य, आरम्भ से ही उसे पसन्द नहीं करते थे, जब वह मेरे पास स्कूल जाता था और मुझे शराब पिलाता था, और बाजार ले जाता था। परन्तु इसमें भगतसिंह का क्या अपराध था। मैं स्वयं भी तो इतना बच्चा न था। फिर भगतसिंह का यह स्वभाव है जिसके कारण वह लाचार है। परन्तु गाँव में कितने आदमी हैं जिनका यह स्वभाव नहीं? केवल वे ही इसके विरुद्ध हैं, जिन्हें यह सुलभ नहीं। यदि इसे दोष माना जा सकता है तो यह भगतसिंह में अवश्य है। परन्तु मेरा वह कितना मित्र है! उसके हार्दिक-प्रेम से मैं इनकार नहीं कर सकता। गाँव में दूसरे इतने आदमी हैं। भैया उन सब से मेल-जोल चाहे रखते हों, मैं स्वयं बहुत कम मेल-जोल रखता हूँ। मेरी बैठक केवल भगतसिंह के पास है और भगतसिंह शुद्ध-हृदय और स्पष्ट-वक्ता है। मैं इतने वर्ष से उसे जानता हूँ। उसके हार्दिक-प्रेम पर मुझे तनिक भी सन्देह नहीं, और यदि कोई व्यक्ति आकर भगतसिंह के विरुद्ध मुझ से शिकायत भी करे तो मैं पहिले उसे सुनूँगा ही नहीं और यदि सुनूँगा तो उसे दूसरे कान से निकाल दूँगा।

तो फिर सुषमा को ऐसा कहने की क्यों आवश्यकता अनुभव हुई ? क्या भाभी की ओर से तो कोई ज्यादती नहीं हुई ? आखिर कुछ तो होगा ही ! पिछले चार वर्षों से सुषमा ने भाभी के विरुद्ध एक बात तक नहीं निकाली। भूलकर भी वह शिकायत का एक शब्द जीभ पर नहीं लाई। अवश्य कुछ दाल में काला है। भाभी को उसने मीठी छुरी कहा। या तो उसने भाभी की कोई ऐसी बात देखी या उसके मुख से कोई ऐसी बात सुनी, जिसके कारण उसने यह सब कहा। परन्तु क्या हो सकता है ? भाभी का अपना बेटा उसका भी तो बेटा है। परन्तु स्त्रियाँ इनमें कितना भेद पैदा कर देती हैं। राम, कैकेई को अपनी माँ गिनते रहे और कैकेई ने भरत के लिए उन्हें बनवास दे दिया। औरत कितनी भी महान् क्यों न हो, बच्चे के कारण उसके दिल में मैल आही जाता है। शायद वह सोचती हो कि सारी सम्पत्ति का स्वामी उसका बच्चा बने। अभी तो उसके बच्चे नहीं, और सुषमा ठीक कहती है कि वह बांझ तो नहीं। फिर हमने अभी तक ध्यान ही इस ओर कब दिया है। वैसे भाभी को भी तो इसकी कोई चिन्ता नहीं। नहीं तो स्त्रियां इस बात पर आकाश सिर पर उठा लेती हैं। विवाह के कुछ मास पश्चात् ही स्त्री का पेट तकने लग जाती हैं, और कुछ मास बीतते ही वे उसे तानें देने लगतीं हैं कि उसमें या उसके पति में दोष है। माँ होती तो आफ़त ढा देती। लेकिन भाभी क्यों मौन है ? अवश्य इसमें कुछ बात है। शायद वह

उसके बच्चे होना पसन्द नहीं करती। परन्तु वह कौन होती है, ईश्वर के नियम में हस्तक्षेप करने वाली ? मगर जब उनके बच्चा होगा, तो वह भी तो निःसन्देह सम्पत्ति का स्वामी बनेगा। उसकी शिक्षा आदि में व्यय होगा। फिर यदि अधिक बच्चे हुए तो, हो सकता है कि भाभी मेरे बच्चों को, अपने बच्चों का शत्रु समझें। परन्तु इसकी क्या संभावना है ? आज तक तो उसने कभी ऐसा प्रकट न होने दिया। कम-से-कम उसने तो कभी इस बात का अनुभव नहीं किया, और उसे भाभी के विषय में कोई राय स्थिर करने का अधिकार नहीं, जब तक कि उसके पास पर्याप्त प्रमाण न हों। परन्तु प्रमाण कहाँ से मिल सकता है ? इसमें उसे शीघ्रता नहीं करना चाहिये। मैं अपने मित्र के दिल को टटोलूंगा। उसने देखा कि सुषमा चारपाई पर बैठी उसकी ओर देख रही है। शायद मेरे मन का अध्ययन कर रही है। उसने कहा,

"सुषमा ! जो तुमने कहा है, मैं उसे झूठ नहीं ठहराता, परन्तु जब तक मैं पूरी तरह उसे न देखलूँ, उसे सत्य भी नहीं मानूँगा। तुम मुझे स्थिति का अध्ययन करने का अवसर दो। फिर मैं अपना मत दूँगा।"

"स्वीकार"।

"तो उठो ! कपड़े बदलो आदमी बनो।"

"आदमी या औरत ?"

"औरत का अभिनय तो तुम पूरा कर चुकीं।"

सातवां परिच्छेद

उस सन्ध्या को रणवीर भगतसिंह को अपने 'माली बाग़' ले गया। कुछ देर उद्यान में भ्रमण करने के पश्चात् वह अपनी बैठक में ठहर गया। बीच की मेज़ पर माली ने फूलों का सुन्दर गुलदस्ता सजा कर रखा था। सोफ़ा सेट तो नहीं था, आराम-कुर्सियाँ पड़ी थीं। दोनों जाकर कुर्सियों पर बैठ गये। रणवीर ने जेब से सिगरेट का केस निकाला और उसे भगतसिंह की ओर बढ़ाया। फिर स्वयं एक सिगरेट निकाल कर मुँह में रखी। दियासलाई सुलगा कर भगतसिंह की ओर बढ़ाई। इसके पश्चात् स्वयं सिगरेट सुलगाई। दो चार कश लगाने के पश्चात् उसकी ओर अकर्षित होकर बोला—

"भगतसिंह! तुम जानते हो कि मैं तुम्हें पक्का मित्र समझता हूँ।"

"मुझे इस बात का गर्व है, और मैं अपने भाग्य की सरा-

हना करता हूँ कि मुझे तुम जैसे सच्चे, वीर, और शुद्ध हृदय व्यक्ति की मित्रता प्राप्त है।"

"परन्तु मित्र, मित्र पर अधिकार रखता है।"

"मैं सदैव उस घड़ी की प्रतीक्षा में हूँ जब यह शरीर एक सच्चे मित्र के काम आसके।"

"मुझे शरीर नहीं, परामर्श चाहिये।"

"कह नहीं सकता कि इस योग्य हूँ, परन्तु परीक्षा में कोई आपत्ति नहीं।"

"मैं यह तो आशा रखूँ कि हमारी बात की भनक किसी दूसरे के कान तक में न पड़ेगी।"

"उसकी अपेक्षा मैं जीभ कटवा लेना अधिक अच्छा समझूँगा।"

"आपको सम्भवत: पता है कि मेरी अनुपस्थिति में मेरी पत्नी के हृदय में कुछ सन्देह उत्पन्न हो गए हैं।"

"आपके विषय में ?"

"नहीं"।

"मेरे विषय में ?"

"नहीं", वह हँसकर बोला।

"भाभी के विषय में"।

"समझदार स्त्री मालूम होती है।"

"क्यों ? कैसे ?" उसने आश्चर्य से पूछा।

"आश्चर्य इस बात का है कि इतनी देर में क्यों अक़ल

आई।"

"क्या तुम गम्भीरता से कह रहे हो ?"

"इसमें हँसी की कोई बात नहीं।"

"परन्तु तुम्हारे ऐसा कहने का क्या कारण है ?"

"देखो रणवीर ! तुमने मुझे मित्र समझ कर मेरा परामर्श लिया है। जो कुछ मैं जानता हूँ, कहे देता हूँ, यदि तुम बुरा न मानो।"

"कहो"।

"सुषमा और नीलिमा इकट्ठी नहीं रह सकतीं। यदि रहेंगी तो घर नहीं रहेगा।"

"परन्तु ऐसी क्या बात हो गई ?"

"रणवीर ! तुम बच्चे हो। औरतों के मनो-विज्ञान को तो तुम बिलकुल नहीं समझते। देखो, तुम और मनोहर तो भाई हो, सगे हो, तुम में एक पिता का रक्त है। परन्तु यह बात तुम अपनी पत्नी और भाभी के विषय में नहीं कह सकते। भाभी समझदार है, या यदि कहना चाहो, तो कहलो कि चालाक स्त्री है। परन्तु इसमें उसका अपराध नहीं। प्रत्येक स्त्री जिसे अपने लाभ की चिन्ता है, चालाक होती है। यदि न हो, तो वह पिस जाए, दूसरे उसे हड़प करलें। यह बुरी बात हो या अच्छी, परन्तु सत्य है, और इस सत्य पर मेरा तुम्हारा कोई अधिकार नहीं। क्या मै निश्चय करूँ कि बात तुम्हारी समझ में आ गई है ?"

"हैं ? क्या ?" वह सोचने लगा।

"इस बात की गाँव भर में चर्चा है कि भाभी, मनोहर बाबू को विवश कर रही है कि तुम्हें जायदाद से हटा दिया जाय।"

"तुम कैसे जानते हो?" वह क्रोध से बोला।

"नगर चर्चा बिलकुल झूठी ही नहीं हुआ करती, मित्र!"

"परन्तु इसकी मुझे क्या चिन्ता?"

"सुनने में आया है कि भाभी पिछले दिनों मायके गई थी, तो उसके भाई कुलदीपचन्द ने उसे यह पट्टी पढ़ाई। कुलदीपचन्द माना हुआ चालाक व्यक्ति है। वह इसलिए भी निरपराध है कि उसके भांजे का लाभ है। क्या मामा को इतना भी दर्द नहीं? इतनी बड़ी जायदाद का बँटवारा वह सहन नहीं कर सकता। बहिन उसे बहुत मानती है। मनोहर नीलिमा की बात से कम इनकार करते हैं। परन्तु यह बात एकदम नहीं हो सकती, इसलिए वे सँभल-सँभल कर धीरे धीरे चल रहे हैं, और इसकी पूरी योजना बन चुकी है।"

"क्या?"

"कि तुम्हें सदा दौरे पर रखा जाय। कारखाने का काम तुम न समझ सको। नौकरों से तुम्हारी मेल-मुलाक़ात न हो। लेन-देन का तुम्हें पता न चले। काग़ज़ात का तुम्हें कुछ ज्ञान न हो। ऊपर से भाई भावज तुम से मेल रखें। चिकनी-चुपड़ी बातों से तुम्हें वश में रखें और सन्देहहीन। वस्त्रों, आभूषणों से लाद कर तुम्हें इन बातों में इस प्रकार उलझाए रखें कि तुम वास्तविकता को न जान सको। और अब तक योजना सफलता से पूरी

हो रही है।"

"परन्तु भैया तो मुझ से किसी बात को छिपाकर नहीं रखते।"

"देखने में ऐसा ही है। उनका यह प्रयत्न है कि तुम्हें किसी प्रकार का सन्देह न होने पाए। हर बात को बड़ी कोशिश से गुप्तरूप से रखा जाता है। परन्तु बात फिर भी धीरे-धीरे निकल कर फैल ही जाती है।"

"कुछ समझ में नहीं आता" रणवीर जलती हुई सिगरेट को मेज पर पड़ी राखदानी में बुझाता हुआ बोला। फिर कुर्सी का सहारा लेकर बैठ गया। भगतसिंह ने वक्रदृष्टि से उसे देखा। क्या तीर निशाने पर बैठा गया था या अभी उसमें कसर थी? वह अपनी पत्नी की सफलता पर प्रसन्न था। जो स्त्री अब तक उसे एक बच्चा तक न देसकी थी, इस कार्य के लिये कितनी उपयुक्त सिद्ध हुई थी। प्रथम बार ही वह युद्ध जीत कर आई। परन्तु सुषमा ने भी तो कमाल ही कर दिया। एक ही प्रहार में रणवीर को चित कर दिया। बहुत समझदार और प्रभावशालिनी स्त्री मालूम होती है। परन्तु उसे रणवीर की आकृति से पता चल रहा था कि अभी कसर थी। उस पर पूरा पूरा प्रभाव न हुआ था। लोहा तो गर्म था, और अभी कुछ और चोटों की आवश्यकता थी। क्या अभी लगाए या फिर किसी दिन? वह अचानक बोला।

"अच्छा! रणवीर, मैं चलूँ?"

"क्यों, जल्दी है?"

"बात यह है कि तुम्हारे घर का मामला है, बीच में अकारण पड़ना ठीक नहीं, यदि मनोहर बाबू को यह पता चल जाय कि मैंने तुमसे इतनी बातें कहीं हैं तो वह कितना बुरा मानेंगे।"

"परन्तु उन्हें पता चल ही कैसे सकता है?"

"सो तो मैं समझता हूँ, और दूसरे साँच को आँच नहीं। मुझे उनसे डर भी क्या है? मैं न उनका दिया हुआ खाता हूँ न उनसे तनख्वाह पाता हूँ। मुझे गाँव में और किसी से विशेष प्रेम नहीं। यदि बन पड़े तो किसी के लिए कुछ कर छोड़ता हूँ। नहीं तो स्वयं ही प्रसन्न रहता हूँ। न बच्चा है, न बड़ा कुटुम्ब है। हम दो हैं। हमारे गुजारे के लिए ईश्वर ने बहुत दे रखा है। दोनों समय रूखी सूखी मिल जाती है। अब तुमने अपना मित्र बनाया है, केवल मित्रता का कर्तव्य निभाना अपना अधिकार समझता हूँ। लेकिन हस्तक्षेप में मेरा बिलकुल विश्वास नहीं। आपने मुझसे इस बार यह बात की, मैंने उत्तर दिया। परन्तु मुझे मनोहर बाबू से कोई द्वेष नहीं, न उनसे कोई वैर है। केवल तुम्हारे लिये मित्रता का भाव है। और आपसे मित्रता निभाते निभाते उनसे या किसी से बैर होजाय, तो यह मेरा अपराध नहीं।"

"तो तुम मुझे क्या परामर्श देते हो?"

भगतसिंह की बाछें खिल गईं। शिकार स्वयं जाल में आगया। बोला :—

"मेरे परामर्श का मूल्य ही क्या है ? आप लोग नगर में रहे हैं, मैं देहाती हूँ। मेरी बात का क्या वजन है ?"

"देहात में रहकर मनुष्य को मनुष्य की प्रकृति का अध्ययन करने का कितना अवसर प्राप्त होता है ! फिर तुम कितने समझदार हो। तुमने दुनियां देखी है, और मैं यहाँ किसी दूसरे को जानता भी तो नहीं, और न किसी दूसरे पर विश्वास करता हूँ।"

"यह तो आपकी कृपा है, अपितु मैं तो इसे प्रायः अपना सौभाग्य समझता हूँ कि बड़े आदमियों की सङ्गति मिलती है। नहीं तो यहाँ गाँव में केवल मूर्खता के और रखा ही क्या है ? यह बात भी है कि तुम दोनों भाइयों में मैं तुम्हें स्वच्छ हृदय, स्पष्ट वक्ता, भला और वीर समझता हूँ। न जाने मुझे ऐसे व्यक्ति से क्यों प्रेम रहता है। परन्तु सच यह है कि तुम्हें देखते ही मेरे दिल की कली खिल जाती है, और आनन्द की बात यह है कि मेरी पत्नी का सुषमा देवी के विषय में बिलकुल यही विचार है। वह आपके घर अधिक जाते डरती है कि न जाने भाभी दिल में क्या सोचे। एक बात अवश्य है कि वह मुझ से कई बार इस बात का वर्णन कर चुकी है कि सारे गाँव में केवल एक स्त्री है, जो शेष स्त्रियों में रत्न है, और क्षमा करना, तुम्हारी भाभी से भी। अब मैंने तो उन्हें देखा नहीं। परन्तु यह निश्चय जानों कि स्त्रियाँ इन बातों को समझने में बड़ी चतुर होती हैं। गाँव में और इतनी स्त्रियाँ हैं, परन्तु वह किसी की चिन्ता नहीं करती।

हाँ, मैं उससे कहता रहता हूँ कि तुम्हारे घर अधिक न आया जाया करे।"

"क्यों?"

"तुम नहीं जानते, कल कोई ऐसी घटना हो जाए, और भाभी सारा दोषारोपण शारदा पर कर दे। आखिर हम भी तो इज्जत वाले आदमी हैं। कैसे सहन कर सकते हैं ऐसी बात?"

"भाभी का क्या साहस है कि अकारण शारदा को बदनाम करे। वह मेरे मित्र की पत्नी है। उसे मेरे घर आने का पूरा पूरा अधिकार है। उसे कोई नहीं रोक सकता। आखिर घर पर मेरा कोई अधिकार नहीं?"

"यह तो समझने की बात है। शायद दूसरे यह समझते हों कि नहीं।"

"यह तो मैं देखूँगा न।"

"परन्तु यह भी तो हो सकता है कि जब तक तुम देखो वहाँ देखने वाली कोई वस्तु ही न रहे।"

"तुम्हारा अभिप्राय है कि मामला बहुत दूर तक पहुँच चुका है?"

"सच पूछो तो विलम्ब करना भयङ्कर सिद्ध होगा। आपके पीछे भाभी का भाई कई बार यहाँ आया। ये लोग वास्तव में मनोहर बाबू को भी बतलाना नहीं चाहते और उनके बतलाए बिना ही सब काम करना चाहते हैं। कुलदीपचन्द उन्हें इस प्रकार वश में लाएगा कि उन्हें एकदम 'हाँ' करने के अतिरिक्त

और कुछ न सूझेगा।"

"उनकी स्कीम क्या है?"

"बस यही कि तुम्हें एकदम अधिकारच्युत कर दिया जाय। अगर यह न होसके, तो बैंक का काफी रुपया मनोहर बाबू, अपने नाम करालें, दूसरे लेन-देन के पत्र भी अपने नाम करालें। अब तुम्हें क्या मालूम कि कौन से और क्या काग़ज़ात हैं। न तुम्हें इन बातों में रुचि है और न वे चाहते हैं कि तुम रुची लो। यह बात उनके अधिकार में है।"

"तो अब रुचि रखने से क्या लाभ?"

"अब यह रुचि लो कि................................"

"क्या?"

"मुझे कहना नहीं चाहिये। तुम्हारा भाइयों का आपस का मामला है। तुम फिर एक हो जाओगे, और मैं अकारण ही बदनाम हो जाऊँगा।"

"तुम्हें बदनाम करने का किसको साहस! तुम एक सच्चे मित्र का पार्ट-प्ले कर रहे हो। तुम जो कुछ कहना चाहते हो, निःसङ्कोच कहो।"

"मेरी सम्मति में तुम्हें अलग होने की तुरन्त माँग कर देना चाहिये।"

"अलग होने की!"

"शायद आप डर गए?"

"मैं और डर! कदापि नहीं। परन्तु................"

"परन्तु की कुछ बात ही नहीं। तुम कोई अनाधिकार चेष्टा नहीं कर रहे हो। केवल अपने अधिकार की रक्षा कर रहे हो। अपना उचित भाग मांग रहे हो।"

"क्या भैया शीघ्र ही स्वीकार कर लेंगे?"

"सुनिये, ऐसा करके आप एक बहुत बड़ा पग उठा रहे हैं। मार्ग में कठिनाइयाँ और आपत्तियाँ उपस्थित होंगी, और यदि आप आगे बढ़ना चाहते हैं तो कठिनाइयों का सामना करना होगा। काँटों को मार्ग से उखाड़ फैंकना होगा। मार्ग सरल और सीधा नहीं और इस पर जाने के लिये पर्याप्त साहस की आवश्यकता है।"

"इसकी तुम चिन्ता मत करो। मैं कायरता और कायरों से घृणा करता हूँ।"

"तो तुम्हें भैया के क्रोध से भयभीत नहीं होना चाहिये। वह तुम्हें हर प्रकार से मनाने का प्रयत्न करेंगे, समझायेंगे, प्रार्थना करेंगे, प्रेम दिखाएँगे, रोएँगे, पाँव पड़ेंगे, धमकी देंगे, सारांश यह कि प्रत्येक प्रकार से तुम्हें इस मार्ग से हटाने का प्रयत्न करेंगे। यदि तुम एक बार डट गए, तो फिर उन्हें झुकना होगा। तुम्हारा भाग अलग कर देंगे, और तुम बच जाओगे। नहीं तो भैया, सारी उम्र की ठोकरें हैं।"

"मैं यह किस आधार पर कहूँ?"

"केवल इस आधार पर कि तुम अपना कार्य स्वयं करना चाहते हो। तुम अपने कार्य में स्वतन्त्रता चाहते हो। और मित्र!

तनिक यह तो सोचो कि जब तुम अपने कार्य के स्वयं स्वामी बन गए तो उसमें कितना आनन्द प्राप्त होगा। अब तो दूसरों की मरदारी है, फिर स्वतन्त्रता होगी और मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि तुम्हारा कार्य इतनी उन्नति करेगा कि लोगों की आँखें खुली की खुली रह जावेंगी।"

"परन्तु मुझे विशेष अनुभव नहीं है।"

"इसकी चिन्ता मत करो, यदि तुम मित्र पर विश्वास करने को उद्यत हो तो सेवक सारे कामों में पूरी पूरी सहायता करेगा। और यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि आप सारा काम मुझ पर छोड़ सकते हैं, और यह भी आपको बतलाए देता हूँ कि अकेले तुम्हारा कार्य, वर्तमान कार्य से चौगुनी उन्नति करेगा। आपने कभी यह नहीं सोचा कि तुम्हारे पिता ने, अकेले ही इतना काम बढ़ाया हुआ था। उन्होंने किसी से सहायता नहीं ली। उन दिनों यह एक नया काम था और नये काम का चलाना जान-जोखम का काम होता है। वे शेर थे और शेर की भाँति लड़ते रहे। मनोहर बाबू ने तो चला-चलाया काम सम्भाला है। उसमें कोई विशेष कठिनाई ही न थी, और इसमें उनकी कोई विशेष योग्यता नहीं। इस समय अलग होकर, काम को ऊपर उठाना बहुत सरल है।"

"तो तुम मेरी सहायता करोगे?"

"सहायता? मैं सब कुछ करूँगा। दूसरे मेरी बात से तुम्हारे दिल में कोई भ्रान्ति न उत्पन्न हो जाय इसलिए यह भी

बतलाये देता हूँ कि मैं केवल एक शर्त पर काम करूँगा।"

"शर्त, कैसी शर्त ?"

"कि एक पैसा भी नहीं मांगूँगा।"

"यह कैसे हो सकता है ?"

"हो क्यों नहीं सकता ? हम दो हैं, हमारे लिये खाने पहिनने को परमात्मा का दिया हुआ बहुत है। हमें किस के लिए जमा करना है ? इसलिए श्रम का मूल्य लेने का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता। मेरे लिए यही मूल्य क्या कम होगा कि मैं एक मित्र का काम कर रहा हूँ।"

"यह तो ठीक नहीं होगा।"

"ग़लत भी नहीं होगा।"

"बिना पारिश्रमिक के किसी का काम करना कठिन हो जाता है।"

"यह ग़लत बात है। आप शायद अभी तक मेरे कैरैक्टर से भली प्रकार परिचित नहीं। अस्तु, मैं इस विषय में अभी कुछ न कहूँगा। आपको जो बातें नहीं मालूम, वे मालूम हो जाएँगी। आप वास्तव में प्रायः दौरे पर रहते हैं। इसलिए आप पूरी तरह परिचित नहीं। मगर आपको यह पता चल जायगा कि संसार में लोग निष्काम भी कार्य कर सकते हैं।" फिर बोला—

"अच्छा बहुत देर हो गई चलना चाहिये।"

"तो कल कहाँ मिलोगे ?"

"यहीं, रात को नौ बजे। दूसरों को इस बात का पता ही

न चले तो अच्छा होगा।"

"इसकी चिन्ता मत करो।"

भगतसिंह ने वहाँ से बिदा ली और रणवीर अकेला बैठा रहा।

आठवां परिच्छेद

सरदियों में गाँव में शाम ही को रात हो जाती है, और लोग खाना खाते ही सो जाते हैं। इसका कारण यह है कि न तो गाँव में बिजली की रोशनी का प्रबन्ध होता है, और न उनके पास कोई मनबहलाव होता है। फिर वे प्रातः शीघ्र उठने के अभ्यासी होते हैं, अतः साधारणतया शीघ्र ही सो जाते हैं। कभी कभी ज़मींदार खेतों में रात-गए, देर तक अवश्य काम करते हैं, परन्तु बहुत कम।

अमावस की रात थी और बहुत सर्दी पड़ रही थी। लोग खा-पीकर घरों के अन्दर सो रहे थे, परन्तु मरघट में अग्नि प्रज्वलित हो रही थी। गाँव का बूढ़ा मिस्त्री गुरबख़्शसिंह दोपहर को मरा था, और लोग शाम को सूर्य छिपने से पूर्व उसे दाह देकर आये थे। जलती चिता पर दो तीन बार लकड़ियाँ डाली गई थीं। चिता की लपटें आकाश की ओर उठ रही थीं,

मानों प्रसन्नता से फूली न समा रही हों। उस अन्धेरी रात्रि में उन लपटों का प्रतिबिम्ब झील की व्याकुल लहरों के नीचे दिखाई देता था। झील की लहरें व्याकुल सी हिल रही थीं, जैसे उनकी व्याकुलता का उस बूढ़े मिस्त्री की मृत्यु से कुछ सम्बन्ध हो। इन लहरों ने गाँव के कितने लोगों की लाशों को यहाँ यों जलते देखा था। गाँव बसने के आरम्भ से लेकर वह उन दृश्यों की अभ्यस्त हो चुकी थीं, और उनके लिए यह कोई नवीन घटना न थी। फिर भी जैसे जलती लाश को देखकर, वे भय से काँप रही थीं। चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। नीरवता और शान्ति का पूर्ण साम्राज्य था। कभी-कभी वृक्ष के विश्राम स्थान पर बैठे हुए मोर, अपनी मधुर तान से इस नीरवता को भङ्ग कर देते। कहीं-कहीं बिल्ली के भय से वृक्षों पर विश्राम करता हुआ पक्षियों का झुण्ड चिल्ला उठता। झील की लहरें भी, रात्रि के शान्त वातावरण में शोर पसन्द न करतीं थीं। लपटें उठ रहीं थीं, परन्तु धीरे धीरे।

गाँव की ओर से एक व्यक्ति आकर मरघट के समीप नीम के वृक्ष के पीछे खड़ा हो गया। आग की लपटें आकाश की ओर दौड़ रहीं थीं। वह आगे बढ़ा। उसने चारों ओर देखा। कोई उसको देख तो नहीं रहा था? कोई नहीं। इतनी रात गये अमा-वस की ठण्डी रात्रि को कौन घर से बाहर निकलेगा? वह सर्दी से ठिठुर रहा था। धीरे धीरे मरघट के निकट बढ़ा और दोनों भुजायें फैलाकर मरघट की आग को तापने लगा। उस

अग्नि में कितना ताप था। जैसे वह गाँव से इतनी सर्द और अन्धेरी रात में केवल मरघट की अग्नि तापने आया था। इस प्रकाश में उसके देह की फटी हुई कमीज़ साफ़ दिखाई दे रही थी। उसमें से उसका शरीर भी दिखाई दे रहा था। इस फटी कमीज़ के नीचे उसकी धोती नज़र आ रही थी। उसके सिर पर एक छोटा-सा कपड़ा बँधा था, जैसे सर्दी से बचने के लिये एक असफल प्रयत्न हो। ऐसा मालूम होता था कि जब गाँव में उसे सर्दी से बचाव का कोई उपाय दिखाई न दिया, तो वह मरघट पर आ पहुँचा। उसने देखा लम्बी लम्बी लकड़ियाँ चिता पर रखी हुई थीं, जो अभी जलीं न थीं। कुछ लकड़ियों का शेष भाग जलना था, और कुछ अभी आधे से भी अधिक शेष थीं, और कुछ बिलकुल थोड़ी जलीं थीं। एक शव का दाह-संस्कार करने के लिये, कितनी लकड़ियाँ आवश्यक होती हैं, और गाँव वाले कितनी अधिक लकड़ियाँ इकट्ठी कर सकते हैं। परन्तु यही लोग एक जीवित पुरुष को वे सुविधाएँ नहीं दे सकते जो एक मुर्दे को देते हैं। वह सर्दी की इन लम्बी रातों में प्रति-दिन काँपता है। उसके पास न पहिनने को मोटा या गर्म कपड़ा है, न ओढ़ने को रज़ाई। दिन के समय तो सूर्य उसकी अधिक कठिनाईयों को दूर करता है, परन्तु बादल और वर्षा के दिनों में वह भी मुँह छिपा लेता है, और उसे ईश्वर की दया पर छोड़ देता है। उसे मनुष्यों में तो कम ही दया दिखाई देती थी। कभी कभी कोई आदमी बहुत तरस खाकर उसे पहिनने को वस्त्र या

जलाने को लकड़ी दे देता था। परन्तु उससे क्या होता था ? क्या सदा का भूखा एक दिन खाना खाने से सन्तुष्ट हो सकता था ? इससे क्या उसकी समस्या पूर्ण हो सकती है ? वह लकड़ी की शक्ल तक देखने से तरसता था, और यहाँ लकड़ियों का इतना ढेर पड़ा था, केवल एक शव को जलाने के लिए। क्या इतनी लकड़ियों को बचाने के लिये उसे भूमि में नहीं गाडा जा सकता था। यह उनके धर्म के विरुद्ध था ! तो क्या एक व्यक्ति को, एक कुटुम्ब को, सर्दी से ठिठुरते और उसे मृत्यु के मुख में प्रति-दिन खामोशी से जाते देखना, धर्म का नियम है ? धर्म, ईमान, मज़हब, आखिर यह सब क्या बला है ? मनुष्य ने इन सब ढकोसलों का किस कारण आविष्कार किया है। निर्धनों को धोखा देने के लिये या उन्हें जलाने सताने के लिये। यदि इतनी लकड़ियाँ यहाँ जलाकर राख करने के बजाये वे उसे देते, तो वह कठोर सर्दी का एक मास कितने सुख से व्यतीत कर सकता था, और फिर उनको कितना आशीर्वाद देता। परन्तु यदि उन मूर्खों ने इतनी बड़ी ग़लती की थी, तो वह क्यों इस ग़लती को दोहराए। वह आगे बढ़ा और आग की ओर झुका। एक ओर से कोई ध्वनि सुनाई दी ! वह तुरन्त भागा और नीम की ओट में जाकर छिप गया। यह वृक्ष मार्ग पर नहीं, वहाँ से हट कर उगा हुआ था। वहाँ से कोई न देख सकता था। उसका हृदय तीव्रता से धड़क रहा था। वह कुछ देर रुका रहा। परन्तु वहाँ कुछ न था। शायद खेतों में कोई बैल फिर रहा

था। वह फिर वहाँ से उठा और मरघट के निकट आया। अब अधिक विलम्ब करना समय खोना था। लकड़ियाँ जल रहीं थीं। वह आगे को झुका और अध-जली लकड़ियों को चिता से बाहर निकालने लगा। कोई छः सात लकड़ियाँ अब भी अध-जलीं थीं। फिर उसने उन लकड़ियों को उठाया और तालाब के एक तट की ओर चला। सहसा कहीं से एक शोर सुनाई दिया, और साथ ही लकड़ियाँ उसके हाथ से गिर पड़ीं। एक मोर कहीं वृक्ष पर से चिल्लाया था। कमबख्त को चिल्लाने के लिये भी और कोई अवसर न मिला। कुछ क्षणों के पश्चात् उसके दिल की धड़कन कम हुई। उसने लकड़ियों को उठाया और उन्हें झील के किनारे ले जाकर पानी में डुबोया। पानी के साँय-साँय की आवाज़ से भयभीत होकर वह फिर भागने को उठा ही था कि उसे इस वास्तविकता का ज्ञान होगया। अब उसके लिये मार्ग खुला था। उसने लकड़ियों को उठाया और घर की तरफ़ क़दम बढ़ाया। अभी कुछ दूर ही चला होगा कि उसे कुछ आवाज़ें सुनाई दीं। क्या ये भूत थे? वह क्या करे? तेज़ भागे या छिप जाय? सहसा आवाज़ें बिलकुल उसके पीछे सुनाई दीं। उसके जैसे हाथ-पाँव फूल गये। अब वह पकड़ा जायेगा! कल सारे ग्राम में यह समाचार फैल जायगा और पञ्चायत के समक्ष उसे उपस्थित होना पड़ेगा। चोरी के अपराध में, और चोरी भी कितनी बुरी! उसने अनुभव किया कि उसे पञ्चायत के सामने कोड़ों की मार पड़ रही है और वह पीड़ा से चिल्ला

रहा है। उसकी चिल्लाहट किसी के दिल को पिघला नहीं सकती। वह तो चीखें मार रहा है और वे बातें कर रहे हैं। उसे बातें और निकट जान पड़ीं। वह नंगे पाँव तो था ही, तेजी से भागने लगा। जैसे आवाजें भी उसके पीछे भाग रही थीं। आगे एक मोड़ था, वह उधर ही मुड़ गया, और भागता गया, तेजी से, सरपट। अवाजें तो पीछे रह गईं परन्तु आगे से एक कुत्ते ने उसका स्वागत किया। वह भङ्गियों के घर के समीप पहुँच चुका था, और उनके घरों के पास कुत्तों का पहरा अवश्य रहता है, जैसे चोरों का सदा डर हो। भङ्गियों के दिल में शायद यह सन्देह हो कि उनके झाडूओं और टोकरियों को लेकर कोई चलता न बने, परन्तु साधारणतया लोग इनकी ओर कम ही ध्यान देते हैं, और कुत्तों को कम ही शिकार के पीछे भागने का सुअवसर मिलता है। आज रात के समय अन्धेरे में, कुत्तों ने, एक आदमी को भागते हुए देखा। वे ताड़ गये कि चोर है। रोटी के चन्द टुकड़ों का हक़ अदा करने का आज तक उन्हें अवसर ही प्राप्त न हुआ था। वे शायद व्यग्रता से इस अवसर की प्रतीक्षा कर रहे थे, और आज वह अवसर स्वयं उनको प्राप्त होगया था। प्रसन्नता से नाचते हुए, चिल्लाते और भौंकते हुए वे शिकार की ओर लपके। कुत्तों को सामने आते देखकर वह घबरा उठा। यदि कहीं उन्होंने काट खाया तो मर ही जायगा। इनके काटे की चिकित्सा भी तो कठिन है। अंग्रेजी सरकार की अधिक कृपा के होने पर भी उन्होंने कुत्ते के इलाज

के औषधालय बनाना उचित न समझा था। कसौली में कुत्ते के काटने का औषधालय था। परन्तु एक यह लाभ था कि निर्धन व्यक्ति वहाँ न जा सकते थे। कुत्ते के काटखाने के उपरान्त उन्हें जीवित रहने का कोई अधिकार न था। फिर जीवन में भी क्या सुख है ? यदि वह उन्हें ऐसे जीवन से छुटकारा दिला सकें तो उन्हें उसके लिये उनका कृतज्ञ होना चाहिये। परन्तु इस समय तो उसकी जान पर आ बनी थी। कुत्तों को अपनी ओर आते देख वह पीछे मुड़ा, परन्तु आवाजों का ध्यान आया। अब क्या करे ? वह लगा इधर उधर भागने, कुत्ते थे उसके पीछे। उसने लकड़ियों को भूमि पर फैंक दिया और उनमें से एक लकड़ी उठा कर, आगे वाले कुत्ते के सिर पर जोर से दे मारी। उसने जोर से चीख मारी, और अप्रसन्नता प्रगट करता हुआ पीछे को भागा। दूसरे कुत्ते ने लीडर का स्थान लिया और शत्रु की ओर बढ़ा। उसके साथ भी वही व्यवहार हुआ जो लीडर के साथ। लीडरों के हारने के बाद, प्रतिपक्षी के पाँव उखड़ गए, और वह दुम-दबा कर भाग निकला। परन्तु यह विजय, पराजय से भी निकृष्ट थी। परास्त सेना कुछ दूरी पर खड़ी होकर, विजयी को पुनः ललकारने लगी। उनकी चीख पुकार, भङ्गियों के झरोखों और खिड़कियों की परेशानी से मुक्त मकानों की दरारों में से होती हुई, उनके गन्दे मकानों के रोशनदानों में से गुजरती हुई उनकी नींद को उचटाने लगी। ईशरी बड़-भैया ने, अपने लड़के दुल्ले को आवाज दी, उसने मुन्शी

को, और उसने चन्दू को। इनकी आवाजें सुन, दूसरे भङ्गी भी जाग उठे। सब ने अपनी लाठियाँ सम्भालीं। अवश्य कोई जानवर है। आज उसी का शिकार होगा, और कल दाल नहीं बनेगी। दाल खा-खाकर वे तङ्ग आ चुके थे। उनकी राल टपकने लगी। वे सिरों पर पगड़ियाँ लपेट, हाथों में लाठियाँ सम्भाले बाहर निकले। सहायता देख, कुत्तों की सेना का साहस चौगुना हो गया, और परिणाम को न जानकर वे विजेता शत्रु की ओर भागे। शत्रु अब आवाज़ों के डर से छुटकारा पाकर शीघ्रता से पग बढ़ाये गाँव की ओर जा रहा था। कुत्ते उसके पीछे भागे। उनकी आवाज़ सुन, वह फिर सामना करने के लिये सन्नद्ध होगया। अब वह भी शत्रु का बल अनुभव कर चुका था, और उनके लड़ाई के गुरों से परिचित हो चुका था। उसने एक लकड़ी घुमाकर फिर लीडर की ओर बढ़ाई, और उसे मारना ही चाहता था कि उसे उनके पीछे कई आदमी दिखाई दिये।

"यह तो कोई मनुष्य है" चन्दू ने कहा।

"चोर है" दुल्ले ने संशोधन किया।

"जाने न पाए" पीरू ने ललकारा।

"मुश्कें कस लो" मुन्शी चिल्लाया। सारे भङ्गी उसकी ओर लपके, और एक क्षण में उसे पकड़ लिया गया। कुछ शब्द उससे कहे गये। लाठियाँ प्रयोग करने का भी उनका विचार था। परन्तु सामना न करने वाले चोर को लाठी मारने से भी

क्या लाभ ? वे उसे बाँधकर, उसकी लकड़ियों की गठरी उठाकर अपने मुहल्ले में लाये। तब दुले ने दियासलाई जलाकर उसे देखा, और चिल्ला कर बोला।

"तुम !"

सब हैरान होकर पीछे हट गये।

नवाँ परिच्छेद

सारा गाँव बाजार के चौक में जमा था। लोग अपने अपने काम छोड़कर, चौक में इकट्ठे हुए थे। जमींदारों ने रहट चलाने, सिंचाई करने और रस पेलने का काम बन्द कर दिया था। दर्जियों की दूकानें बन्द थीं। पन्सारी की दूकानें यद्यपि खुली थीं, परन्तु वहाँ छोटे छोटे लड़कों और लड़कियों को बिठाया हुआ था और दूकानदार स्वयं चौक में थे। महाजन लोगों ने दूकान के बाहर बिछी हुई, मैली और फटी हुई दरियों को लपेट कर, दुकानों के अन्दर रखा, हुक्कों की चिलमों में नई आग भरी, दूकानों में ताले लगाये, और हुक्के उठाकर चौक में आ बैठे। भङ्गी तो अपना काम कर ही चुके थे। घरों में बैठने के बजाय, वे चौक में ही आ बैठे। खेतों में काम करने वाले चमार भी खाली ही थे। जूते बनाने वालों ने काम बन्द कर, वहाँ आना उचित समझा। औरतें भी छत्तों पर आ बैठीं। आज बिशनदास

की पञ्चायत के सामने पेशी है ।

चबूतरे के ऊपर दरी बिछी हुई थी। उस पर पञ्चायत के चारों पञ्च बैठे थे। पञ्चों से हटकर गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्ति बैठे थे। सर-पञ्च का नाम था मानसिंह। दूसरे पञ्चों का नाम था रहमत, रामदास और दुर्गासिंह। अपराधी उनके सन्मुख उपस्थित था।

पेशी का काम आरम्भ हुआ।

सर-पञ्च ने अपराधी से पूछा,

"क्या यह सत्य है कि तुमने कल रात मरघट पर जाकर जलती चिता से लकड़ियां चुराईं ?"

अपराधी मौन रहा।

"हमारी बात का उत्तर दो।"

कोई उत्तर न मिला।

"तुम कहते हो" सर-पञ्च ने गवाहों से कहा "कि अपराधी ने कल रात मरघट पर जाकर जलती चिता पर से लकड़ियाँ चुराई हैं ?"

गवाहों ने सिर हिलाया।

"तुम्हारे पास इसका क्या प्रमाण है ?"

"सरकार"! चार पाँच गवाह इकट्ठे होकर बोले।

"सब नहीं, चन्दू! तुम बतलाओ", मानसिंह सर-पञ्च ने कहा।

"सरकार"! चन्दू बतलाने लगा।

"खड़े होकर जी !" रहमत ने उसे डाट बतलाई।

चन्दू खड़ा होगया और बोला। "हजूर। कल रात हम सो रहे थे। रात को कुत्तों की आवाज ने हमें जगा दिया। हम समझे कोई जानवर है, इसलिये हम लाठियाँ लेकर बाहर निकले। हमने देखा कि कुत्ते एक आदमी पर भौंक रहे हैं। अँधेरे में हम उसे पहचान न सके।"

"क्या तुम्हारे पास लालटेन न थी ?" सर-पञ्च ने पूछा।

"हुजूर क्यों नहीं थी। लेकिन हम सब आगे चले गये, और तुलसी पीछे से लालटेन जलाकर लाया था।"

"फिर ?"

"फिर हम समझ गए कि यह तो दूसरा मामला है। हम सब चोर के पीछे भागे। शायद यह हमारी लाठियों से डर गया या कुत्तों से, कि एकदम रुक गया। हमने उसे पकड़ लिया और मुश्कें बाँध लीं। इतने में तुलसी लालटेन लाया। जब हमने रोशनी में बिशनदास को देखा तो हम हैरान ही रह गये।"

"बस ?"

"जी हुजूर।"

"वे लकड़ियाँ कहाँ हैं ?" दुर्गासिंह पञ्च ने पूछा, वह जुलाहों का प्रतिनिधि था।

"यह रहीं हजूर !" दुले भङ्गी ने अपने नीचे से वह लकड़ियाँ आगे रखते हुए कहा।

सब लोगों की दृष्टि उन लकड़ियों पर जम गई, हाथ २ लम्बी

और अध जलीं थीं; या थोड़ी थोड़ी जलीं थीं। सब लोगों ने उनकी तरफ़ देखा, फिर बिशनदास की तरफ़, फिर एक दूसरे की तरफ़ देखकर सिर हिलाने लगे। छीः छीः छीः की आवाजें फैल गईं। सब लोग अपराधी की ओर देखकर, सिर हिलाने लगे, जैसे कह रहे हों धत तेरी की, बदज़ात! तुझे ऐसा नीच काम करते लाज न आई? तूने अपनी ही नहीं, अपने कुल की भी लाज मिटादी। नहीं, नहीं तूने आज अपने गाँव का ही नाम डुबा दिया। पञ्च आपस में परामर्श करने लगे और लोग भी बातें करने लगे। स्त्रियों की खुसर-पुसर आरम्भ हो गई।

"देखो न बहिन! इस मुए को ऐसा करते लाज न आई", बसन्ती बोली।

"बहिन! कलजुग है, कलजुग" हरो लुहारी ने कहा।

"भला! आज तक ऐसा सुनने में आया था?" गुजरी सुनारन ने कहा।

"धिक्कार है ऐसे मनुष्य पर।" कर्मी महरी बोली।

"खामोश!" सर-पञ्च की आवाज़ वायु-मण्डल में गूंज उठी।

"चुप-चुप।" सब लोग एक दूसरे को खामोश करने लगे।

सन्नाटा छा गया।

"क्या तुम्हारे पास इस दोषारोपण का कुछ उत्तर है?" सर-पञ्च ने अपराधी से पूछा।

अपराधी ने प्रश्न का उत्तर पूर्ववत् मौनता से ही दिया।

"इसका अर्थ है, तुम अपने अपराध को स्वीकार कर रहे हो ?" एक सरपञ्च ने कहा।

"तो हमें दण्ड सुनाने में कोई आपत्ति नहीं ?" दूसरे ने पूछा।

"है !" भीड़ में से आवाज़ आई। सब निगाहें उस आवाज़ की ओर उठ गईं। मनुष्य ज़रा ज़रा ऊँचा उठकर उस व्यक्ति को देखने लगे। क्या पञ्चायत का इस प्रकार भी हास्य उड़ाया जा सकता है ? यह तो बहुत बुरी बात है। भला ऐसे गम्भीर अव-सर पर व्यर्थ के हँसी मज़ाक का क्या अर्थ ?

"यह किसकी आवाज़ है ?" दुर्गासिंह ने पूछा।

"मेरी" !

और भगतसिंह उठकर खड़ा हो गया। सब लोग आश्चर्य चकित हो एक दूसरे की ओर देखने लगे। भगतसिंह जैसा समझदार और गम्भीर मनुष्य भी ऐसी व्यर्थ की बातों में पड़ सकता है ? पञ्चायत का अपमान करना अपराध नहीं तो और क्या है ? पञ्च लोग पहिले तो चकित हुए फिर सहसा सँभल गये। भगतसिंह को ग्राम में कौन नहीं जानता था ? उसके क़ानून ज्ञान और अध्ययन से कौन परिचित नहीं था ? गाँव में इस विषय में उसका सामना ही कौन कर सकता था ? फिर ऐसे विषय में वह विशेष चतुर था। साधारणतया दण्ड देते समय, और दण्ड से पूर्व पञ्चायत सदैव उसकी सम्मति लेती थी। उसकी राय में वज़न होता, उसके प्रमाण में प्राण होता। उसके विचार में गम्भीरता होती और दृष्टिकोण में व्यापकता

होती। उसकी बात को हँसी में टालना या हँसी में उड़ाना सम्भव न था। भगतसिंह का ऐसे गम्भीर विषय में हस्तक्षेप करना विशेष अर्थ रखता था। सर-पञ्च ने उसको सम्बोधित करते हुए पूछा।

"भगतसिंह! आप ही ने कहा है कि दण्ड सुनाने में आपत्ति है?"

"हाँ"। मैंने ही कहा है।

"आप जानते हैं, गवाहों ने इसके विरुद्ध साक्षी दी है और इसका अपराध सिद्ध हो गया है और अपराधी ने अपने स्पष्टीकरण में कुछ नहीं कहा है?"

"यह तो मैं देख रहा हूँ और उसे कहने की आवश्यकता भी नहीं।"

"आवश्यकता क्यों नहीं?" मानसिंह बोला।

"यह तो अभी बतलाता हूँ। आप पञ्च हैं। आपने एक व्यक्ति पर चोरी का अपराध लगाया। साक्षियों ने उसका समर्थन किया, अपराध सिद्ध हो गया। परन्तु क्या आपने उसकी भावना को समझने का प्रयत्न किया?"

"इसमें भावना की क्या बात है?" रहमत ने पूछा।

"अपराध में अपराधी की भावना की अधिक महत्ता होती है। हत्या के अभियोग में भी यदि अपराधी का इरादा हत्या करने का न हो, और उसने हत्या करदी हो, तो न्यायालय उसे फाँसी का दण्ड नहीं देता। मोटर ड्राइवर इतने आदमियों को

मार डालते हैं, परन्तु उन्हें प्राण-दण्ड नहीं दिया जाता, क्योंकि उनका विचार हत्या करने का नहीं होता। इसी प्रकार चोरी के अभियोग में भी हमें भावना को अवश्य समझना चाहिये। अब मैं आप लोगों से पूछता हूँ कि अपराधी की भावना क्या थी ?"

"चोरी ! और क्या ?" दुर्गासिंह बोला।

"परन्तु उसने चोरी क्यों की ?"

"विचित्र प्रश्न है यह तो ! आप अपराधी से पूछिये।" रहमत ने कहा।

"अपराधी से नहीं, आप से पूछूँगा। उसे दण्ड तो आप ही सुना रहे थे ना ?"

"यह प्रश्न समझ में नहीं आया।" रामदास बोला।

"मैं केवल यह पूछता हूँ कि जब अपराधी मरघट पर लकड़ियाँ चुराने गया तो क्या उसने उन लकड़ियों की चोरी, किसी विशेष आवश्यकता से बाध्य होकर की या केवल चोरी के विचार से ?"

"इस प्रश्न का उत्तर तो केवल अपराधी ही दे सकता है।" दुर्गासिंह बोला।

"अपराधी की ओर से इसका उत्तर मैं देता हूँ।" भगतसिंह ने नम्रता से कहा।

"दीजिये।" सब पञ्च बोले।

"अपराधी ग्राम का सब से निर्धन व्यक्ति है। वह जाति का दर्जी है, परन्तु अपने पेशे का कार्य करने के लिये उसके पास

सीने की मशीन तक नहीं। उसका बाप भी निर्धन था, और एक निर्धन बाप मरते समय, निर्धन बेटे के लिये निर्धनता के अतिरिक्त कुछ नहीं छोड़ सकता। अपराधी का सगा चाचा अमीर आदमी है। उसने ग्राम से जाकर नगर में दर्जी की दुकान खोल रखी है, जो खूब चल रही है। वह बड़ा दानी है। प्रति वर्ष हरिद्वार जाता है ताकि अपने वर्षभर के पापों को गङ्गामाई को अर्पण करसके। वह बड़े आदमियों की पार्टियाँ भी करता है। परन्तु आजतक उसने अपने भतीजे और उसके बच्चों को एक फूटी कौड़ी नहीं दी। ग्राम और नगर में केवल एक विशेष अन्तर होता है। शहर में मुहल्ले वाले भी एक दूसरे से परिचित नहीं होते, एक दूसरे के दुख में सम्मिलित होने की बात कौन कहे! परन्तु सारा ग्राम एक कुटुम्ब के समान होता है। यह एक शरीर के समान है, जहाँ एक अङ्ग के दुखी होने पर सारा शरीर ही दुखी हो जाता है और जब तक अङ्ग ठीक न हो जाय सारा शरीर स्वस्थ नहीं होता। परन्तु नगरों के प्रभाव के कारण, स्वार्थ की अधिकता या मूर्खता की पूर्णता होने के कारण, आज हमारे ग्राम का शरीर, पहिले जैसा नहीं रहा। आज इस शरीर का रक्त सफेद हो गया है। एक अङ्ग को दुःखी देख कर शेष शरीर को कोई चिन्ता तक नहीं होती। नहीं तो बिशनदास की इस निर्धनता को देख कर, क्या हम लोग जरा भी प्रभावित नहीं होते? और क्या हम इस भीषण सर्दी में उसके और उसके ठिठुरते हुए बच्चों के लिये ईंधन और वस्त्र एकत्रित करने के बजाय

आज उस पर अभियोग चलाते ? लकड़ी चुराने का अपराध उस पर नहीं, ग्राम पर है। आप लोगों ने उसे सर्दी से बचाये रखने का क्या प्रयत्न किया है ?"

"यह हमारा कर्तव्य नहीं"। रामदास बोला।

"तो इस पर अभियोग चलाना भी आपका कर्तव्य नहीं।" भगतसिंह गरज कर बोला।

"यह क़ानूनी कार्यवाही है।" रामदास ने उत्तर दिया।

"शहरों में क़ानून का ऐसा अर्थ लगाया जासकता है, ग्रामों में नहीं। प्राचीन काल में ग्रामों में पञ्चायत इसलिये होती थी कि वह सारे ग्रामों का प्रबन्ध कर सके, उसका कार्य केवल अपराधी को दण्ड देना ही न था, अपराध को बढ़ने से रोकने का प्रयत्न भी करना पड़ता था। दण्ड से अपराध कभी नहीं रुकते। वे तो अपराध की जड़ों तक पहुँच कर उन जड़ों को काटने से रुकते हैं। आज पञ्चायत को एक बेजान मशीनरी जानकर उसका अनुचित प्रयोग किया जा रहा है।"

"आप पञ्चायत का अपमान कर रहे हैं।" दुर्गेसिंह बोला।

भगतसिंह ने नम्रता से कहा, "भला आपका या आपकी पञ्चायत का अपमान करने से मुझे क्या लाभ ? मैं तो केवल आपकी बुद्धि में एक बात बिठाने का प्रयत्न कर रहा हूँ कि हमें ग्राम को एक परिवार समझ कर, परिवार के बच्चों को मारने पीटने, जुर्माना करने या जेल भेजने के बजाय उनकी तकलीफ़ों को दूर करने के उपायों पर भी ध्यान देना चहिये। मिठाई के

लिये रोने वाले बच्चों को, चाँटों से नहीं, मिठाई से मनाना अच्छा होता है।"

"परन्तु हमारा कार्य न्याय करना है।" रामदास बोला।

"झूठ, सरासर झूठ! हमने आपको इसलिये चुना कि आप ग्राम की दशा को ठीक करें, न कि उसे बिगाड़ें।" वह डट कर बोला।

"आप कैसे समझते हैं, कि अपराधी को दण्ड देने से हम ग्राम को बिगाड़ रहे हैं?"

"निःसन्देह आप बिगाड़ रहे हैं। यदि आप समझते हैं कि दण्ड देने से अपराध रुक जायगा तो आप बड़ी भूल कर रहे हैं। आप बिशनदास पर चालीस पचास रुपया दण्ड लगाएंगे। दण्ड उसकी पीढ़ियाँ भी नहीं दे सकतीं। इसे चुकाने के लिए वह फिर बड़ी चोरी करेगा। इसके लिए कारावास भुगतेगा। उसकी पत्नी बच्चों को पालने के लिये किसी के यहाँ नौकरानी बनेगी या सतीत्व नष्ट करायेगी, बच्चे गली-गली भीख माँगते फिरेंगे। उन्हें देख दूसरे बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ेगा? आपने देखा कि आपके एक अनुचित कार्य से कितनी हानि ग्राम की हुई। एक कुटुम्ब बिलकुल नष्ट हो गया, और ग्रामवासियों पर इसका कितना बुरा प्रभाव पड़ा? और आप कहते हैं कि आप कुछ बिगाड़ ही नहीं रहे।" फिर बढ़कर बोला "मेरी यह प्रार्थना है कि ग्राम में न्याय में अन्धानुसरण नहीं होना चाहिये।"

पञ्च आपस में परामर्श करने लगे। अन्य लोग भगतसिंह के प्रस्ताव की अनुमति में सिर हिलाने लगे, औरतों ने काना-

फूसी आरम्भ की। वे विशनदास से सहानुभूति प्रगट कर रहीं थीं।

"बहिन देखो ना मुए भाई को" रामकोर बोली। "अच्छा खाता पीता है, यह नहीं कि निर्धन भाई को ही चार पैसे भेजदे।"

"बहिन! यह कलजुग नहीं तो और क्या है?" रुक्मन ठोढी पर अंगुली रखकर कहने लगी।

"उस मुए की माँ तो गाँव में गोबर इकट्ठा करती फिरती है। भाई चोरी करता है, और खुद मौजें उड़ा रहा है।"

"मैं होती तो ऐसे बच्चे को गोली मार देती।" परतापी जुलाहन बोली।

"मैं उसका खून पी जाती।" रामचन्द्र बाजीगर की घरवाली ने कहा।

"बहिन! घोर कलजुग है।" रामरखी ने विवाद को समाप्त करते हुए कहा।

"खामोश" दुर्गासिंह चिल्लाया "सुनो" करतारसिंह ने उपस्थित लोगों को चुप कराते हुए कहा।

"बहिन! सुनो भी।" परतापी जुलाहन बोली।

हुक्का पीने वालों ने गुड़-गुड़ की आवाज़ बन्द करदी। बीड़ी पीने वालों ने बीड़ी बुझाकर फेंक दी। 'लेम्प' से सिगरेट पीने वालों ने उन्हें बुझाकर शेष भाग को कानों में या पगड़ियों के नीचे रख लिया। बूढ़े अपने जूते उतार कर उस पर बैठ गये

जैसे गद्दियाँ हों। लोगों ने पाँव के बल बैठकर अपनी पगड़ियों को दोनों हाथों से ठीक किया, और कानों पर से पगड़ी उठा ली। खाँसने वालों ने शीघ्रातिशीघ्र खाँस लिया ताकि बीच में खाँसना न पड़े, और सब मौन होकर पञ्चों की ओर देखने लगे।

"तो आप क्या चाहते हैं?" सर-पञ्च ने भगतसिंह की तरफ देखते हुए कहा।

'मुईं···मुईं···मुईं····।' जैसे सर-पञ्च को उत्तर मिला हो। उपस्थिति का अधिक भाग अविचार से हँस पड़ा।

"यह किसका बच्चा है?" दुर्गासिंह ने चिल्लाकर पूछा।

'मुईं···मुईं···मुईं····।'

"सुनती नहीं", वह ऊपर कोठे की छत की तरफ देखकर बोला। "कौन है? चञ्चल रो रहा है? अरी बेशरम। बन्तो की बच्ची" वह अपनी लड़की को सम्बोधित करके कहने लगा। "तुम तो अपने बाप को चुप नहीं करा सकती। जा लेजा इसे यहाँ से। सुनती नहीं?"

बन्तो ने सुन लिया और चञ्चल को गोद में सम्भाले छत से नीचे उतर गई ताकि वहाँ जाकर जी भर कर उस मुए चञ्चल को पीट सके।

"मुआ, कोढी, रन्डी छोड़ना। नाना की तरह चिल्ला रहा है। इसे मौत भी तो नहीं आती।" उसकी आवाज़ दुर्गासिंह के कानों में पड़ी। परन्तु उसने इस समय चुप रहना ही उचित समझा।

फिर सन्नाटा छा गया।

"हाँ! भगतसिंह जी!" रामदास सर-पञ्च की बात को दुहराते हुए बोले। "आप क्या चाहते हैं?"

"मैं यह चाहता हूँ" भगतसिंह ने अत्यन्त गम्भीरता से उत्तर दिया। "कि हमें बिशनदास या इस जैसे दूसरे मनुष्यों को दण्ड देने के बजाय ऐसे अपराध के रोकने का प्रभावशाली उपाय ढूंढ निकालना चाहिये।"

"मान लीजिये, यदि हम आपसे पूछें" सर-पञ्च ने कहा। "कि वह प्रभावशाली उपाय कौनसा है, तो आप बतला सकते हैं?"

"क्यों नहीं" भगतसिंह ने गम्भीरता से कहा। "मेरी राय में हमें बिशनदास जैसे व्यक्ति के लिए कार्य ढूंढना चाहिये। यदि प्रयत्न किया जाय तो यह कुछ कठिन कार्य नहीं। बड़े जमींदारों के साथ उसे कृषि में लगाकर पारिश्रमिक दिलाया जा सकता है। दूकानदारों के साथ जाकर, शहर से उनका माल लाने में सहायता कर सकते हैं, और बहुत से काम हैं, जो इन बेक़ार और निर्धन मनुष्यों को दिलाए जा सकते हैं। इसके साथ हमें एक निर्धन फण्ड, स्थापित करना पड़ेगा। उस फण्ड में प्रति-व्यक्ति फ़सल के अवसर पर अपनी शक्ति के अनुसार पैसे या अनाज देकर, अपना भाग अदा कर सकता है। इस फण्ड के प्रबन्ध के लिए ग्राम के प्रतिष्ठित न्यायशील, और दयालु पुरुषों की कमेटी होना चाहिये। उस कमेटी के चार कार्य होंगे:—

(१) पैसा या अनाज एकत्रित करना।

(२) उसका प्रबन्ध करना।

(३) निर्धनों को काम पर लगाना।

(४) समय पड़ने पर उन्हें और उनके कुटुम्ब को सहायता पहुँचाना।

"यह कहना सरल है परन्तु करना कठिन है।" रामदास ने कहा।

"यदि विचार हो तो करना भी सरल है।" वह बोला।

"अच्छा आप तो केवल पति-पत्नी हैं, आपका घरखर्च भी अधिक नहीं, आप इस 'निर्धन फण्ड' में क्या देते हैं?"

"आप यह न कहें कि मेरा खर्च अधिक नहीं। हो सकता है कि आपके पन्द्रह आदमियों के कुटुम्ब से हम दो का खर्च दुगना हो..........।"

उपस्थित लोग खिलखिला कर हँस पड़े। रामदास कंजूसी के लिये सारे गाँव में कुप्रसिद्ध थे।

"हाँ" भगतसिंह अपनी बात को जारी रखते हुए बोला।

"ग़रीब फण्ड के लिए आप मुझ से चन्दा माँगने के लिये ठीक कहते हैं। परन्तु इसके पहले मैं अपना चन्दा दूँ, मैं ग्राम के प्रसिद्ध नौजवान सेठ रणवीर जो वीर, साहसी और निर्धनों के सहायक हैं, की ओर से इस फण्ड के लिये पाँच सौ रुपये पेश करता हूँ।" और उसने पाँच सौ रुपये के दस दस के नोट सर-पञ्च के आगे इस प्रकार फेंक दिये जैसे कौड़ियाँ हों।

चारों ओर से तालियों की आवाज आकाश में गूंज उठी। लोग हर्षातिरेक और आश्चर्य से पागल हो रहे थे। लोगों ने पञ्चों की ओर देखा। पञ्चों ने पास ही दरी पर बैठे मनोहर की ओर देखा। मनोहर ने अपनी बग़ल में बैठे अपने छोटे भाई रणवीर की ओर देखा, और रणवीर ने भगतसिंह की ओर। मनोहर जैसे रणवीर से कह रहे थे, "इतनी बड़ी रक़म के लिए मुझ से तो पूंछ लिया होता।" रणवीर जैसे भगतसिंह से कह रहे थे "यह क्या गजब ढा दिया?" और भगतसिंह जैसे उत्तर में कह रहे हों। "किसी प्रकार की चिन्ता मत करो। सब ठीक कर लूंगा।" और जैसे दिल में सोच रहे हों "पहला वार क्या ठीक बैठा।"

"और" भगतसिंह की आवाज फिर से गूंज उठी। एकदम सन्नाटा छा गया "और अपनी ओर से मैं इस फण्ड के लिये एक सौ रुपये अर्पण करता हूँ।" यह कह उसने दस दस रुपये के दस नोट सरपंच के सामने पड़े हुये नोटों में मिला दिये।

तालियाँ फिर गूंज उठीं। उपस्थित नवयुवकों ने जिनमें सोलह वर्ष की आयु के लड़कों की संख्या अधिक थी, "भगतसिंह की जय", के जय-घोषों से आकाश गुँजा दिया। जय-घोष फिर होने लगे, "भगतसिंह की जय", "रणवीर की जय।" सभा का रङ्ग ही बदल गया। वह न्यायालय जैसे राजनैतिक सभा बन गई। उसकी स्थिति एकदम बदल गई। अपराधी बिशन-दास, लोगों की दृष्टि में, जातीय नेता के रूप में खड़ा था।

भगतसिंह एक राजनैतिक नेता को फाँसी के तख्ते पर से उतारने वाले बैरिस्टर की तरह खड़ा था। और रणवीर, जातीय फण्ड के लिये, चन्दे की पहली पर्याप्त राशि देने वाले 'बिड़ला' की तरह दिखाई दे रहे थे। जनता इन तीनों क़ौमी नेताओं के प्रति कृतज्ञता प्रगट कर रही थी। न्यायाधीश अपराधी के रूप में बैठे थे, और साक्षी नेत्रों को नीचा किये, जैसे अपने घोर अपराध को स्वीकार कर रहे हों। निर्धन, निर्धन के विरुद्ध साक्षी देने आये! भूखे का भूखा शत्रु! लोगों की गन्दगी उठाकर भी, रोटी से वञ्चित रहने वाले, भूख से व्याकुल और सर्दी से परेशान, व्यक्ति को अपराधी सिद्ध करने के लिये एक दूसरे एड़ी-चोटी का जोर लगा रहे हैं, और पञ्च लोग जिन्हें ग्राम वासियों ने अपने अधिकारों की रक्षा के हेतु नियुक्त किया है, उस ग्राम के एक व्यक्ति के कष्ट को दूर करने के स्थान पर, उसे दण्ड दे रहे हैं। धिक्कार है। इन सब पर, और उधर भगतसिंह और रणवीर! एक तीव्र-बुद्धि, उदार हृदय और दयालु मित्र, वकील, और दूसरा उदार और दानी निर्धनों का सहायक धनी! ये दोनों धन्य हैं!

सभा का रङ्ग बिलकुल बदल गया। पुरुषों ने नारों से इस नवीन प्रस्ताव और नये फण्ड का स्वागत किया। सरपञ्च ने उठकर कहा।

"मैं पञ्चायत की ओर से चौधरी भगतसिंह और लाला रणवीर चन्द के प्रति कृतज्ञता प्रगट करता हूँ कि आज उन्होंने

न केवल ग्राम को अपितु पञ्चायत को भी एक नवीन मार्ग दिखाया है। मैं इन दोनों से प्रार्थना करता हूँ कि वे भविष्य में हमें पथ-प्रदर्शक का काम दें। (तालियाँ) साथ ही एक प्रार्थना और करता हूँ कि इस फण्ड के प्रबन्ध के लिए, जैसा कि भगत-सिंहजी का कथन है, एक कमेटी बनाना चाहिये। इसके सभापति के लिए मैं रणवीरचन्दजी का नाम और सेक्रेटरी के लिए भगतसिंह का नाम प्रस्तावित करता हूँ। शेष सदस्यों का निर्वाचन अभी हो जाना चाहिये। मैं अपनी ओर से इस फण्ड के लिए बीस रुपये की तुच्छ राशि भेंट करता हूँ।" और उन्होंने पगड़ी के ऊपर के पल्लू में से दो नोट दस दस के निकाल कर, दरी पर रख दिये।

तालियों की ध्वनि पुनः गूंज उठी।

देखा-देखी सब लोगों ने चन्दा देना आरम्भ कर दिया। भगतसिंह ने कागज़ और लेखनी हाथ में लेकर, चन्दा देने वालों के नाम, और चन्दे की राशि लिखना आरम्भ किया।

"हुजूर" लोगों ने देखा कि चन्दू भङ्गी दोनों हाथ जोड़ कर, पञ्चायत को सम्बोधित कर रहा था। "हम अपने अपराध के लिये लज्जित हैं, और इसके प्रति क्षमा याचना करते हैं।"

"तुम अनुचित कह रहे हो" भगतसिंह ने जोर से कहा। "तुम लोगों ने बिलकुल ठीक किया है। तुमने अपने कर्तव्य का पालन किया है। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिये कि वह अपने अपने स्थान पर अपने कर्तव्य का पालन करे।"

"नही हुजूर !" मुन्शी भङ्गी उठ कर बोला "हमें दुःख है कि हमने अपने जैसे एक निर्धन भाई के विरुद्ध साक्षी दी। इसके प्रायश्चित्त स्वरूप हम सब आठ आठ आने 'निर्धन-फण्ड' में जमा करते हैं।" और उसने दो रुपये आगे बढ़ाये। लोगों ने तालियों से इस भेंट का स्वागत किया। स्त्रियों ने ओढनियों के पल्लू से आँखों को पोंछा। उपस्थित व्यक्तियों ने लङ्गोटियों, पगड़ियों, जेबों, तहमदों, खीसों में से निकाल निकाल कर यथा-शक्ति पैसे जमा कराने आरम्भ किये। आध घण्टे के पश्चात् जब हिसाब किया गया तो एक हजार एक सौ बावन रुपये पौने पाँच आने की राशि जमा हो चुकी थी।

सरपञ्च ने खड़े होकर, इस राशि को सुनाया तो सब प्रसन्नता में डूब गये। किशनदास के नेत्रों से कृतज्ञता और हर्ष के आँसू बहने लगे।

कमेटी के सदस्यों का निर्वाचन हुआ। भगतसिंह, रणवीर-चन्द पञ्चायत के चारों मेम्बर, मुन्शी हरिचन्द, रामचन्द चमार और ग्राम के तीन अन्य व्यक्ति इस कमेटी के सदस्य चुने गये। सरपञ्च इसका कोषाध्यक्ष और रहमत उप-मन्त्री चुने गए।

"रणवीर चन्द और भगतसिंह की जय" के नारों के बीच पञ्चायत समाप्त हुई।

दसवाँ परिच्छेद

उस दिन सारे गाँव में वाद-विवाद होता रहा। जिस स्थान पर भी चार व्यक्ति बैठते वे इसी घटना पर बातचीत करते। बाज़ार में, दूकानों पर, चबूतरों पर, घरों में, हलवाई की दूकानों पर, शराब की भट्टियों पर जहाँ भी कुछ आदमी जमा थे, इसी बात की ही चर्चा थी। सारी बातचीत तीन व्यक्तियों के विषय में ही होती, भगतसिंह, रणवीर, और मनोहर। रणवीर के साथ मनोहर की गणना स्वाभाविक थी। भगतसिंह के विषय में तो लोग पहिले ही जानते थे कि वह निर्धन व्यक्तियों के विषय में सदैव ही अपनी मित्रता का प्रमाण देता है। कितनी ही भीड़ क्यों न हो, कितना ही विरोध क्यों न हो, वह निडर और निर्भय होकर अपने विचारों को प्रगट करेगा। निर्धनों, हरिजनों, चमारों या दूसरे, दारिद्रय से पीड़ित व्यक्तियों के लिए वह सदैव मैदान में कूदने को कटिबद्ध रहता है। कितनी ही ऐसी घटनाएँ

उपस्थित हुईं, जब उसे कठोर विरोध का सामना करना पड़ा और अफ़सरों का क्रोध भी सहना पड़ा। ऐसी बातें भी हुईं कि जब उसका बहिष्कार किया गया। सारे ग्राम ने उससे मेल-जोल बन्द कर दिया। उसका "हुक्का-पानी" भी बन्द हुआ। परन्तु वह अपने विचार से टस से मस न हुआ। उसके ऊँचे आदर्श में कोई अन्तर न पड़ा, और उसके विचारों में कोई दुर्बलता न आई। वह चट्टान की तरह अपने विचार पर अटल रहा। लोगों ने इस पर विवाद किया, और उसके कार्यों में त्रुटि निकाली, उसकी नियत पर सन्देह किया, उस पर आवाज़ें कसीं, परन्तु उसके चेहरे पर कभी भी घबराहट के चिह्न दिखाई न दिये। उसके कार्यों में कभी भी निर्बलता न पाई गई, और जब लोगों न उसे इतना दृढ़ और वीर पाया तो उसे झुकाने के स्थान पर स्वयं झुक गये। उसे विवश करने के स्थान पर स्वयं विवश होगये। उसे पराजित करने की जगह स्वयं ही हथियार डाल दिये। उसका हथियार केवल एक ही होता, दृढ़ विश्वास और अदम्य साहस। उसमें सहनशक्ति की पराकाष्ठा थी। अकेले अकेले आदमी से बहस करने, उलझने या लड़ने से वह घृणा करता था। कभी कभी एक बारगी राजनीतिज्ञ की तरह अपने विचारों को प्रगट कर देता। वह बात सारे ग्राम में फैल जाती। मनुष्य या तो उससे भयभीत हो जाते या उस पर विवाद करते। यह विवाद उसके कान तक पहुँचता, और वह फिर अवसर पाकर, एक समूह में इन विषयों पर प्रकाश डाल देता। दो तीन बार ऐसा करने से

लोग खामोश हो जाते। उसके चेले न बनते हुए भी वे उसके प्रमाणों और युक्तियों के आगे सिर झुकाते, और अन्त में फिर उसके मित्र हो जाते। लोग यह जानते थे कि जहाँ कहीं अदम्य उत्साह, वीरता और निर्भयता की आवश्यकता पड़ती वहाँ केवल भगतसिंह ही मैदान में आगे आ सकता था। यदि कभी अफसरों के सम्मुख, ग्राम के संबध में विषय आते, वहाँ लोगों का प्रतिनिधित्व करने में उसे तनिक भी लज्जा न आती। व्यर्थ के रीति-रिवाज के विरुद्ध भी वह अपनी आवाज़ उठाता। बाहर से आने वाले, लोगों को लूटने वाले, भिन्न भिन्न प्रकार के ठगों के विरुद्ध भी वह खुले रूप से घृणा का प्रदर्शन करता। यदि गौशाला वाले जलसा करके चन्दा माँगने आते, वह उनसे विवाद करता, और उनकी बेईमानी लोगों के समक्ष प्रगट करता, और अपने प्रमाणों से यह सिद्ध कर देता कि विशेष फण्ड जमा करने के स्थान पर देहात में गौ और बैलों की दशा को सुधारने की ओर ध्यान देना चाहिये। और एक विशेष फण्ड जमा करने के स्थान पर, गाँव गाँव में इसके लिए फण्ड होना चाहिये। गाँव के बाहर से भीख माँगने वालों के विरुद्ध वह आन्दोलन करता, और उन्हें गाँव में घुसने से एकदम रोकता। गाँव में हाथ देखने वाले बड़ी संख्या में आते थे। वे उस समय आते, जब आदमी खेतों में काम पर गये हुए होते। उनकी अनुपस्थिति का लाभ उठाकर, घरों की कुछ-न-कुछ जानकारी करके वे स्त्रियों के पास चले आते, और उनके सामने जीवित और मृत बच्चों की संख्या, उनको

बीमारी के समाचार, और उनके भविष्य की घटनाएँ कहकर उन्हें आश्चर्य में डाल देते। इस विद्या के बदले, उन्हें मुँहमाँगा पुरस्कार मिलता, अनाज, वस्त्र, घी, तेल, गुड़, शक्कर और नक़द भी। जब भगतसिंह को गाँव में किसी ऐसे व्यक्ति के आने की सूचना मिलती तो वह अविलम्ब पकड़ लेता और बाज़ार के बीच लाकर उसके झूठ की पोल खोलता, और फिर उसे डरा धमका कर कहता कि यदि उसने फिर गाँव में कदम रखा तो उसकी मरम्मत न केवल जूतों से की जायगी अपितु उसका झोला छीन कर फाड़ दिया जायगा। इसके उपरान्त यदि उसके सिर में खुजली का रोग हो या उसे जूतों की आवश्यकता हो तभी वह गाँव में आने का साहस करता, नहीं तो वह गाँव के बाहर ही से लौट जाना उचित समझता, और भगतसिंह को सैकड़ों गालियाँ देता हुआ गाँव को दूर ही से प्रणाम करता। बनावटी साधुओं की शक्ल से भगतसिंह को बहुत चिढ़ थी। ये लोग जीवन के संघर्ष से भाग कर गेरुए कपड़े पहिन कर लोगों को धोखा देते फिरते, और मक्कारी का जाल फैलाते। फिर भोले भाले देहातियों के भोलेपन और उनकी धार्मिक भावनाओं का अनुचित लाभ उठाते हुए वे उनसे खाना, कपड़ा और अन्य वस्तुएँ माँगते फिरते। कुछ केवल औरतों के दर्शन करने, उनसे बातें करने, आँखें लड़ाने या उन्हें भगाने के लिए गाँव में आते। गाँव से बाहर धूनी जमाकर अड्डा लगा लेते, और वहाँ भङ्ग, धतूरा तम्बाकू और गाँजा पीते। चेलों का उन्हें अभाव न होता। गाँव के बेकार मनुष्य चिलम का

दम लगाने के लिए ही वहाँ बैठ जाते, और गप्पें हाँकते। भगत-सिंह उनसे विवाद मोल लेता। उसे क्रोध इस बात का होता कि ये लोग असली साधुओं के नाम को बदनाम करते हैं। पहले तो हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार, पचास वर्ष से पूर्व साधु बनने का प्रश्न ही नहीं उठता। जीवन-संग्राम से भाग कर साधु बनना कायरता नहीं तो और क्या है ? बौद्ध-मत ने आकर साधु-मत का अधिक प्रचार किया, परन्तु बौद्ध-मत में भी कोई मनुष्य साधु या संन्यासी नहीं बन सकता था जब तक कि घर वालों की पूरी पूरी आज्ञा लेकर न आये, और आज बहुत से मनुष्य घरों से भागकर भगवा वस्त्र पहिन फिरते हैं। फिर साधु की सबसे प्रथम शर्त है ईश्वर ज्ञान, भक्ति, विद्या, और ये लोग इन तत्त्वों से बिल-कुल अपरिचित होते हैं या फिर साधु लोग जनता की सेवा का कार्य करें तो भी कुछ उचित हो। वे लोगों में जाकर अज्ञानता को दूर करें, विद्या को फैलावें, बीमारी या अकाल में सहायता करें, ये साधुओं के कर्त्तव्य होना चाहिये, न कि गाँजा पीना, अलख जगाना, लोगों को ठगना, और औरतों को भगाना।

भगतसिंह के इन विचारों से मनुष्य कभी-कभी उससे रुष्ट भी हो जाते। जब-कभी गाँव में आदमियों या पशुओं की बीमारी या कोई और आपत्ति का पहाड़ टूटता तो मनुष्य इसे उसकी नास्तिकता का परिणाम बताते परन्तु वह नास्तिक नहीं था। ईश्वर-भक्ति के विरुद्ध उसने कभी कुछ न कहा। वह स्वयं पूजा-पाठ करता था या नहीं इससे कोई सम्बन्ध नहीं परन्तु वह ईश्वर-भक्ति के

विरुद्ध एक शब्द भी मुख से न निकलता। स्त्रियाँ उसकी इन बातों से बहुत तङ्ग आ जातीं। उसे गालियाँ देतीं, उसे धिक्कारतीं, परन्तु वह इन्हें इस प्रकार स्वीकार करता जैसे घी-शक्कर को।

उस दिन पञ्चायत के सामने भगतसिंह ने जो नई बात कर दिखाई वह उल्लेखनीय थी। उसने न केवल बिशनदास को बदनामी और दण्ड से बचाया अपितु लोगों के दिलों में उसके लिए सहानुभूति उत्पन्न करके सारे निर्धनों की समस्या को ग्राम-वासियों के सामने रखा। यही नहीं अपनी नीति के द्वारा एक 'निर्धन-फण्ड' भी खोल दिया। और उसके लिए ग्यारह सौ रुपये से ऊपर चन्दा एकत्रित कर लिया। अमानतपुर जैसे गाँव के लिये यह चन्दा असाधारण था, और सच तो यह है कि मनुष्यों की दृष्टि में यह एक चमत्कार था। इस चमत्कार ने लोगों के दिलों में उस के लिए विशेष गौरव उत्पन्न कर दिया। यह एक साधारण व्यक्ति का नहीं, एक अतियोग्य, बुद्धिमान, दीर्घदर्शी, वीर, और साहसी व्यक्ति का ही काम था। इस घटना ने लोगों के दिलों में भगतसिंह का मान कई गुना बढ़ा दिया।

परन्तु क्या भगतसिंह का यही विचार था? क्या वह मनुष्यों के हृदय में विशेष स्थान उत्पन्न करना चाहता था? क्या इस सारे कार्यक्रम से लाभ उठाकर उसका अभिप्राय नेता बनना था? यदि नहीं तो फिर क्या था। परन्तु यह तभी हो सकता है कि उसके हृदय में केवल दु:खियों की सेवा और सहायता के अतिरिक्त और कोई बात न हो? वह पवित्र हृदय से सब की

सेवा करना चाहता हो ? किसी के हृदय के भेद को कौन जान सकता है ? मनुष्यों का हृदय भी क्या वस्तु है ? कितने भेदों से भरा हुआ और कितनी उलझनों से उलझा हुआ।

हाँ, एक बात अवश्य थी। भगतसिंह ने इस सारे नाटक में रणवीर को क्यों इतनी प्रतिष्ठा दी ? आज तक इतने जीवन-संग्रामों में उसने अकेले ही युद्ध किया था। उसने किसी की सहायता की चिन्ता न की थी। उसके साहस, वीरता और सचाई से प्रभावित होकर यदि नवयुवक उसकी ओर आकर्षित हुए हों तो उसने उसकी सहायता से कभी इनकार नहीं किया। परन्तु उसने पल्लू बिछाकर किसी से सहायता की भीख भी नहीं माँगी। आज उसने रणवीर को बीच में लाकर एक नई समस्या ही खड़ी करदी। परन्तु क्या रणवीर को इस बात का पता था ? क्या उसे पहिले बतला दिया गया था ? यदि नहीं तो क्या वे रुपये उसने रणवीर से बिना पूछे ही दे दिये थे ? फिर एक-दम पाँच सौ ! यदि रणवीर से बिना पूछे ही दिये तो वह क्यों मौन रहा ?

भगतसिंह के चरित्र से यदि कोई व्यक्ति अधिक प्रभावित हुआ तो वह रणवीर था। उसने आज तक उसके चरित्र का यह उज्ज्वल पक्ष नहीं देखा था। वह उसे अच्छा मित्र समझता था जो अपने अच्छे स्वभाव के साथ भी मद्य-पान करने वाला और पर-स्त्री-गामी था। परन्तु उसकी उदारता, साहस, उत्साह और बुद्धिमत्ता का इतना ऊँचा प्रमाण उसे पहले कभी नहीं मिला था।

इतने मनुष्यों के बीच स्वयं परिणाम से निश्चित वह एक दीन दुखी मनुष्य की वकालत इस सराहनीय योग्यता से कर रहा था। ऐसा मालूम होता था जैसे अपराधों के लिये निर्धारित दण्डों के लिये वह नवीन सिद्धान्तों को प्रयोग में ला रहा हो। जो कार्य एक राजनीतिज्ञ सम्भव प्रयत्नों से भी नहीं कर सकता था, वह काम उसने आधा घण्टे में करके दिखा दिया। उसके दिल में भगतसिंह का मान बढ़ना स्वाभाविक था।

परन्तु उसने इसे बीच में क्यों घसीटा? उससे बिना पूछे, उसे बिना सूचित किए, उसने गाँव के सब लोगों के सामने उसके चन्दे को जोर से क्यों सुनाया? फिर स्वयं ही अपनी जेब से चन्दा दिया। एक नहीं, दो नहीं, पूरा पाँच सौ रुपया! पाँच सौ! इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस कार्य से लोगों के दिल में उसकी प्रतिष्ठा अधिक बढ़ गई। उसका मान कई गुना बढ़ गया। परन्तु उससे पूछ तो लिया होता। परन्तु पूछने का समय भी कहाँ था? यह बात तो अचानक हुई। कल सायं मुझसे मिलने के उपरान्त विशनदास के यहाँ चोरी की घटना घटित हुई। आज प्रातः पञ्चायत बैठी, मुझे घर बैठे बुलावा आया। इस बीच में मेरी उससे भेंट न हो सकी। इसमें उसका अपराध भी क्या है? उसने केवल मेरी इज्जत बढ़ाने के लिए, मनुष्यों पर मेरा प्रभाव डालने के लिए और मेरा नाम ऊँचा करने के लिए, यह सब कार्रवाई की। उसने वही किया जो एक सच्चे मित्र को करना चाहिये था। उसे भगतसिंह की दोस्ती की सराहना करना चाहिये, जिसने एक मित्र

का नाम ऊँचा करने के लिये यह सब कुछ किया।

परन्तु रणवीर को एक चिन्ता थी। भगतसिंह ने रुपयों का जिक्र करते समय मनोहर का नाम क्यों नहीं लिया? रुपया, कारोबार और घर सब में साझा था। आज तक हर काम में प्रायः मनोहर का नाम लिया जाता। चन्दा हो, किसी सभा की अध्यक्षता हो, कोई मान-प्रतिष्ठा का कार्य हो, मनोहर का प्रथम आना आवश्यक होता। वह एक तो अनन्तराम का बड़ा पुत्र था, दूसरे कारोबार को वस्तुतः वही चलाता था, तीसरे रणवीर के प्रायः बाहर रहने के कारण गाँव की प्रत्येक घटना का उसे पूरा पूरा पता होता था। फिर भगतसिंह के इस व्यवहार से भैया के हृदय को अवश्य चोट पहुँची होगी, ठेस नहीं जबरदस्त धक्का लगा होगा। तभी वह खामोशी से उठकर चले गये थे, दुःख से भरे हुए। उससे या किसी और से बिना बात किये। परन्तु इसमें उसका क्या अपराध था। वह अपने मित्र के व्यवहार का कैसे उत्तरदायी हो सकता है? फिर रुपया भी तो मित्र ने अपनी जेब से दिया। परन्तु क्या वह रुपया उसे देगा नहीं? क्यों नहीं? भगतसिंह इतना धनी तो है नहीं कि उसके लिये पाँच सौ रुपया दे दे। परन्तु वह रक़म तो उसे भैया से माँगनी होगी, और यदि भैया ने देने से इन्कार कर दिया तो! इनकार! इनकार कैसे कर सकते हैं? क्या वह तमाम व्यय करते समय उसका परामर्श लेते हैं? आज तक उसने उसकी सलाह तक नहीं ली। किसी विषय में उसकी परवा तक नहीं की। किसी को रुपया उधार देना हो,

किसी को चन्दा देना हो, किसी सोसाइटी को दान देना हो, किसी निर्धन को दान देना हो, भैया ने उसे आज तक कोई महत्त्व नहीं दिया। उससे पूछा तक नहीं। इतना ध्यान तक नहीं कि वह जीवित है या नहीं। उसे बताना तक आवश्यक नहीं समझा। और आज पहली बार उसने दान किया, और वह भी एक ऐसे ऊँचे उद्देश्य के लिए, और इस पर ही वे अप्रसन्न होकर, मुँह बना कर चले गये। आज तक गाँव के हर विषय में उन्हीं का नाम आता रहा। उसके अपने नाम से कोई परिचित तक न था। और क्या उनसे कभी इस विषय में एक शब्द भी कहा और जरा भी मुँह खोला था ? तो आज उसके ऐसा करने से कौन सी आपत्ति आ गई ? यदि सम्पत्ति में से मेरे पाँच सौ रुपये देने से उनकी यह अवस्था है तो वह मुझे मेरा हिस्सा कब देने लगे। फिर तो सुषमा का और भगतसिंह का कथन सत्य था कि ये लोग मुझे अधिकारहीन करने का पक्का विचार किये बैठे हैं। मुझे इसके लिये आगे ध्यान रखना पड़ेगा। ध्यान! अब ध्यान रखने का समय चला गया। अब तो मुझे अपने अधिकार के लिए लड़ना होगा और कल से ही। यह भी अच्छा हुआ कि भगतसिंह ने मेरी आँखें खोल दीं। मुझे भैया का दिल टटोलने का अवसर दिया। परन्तु क्या यह भगतसिंह ने जान बूझकर तो नहीं किया ? क्या यह उसे भाई से लड़ाने की चाल तो नहीं थी ? हत् तेरे की ! आदमी कितना नीच होता है। अपने मित्र के विरुद्ध ऐसे विचार ! और फिर मित्र भी वह जो वीरता, बुद्धिमानी

और निर्धनों की सहायता के लिए गाँव भर में प्रसिद्ध है, जो अपने सिद्धान्तों के लिये किसी से भी बिरोध करने को तैयार है, जो किसी की चुनौती भी स्वीकार करने से घबराता नहीं, जिसे गाँव की सङ्गठित शक्ति भी परास्त नहीं कर सकती। लज्जा की बात है कि ऐसे सच्चे पवित्र, साहसी और घनिष्ठ मित्र के विषय में वह ऐसे विचारों को दिल में उठने तक भी दे। इसके विपरीत उसको इसका कृतज्ञ होना चाहिये कि उसने मित्र की आँखें खोलदीं। उसे सचाई बतलादी, और उसे सचाई ही नहीं दिखाई अपितु उससे परिचित भी करा दिया।

इधर मनुष्यों के दिलों में रणवीर की चर्चा चल रही थी। उसकी उदारता, और उसके हृदय में ग़रीबों की सहानुभूति के लिये प्रत्येक व्यक्ति सराहना ही करता दिखाई देता था। लोग कह रहे थे कि यह लड़का भी बाप की तरह दानी है। बाप की तरह क्यों ? उससे कहीं बढ़कर। उसके बाप ने क्या दिल खोलकर इस तरह ग़रीबों के लिए इतना चन्द दिया था ? पाँच सौ रुपये। कहना कितना आसान है ? गाँव में और भी तो इतने साहूकार और महाजन हैं। पैसा देते समय मरते हैं। इतना पैसा दबाए बैठे हैं, परन्तु इनसे ग़रीब को एक पैसा दान देते नहीं बनता। रामदास पञ्चायत का मेम्बर बना बैठा है। एक पैसा भी देते समय इसकी जान निकलती है। दान क्या देगा ? परन्तु इस लड़के ने एक नहीं, सौ नहीं, पूरे पाँच सौ रुपये दान देदिये। इसने अपने भाई को भी पीछे फैंक दिया।

"परन्तु बहिन ! रणवीर ने पैसा देते समय भाई से क्यों परामर्श नहीं किया ?" बंती बोली।

"ली होगी बहिन, उनके घर यह बात नहीं। वहाँ मनोहर की आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता।" हुकमी तरखानी ने उत्तर दिया।

"ख़ाक ली होगी" राजो ने हाथ मारकर कहा।

"अगर ली होती तो वह उपले सा मुँह बनाकर न बैठा रहता।"

"और उठते समय भी तो मुँह सुजाए था, जैसे बरों ने काट खाया हो।" रुक्मनी बोली।

"परन्तु बहिन कुछ हो उस छोकरे ने कमाल कर दिखाया।"

"क्या कमाल कर दिखाया ? पैसा हो तो मनुष्य क्या नहीं कर सकता ? जिसको दे दाने उसके कमले भी सयाने।"

"सो तो ठीक है। परन्तु पैसा भी तो हर कोई खरचना नहीं जानता। यहाँ बड़े बड़े अमीर थे, क्या कभी सुना है कि किसी ने एक पैसा भी दान किया हो। अब भी इस गाँव में ये महाजन रक़में दबाए बैठे हैं। परन्तु किसी को फूटी कौड़ी का वास्ता नहीं। मैं तो ऐसी दौलत पर थूकूं भी ना।"

"परन्तु बहिन ! बड़ी बहू भी तो आज मुँह फुलाये बैठी है।"

"वह क्यों"

"लो और सुनो। वह क्यों ? हाय हाय ! देवर भाई को पूछे बिना इतना रुपया दान करदे और वह मुँह भी नहीं फुलाए।"

"अरी भेज लानत उसको भी। अपने आप को ऐसी समझती है, जैसे महारानी हो। साहबजादी कहीं की। इसके नखरों का ही पता नहीं चलता।"

"अरी अपने आप को बहुत बड़ी गिनती है। मैं तो ऐसी औरत पर थूकती भी नहीं। अभी सुषमा बड़ी सभ्य स्त्री है।"

"बहिन! वह समझदार है। उसे घमण्ड छू तक नहीं गया। इसका बाप बड़ी के बाप से गरीब सही, परन्तु है तो बड़ा। क्या केवल मनुष्य धन से बड़ा तो नहीं बन जाता।"

"बहिन! धन तो आता जाता है। फिर गधे के ऊपर भी खजाना लाद दो, तो क्या?"

"भाड़ में जाय सोना जो कान को खाय।"

"लेकिन बहिन, स्वभाव तो नीलिमा का भी बुरा नहीं।"

"नहीं बहिन! बेचारी बड़ी हँस-मुख है।"

"मजाक भी खूब करती है।"

"बहिन! जब उसके घर जाओ, तभी इतनी आव-भगत करती है।"

"अभी तुम इसे गालियाँ दे रही थी।" एक बुढ़िया पास से बोली।

"अजी इस की मत सुनो। यह सठिया गई है।"

यह सच है कि मनोहर को दुःख अनुभव हो रहा था। आज जीवन में पहली बार इसका अपमान हुआ, और वह भी छोटे भाई के हाथों, जिसे उसने छोटा भाई ही नहीं, बेटा समझा।

रणवीर ने आज उसका दिल तोड़ दिया। गाँव के मनुष्यों के सामने उसकी नाक काट दी। वह पाँच सौ रुपये छोड़ पाँच हज़ार रुपये दान कर देता, परन्तु उसे बतला तो देता। भला वह इनकार करने लगा था? आख़िर जायदाद का वह अकेला तो स्वामी नहीं। रणवीर आधे का हिस्सेदार है। फिर हिस्सा न भी हो, उसे वैसे ही प्रत्येक वस्तु का अधिकार है। वह कुछ उठाकर दे दे। आख़िर उसमें है ही क्या? इसको पहिले बतला तो देता। आज तक उसे ऐसा कटु अनुभव न हुआ था। आज तक उसने ऐसा अपमान न सहा था। गाँव भर के सामने उसका इतना नीचा सिर न हुआ था। आख़िर लोग क्या सोचते होंगे कि भाइयों में फूट पड़ गई है। जो घर सदा एक रहा आज उसके दो टुकड़े हो गये हैं। परन्तु रणवीर ने ऐसा क्यों किया? क्या उसे किसी ने उकसाया, या उसने स्वयं ही ऐसा किया। यह तो नहीं कि किसी दूसरे मनुष्य ने उसे उभारा हो, और ऐसा करने पर विवश किया हो। आख़िर मनुष्य तो दूसरों का घर फूँक कर तमाशा देखा ही करते हैं। परन्तु वह कौन मनुष्य हो सकता है? इसकी तो गाँव में किसी से भी दुश्मनी नहीं, उसने किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा। मेरे मुँह पर आज तक किसी ने मुझे तीखे वचन कहने का साहस नहीं किया। पीठ-पीछे भी मैंने अपने विरुद्ध किसी को कुछ कहते नहीं सुना। हमारे पिता ने किसी से सम्बन्ध नहीं बिगाड़े। फिर किसी को क्या आवश्यकता पड़ी कि हमारे विरुद्ध ऐसा करता। भगतसिंह ने यह सब क्यों किया? उसने क्या अच्छी अच्छी

बातें कीं। उसने गरीबों के काज की ऐसी वकालत की जैसी कोई बड़ा राजनीतिज्ञ करे। उसने एक राजनीतिज्ञ की तरह एक निर्धन-फण्ड बनाया, और उसे सुन्दर उपाय से इकट्ठा किया। परन्तु रणवीर की तरफ़ से उसने क्यों इतने रुपये दिये? क्या रणवीर से वह पहिले ही बात कर चुका था? क्या यह सब खेल पहिले ही सोचा गया था? नहीं तो, उसने कैसे और क्यों पांच-सौ रुपये दे दिये? आखिर रणवीर को बिना सूचित किये उसे ऐसा करने का साहस ही कैसे हो सकता था? तो फिर रणवीर ने अपने बड़े भाई को यह बात क्यों नहीं बतलाई? जब सम्मिलित कुटुम्ब है, तो उसमें अपनी स्वेच्छा से बात करने का क्या प्रयोजन? क्या घर का अनुशासन कोई वस्तु नहीं? आज उसने अपनी इच्छा से पाँच सौ रुपये दिये हैं, कल पाँच हज़ार रुपये दे देगा। फिर किसी दिन घर को ही रहन रख देगा। इस बात को कौन सहन कर सकता है? फिर गाँव में बदनामी कितनी होती है? लोग दिल में सोचते होंगे कि इनके घर में फूट पड़ गई है। इस कारण छोटे भाई ने बड़े भाई से बिना पूछे यह उद्दण्डता की है। लोगों के लिये सम्भवतः आश्चर्य और हर्ष की भी बात हो कि कल सब गाँव के सामने छोटे भाई ने बड़े भाई का अपमान किया। फिर भगतसिंह को तो देखिये कि उसने बड़े भाई की उपस्थिति में छोटे को 'निर्धन-फण्ड' की कमेटी का प्रेसीडेन्ट चुना। जैसे वह स्वयं जीवित ही न था। फिर अगर ऐसा करना ही था तो कम-से-कम उसे पूर्व सूचित कर देता ताकि वह इस

अपमान से बचने के लिये मीटिंग में ही न जाता। शायद यह भगतसिंह और रणवीर के वीच उसके विरुद्ध षड्यन्त्र है। परन्तु भगतसिंह को ऐसा करने की क्या आवश्यकता पड़ी? शायद कोई पुराना बदला ले रहा हो, बदला? कौन सा बदला? क्या बदला? क्या उसने भगतसिंह को कभी हानि पहुँचाई है? हानि, नहीं तो। वह तो आरम्भ ही से उसके गुणों का ग्राहक है, और इस कारण से उसने हमेशा उसकी इज्जत की। भला कौनसा ऐसा काम है, जिसमें उसने गाँव के सब आदमियों से पहिले भगतसिंह को किसी कमेटी इत्यादि में न लिया हो? भला आज तक कब, गाँव के किसी विषय में भी उसने उससे बिना पूछे कोई काम किया हो? तो फिर भगतसिंह को ऐसा करने की क्या आवश्यकता थी? यह तो नहीं कि वह उनसे ईर्ष्या करता हो, माल, सम्पत्ति, सन्तान, जायदाद, सम्मान, प्रतिष्ठा, गौरव ये चीजें मनुष्य और मनुष्यों के बीच दीवारें बनकर खड़ी हो जाती हैं। इनमें ईर्ष्या की अग्नि प्रज्ज्वलित करके, इन्हें एक दूसरे के विरुद्ध भड़का देती है। यही बातें मनुष्यों में आपसी फूट का कारण हैं, और ये ही अन्तर राष्ट्रीय संग्राम का कारण है। परन्तु भगतसिंह को ईर्ष्या की क्या आवश्यकता? इसका पिता बहुत सी भूमि का स्वामी था। अपने स्वभाव की दासता के कारण वह भूमि से हाथ धो बैठा। परन्तु इसमें उसके अतिरिक्त किसी का क्या अपराध था? फिर भगतसिंह को कमी ही किस बात की है? इसके पास रुपया है, जमीन है, और सब कुछ है। वह

और उसकी पत्नी है। उसे किसी बात का लालच नहीं। अगर लालच हो, तो वह इस प्रकार दान न करता फिरे। ग़रीबों को दान, इस सोसाइटी को दान, उसको दान, जो मनुष्य स्वयं दूसरों को दान करता फिरे, वह दूसरों की सम्पत्ति से ईर्ष्या क्यों करेगा? नहीं, उसका अनुभव ग़लत है। भगतसिंह को उसके विरुद्ध कोई शिकायत न थी। इसलिये भगतसिंह को उसके विरुद्ध कुछ करने की आवश्यकता ही नहीं। तो फिर उसने रणवीर की तरफ़ से जो कहा था वह केवल रणवीर के कहने पर था। बड़ा आश्चर्य है मैं तो पागल हो रहा हूँ, सोच ही नहीं सकता।

"कोई है?" उसने आवाज़ दी।

"जी हुज़ूर" नौकर भागता हुआ आया।

"पानी का गिलास लाओ"

"जी हुज़ूर"।

"सुनो" उसने उसे पीछे से आवाज़ दी और जब वह लौट आया तो बोला। "बाई जी क्या करती हैं?" और इसके पूर्व कि वह उत्तर देता, बोला:—

"उन्हें यहाँ भेज दो" और जब चला गया तो कहने लगे– "कहाँ जा रहे हो?"

"बाई जी को बुलाने।"

"बाई जी का बच्चा" वह चिल्लाकर बोला "सुनता नहीं, तुम से पानी माँगा है? और अभी तू यहीं खड़ा है? क्या इन लोगों ने परेशान कर रखा है। जीवन है या नरक। आपत्ति ही

आपत्ति। चला जा मेरे सामने से।" वह गरज कर बोले।

परन्तु उनके मस्तिष्क में भगतसिंह, रणवीर, 'गरीब-फण्ड' और पञ्चायत गूंज रही थी। आज तक वह इतना परेशान कभी न हुआ था। जीवन की किसी घटना ने उसके लिये पेचीदगी पैदा न की थी। उसके लिये जीवन एक खेल रहा था। उसने हर काम को बड़ी सुन्दरता और सरलता से किया। जीवन उसे कभी बोझ मालूम न हुआ। व्यापार में आपत्तियाँ आईं, परन्तु उसने उन्हें आपत्तियाँ न समझा। उनको खेल समझ कर उनपर विजय पाता रहा। बाप के जीवन में ही उसने व्यापार सँभाल लिया था, अतएव बाद में कोई आपत्ति न हुई। फिर व्यापार के अतिरिक्त वह दूसरे काम भी करता। भूमि की देख-भाल, स्कूल और अस्पताल का प्रबन्ध, ये सब उसके कन्धों पर ही था। परन्तु वह अपने कंधों को मज़बूत समझता था, और उसके कन्धे बोझ से कभी न थकते। परन्तु आज इसके लिये न केवल व्यापार, भूमि, स्कूल, अस्पताल असहनीय बोझ बन गये थे, अपितु अपना जीवन भी। जिस भाई से वह इतना प्रेम करता था, जिसके आराम के लिये सदैव चिन्तित रहता था, जिसके लिये सुविधा की प्रत्येक वस्तु एकत्रित करना और जिसके लिये बिना कुछ कहे जीवन की सम्पूर्ण आवश्यकताएँ जुटाना वह अपना विशेष कर्तव्य समझता था, आज उस भाई ने अपने एक काम से उसकी सब खुशियों को लूट लिया, और इसकी सम्पूर्ण

आशाओं पर पानी फेर दिया। जिसे वह भाई नहीं बेटा समझता था, उसने आज भरी सभा में उसका अपमान किया। जो शागिर्द पेशा खानदान, अमानतपुर ही में नहीं अपितु आस-पास अपनी धनाढ्यता, शान, व्यापार, उदारता और एकता के लिये प्रसिद्ध था, आज लोगों की दृष्टि में इतना गिर गया और वह केवल उस मनुष्य के कारण जिसे वह छोटा भाई नहीं बेटा समझता है, नहीं बेटे से भी अधिक और, फिर उसने यह सब अकारण किया। यदि उसे मेरे या अपनी भावज के विरुद्ध कोई शिकायत थी तो मुझ से कहा होता। मैं उसके विरुद्ध कटु-वचन बोलने वाले को जीवित भूमि में गाड़ देता, चाहे वह पत्नी ही हो या पुत्र। परन्तु उसने मुझे सफ़ाई का अवसर दिये बिना मुझ पर वार कर दिया। परन्तु यह तो हो सकता है वह निरापराध हो! निरपराध! कभी नहीं। वह निरपराध तब होता जब वह भरी सभा में भगतसिंह की बात का विरोध करता और अपने नाम के बजाय मेरा नाम प्रस्तावित करता। मैं उसी समय उठ कर कह देता कि नहीं यह सब मेरी अनुमति से हो रहा है, और चन्दे की राशि पाँच सौ रुपया नहीं एक हजार रुपये हैं, और रणवीर ही कमेटी का सभापति होगा। यदि मैं ऐसा न करता तो मैं अपराधी था, दोषी था। परन्तु अब तो स्पष्ट रूप से उसका अपराध है, केवल उसका। भगतसिंह उसकी इच्छा के विपरीत कुछ नहीं कर सकता। उसको इतना साहस ही नहीं हो सकता था। भगतसिंह केवल उसका एजेन्ट था, और कुछ नहीं।

"क्या सोच रहे हैं ?" नीलिमा ने अन्दर आकर पूछा।

"अपना सिर" उसने क्रोध से कहा।

"भला ऐसा क्यों कहते हैं ?"

"तो तुम्हारा सिर।"

"कुछ बात भी हो................।"

"तुम्हारे लिए कुछ बात ही नहीं। सत्यानाश करके रख दिया और अभी बात ही नहीं।"

"मैंने सत्यानाश कर दिया ?" वह हैरानी से बोली।

"और किसने ? तुम औरतों ने किस घर को नहीं उजाड़ा ? आज तक जितने घर नष्ट हुए उनमें केवल स्त्री का हाथ रहा। तुम लोग सम्मिलित कुटुम्ब के टुकड़े करने, बसे घर को उजाड़ने, भाइयों में फूट डालने और उन्हें एक दूसरे के वैरी बनाने में अधिक चतुर हो।"

"आज आपको क्या हो गया है ?" वह एकदम चकरा-सी गई।

"पागल हो गया हूँ।" वह दाँत पीस कर बोला।

"ऐसा मत कहिये" वह घबरा कर बोली।

"और कैसे कहूँ" वह चिल्ला उठा "अब कुछ और कहने की कसर बाक़ी रह गई है ?"

"लेकिन पता भी तो लगे कि बात क्या है ?" उसने नम्रता से पूछा।

"बात ? तुम्हें अभी बात ही का पता नहीं। आज गाँव में

घर-घर में, और बात ही क्या है ? और तुम बात पूछती हो ?"

"परन्तु इसमें तो मेरा कोई अपराध नहीं।"

"तो और किसका है ? मेरा नहीं, तुम्हारा नहीं उसका नहीं, तो क्या देवताओं का है ?"

"हो सकता है……………।"

"बकवास न करो" वह चिल्ला ही तो उठा। "आई है मुझे धर्म पर लेक्चर देने ! अगर तुम स्त्रियाँ इस छोटी सी जबान को वश में रखा करो तो घरों में न कोई फिसाद हों, न कोई घटनाएँ, न भाइयों में फूट पड़े, न घरों के बटवारे हों।"

"परन्तु आपने सारी बात बिना सुने ही मुझे दोषी ठहराना आरम्भ कर दिया। आप यह तो मालूम करें कि लोग क्या कह रहे हैं ?"

"मैं जानता हूँ कि लोग क्या कह रहे हैं। वे कह रहे हैं, कि आज रणवीर ने मनोहर का अपमान कर दिया है, भरी सभा में। गाँव के सारे मनुष्यों के सामने, उसके मुँह पर जूता दे मारा और यह कि अब इस खानदान में फूट पड़ गई है।"

"और वे यह भी कहते हैं कि रणवीर कल को घर का और दूकान का और हर चीज का बँटवारा करायेगा।"

"और मेरे शरीर का भी। आधा तुम लेना और आधा वह ले लेगा।"

"न जाने आप मुझे बीच में क्यों घसीट रहे हैं।" वह रो कर बोली।

"इन आँसुओं पर मुझे रहम नहीं, क्रोध आता है। बन्द करो इन आँसुओं को। जब और कुछ नहीं बन पड़ा तो बहाने बनाने लगी।"

"आप तो न जाने आज मेरे पीछे क्यों हाथ धोकर पड़ गए हैं।" आँसू टप-टप गिर रहे थे।

"तो क्या रणवीर का दीवारों के साथ झगड़ा हुआ है?"

"वह तो जब से दौरे पर से आया है, खामोश-सा बैठा है। न जाने उसे बाहर किसने पट्टी पढ़ा दी कि वह शायद बँटवारे पर तुला हुआ है।"

"तुम से किसने कहा?"

"सारे गाँव में यही बातें हो रही हैं?"

"तुम से सारा गाँव कहने आया है?"

"कई औरतों ने मुझ से ऐसा कहा है।"

"औरतें! औरतें!" वह झुंझला कर बोला "हर मामले की जड़ में औरतें। न औरतें खतम हों न झगड़े। औरतों से किसने कहा?"

"सुषमा ने।"

"सुषमा कब से बाहर जाने लगी है?"

"अगर वह नहीं जाती तो औरतें उसके पास आती हैं।"

"कौन औरतें।"

"गाँव की और कहाँ की।"

"तो बात यहाँ तक बढ़ गई है। अब आम औरतें घर में

आने लगी हैं। क्यों न हो, मेरे बुरे दिनों के यही लक्षण हैं। तो उनको मना क्यों नहीं करती ?" वह क्रोध से हाँपता हुआ बोला।

"मैं बन्द करके कैसे जी सकती हूँ ?"

"मर तो सकती हो।" वह झुँझला कर बोला। "आखिर तुम्हारे जीने से कौन से काम ठीक हो रहे हैं, जो मरने से खराब हो जाएँगे।"

नीलिमा समझ गई कि उनसे बात करना व्यर्थ है। वे क्रोध में हैं और विवाद करने से क्रोध शान्त नहीं, भड़केगा। उसने वहाँ से खिसकने में ही भलाई समझी। 'राजो, राजो, राजो कहाँ हो ?" पुकारती हुई वह कमरे से बाहर निकल गई।

ग्यारहवाँ परिच्छेद

आज दिवाली है। गाँव में चहल-पहल है, रौनक़ है, ख़ुशी है। हर मनुष्य आज एक नई उमङ्ग में है। लोगों को दिवाली के महत्व का अधिक ध्यान नहीं। शायद इसकी महत्ता की उन्हें याद भी नहीं। रामचन्द्रजी की लङ्का विजय के पश्चात्, अयोध्या लौट कर आना तो लोगों को भूल गया है या इस बात का इन्हें कोई महत्व नहीं। इन्हें तो यह पता है कि आज प्रसन्नता का दिन है, भोग-विलास का दिन है, मनोविनोद का दिन है। आज का दिन काम के लिये नहीं, आराम के लिये है, और आराम का तात्पर्य चारपाई पर लेटना, या रजाई ओढ़ कर सोना नहीं, अपितु नये सुन्दर वस्त्र आभूषण पहिन कर, पेट भर कर मिठाई खाना और शोर मचाना है। भोग-विलास के बारे में लोगों के दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न हैं। महाजनों के अतिरिक्त दूसरे लोगों के लिये शराब पीने का मतलब विलास है। आज घर की नहीं ठेके

की शराब का दिन है। घर की तो वे पीते ही रहते हैं, जितनी मात्रा में, सस्ते भाव, किसी समय भी खरीदी जा सकती है। परन्तु ठेके की तो महँगे दामों मिलती है। और आज इनके पास दाम हैं। वे ठेके पर जाकर पिएँगे, गाएँगे, नाचेंगे और यदि आवश्यकता पड़ी तो एक दूसरे के सिर भी खोलेंगे। आम लोगों को जुआ खेलने का शौक है, और खेलें भी क्यों न! जो आज के दिन न खेलेगा वह गधे की योनि पायेगा, और गधा बनना कौन पसन्द करे? उस दोष से बचने के लिये यह आवश्यक था कि जुआ खेला जाय। कुछ मन-चले तो एक साल से इस अवसर की प्रतीक्षा में रहते हैं और दिवाली से कई दिन पूर्व जुआ खेलना आरम्भ कर देते हैं। उनके मन में अमीर बनने की धुन सवार होती है। हर एक का विचार होता है कि इस वर्ष लक्ष्मी देवी उस पर प्रसन्न होगी और वह धनाढ्य हो जायगा। कुछ केवल गधे की बात से डरते हैं, और एक निर्धारित द्रव्य पास लेकर बैठते हैं, इससे अधिक वह एक पैसे का दाँव नहीं लगाते। यदि इसकी सहायता से कुछ पास आजाए तो कोई आपत्ति नहीं। स्त्रियाँ प्रायः पैसे लगाकर खेलने के विरुद्ध होती हैं। परन्तु गधे की बात का तो उन्हें भी ध्यान होता है, इसलिये वे कौड़ियों से ही खेलती हैं।

देखिये, बाज़ार में मिठाई की दुकानों पर कितनी रौनक़ है। अमानतपुर के एक ही लम्बे बाज़ार में आज एक नहीं, चार दूकानें खुली हुई हैं। रामलाल की दुकान तो पुरानी है, और

सदा से चलती आई है। परन्तु यदि सारी कमाई वह ले जाय? इतने पैसे एक आदमी को कमाने की कैसे आज्ञा दी जा सकती थी? फिर अमानतपुर में? रामलाल के विरोधियों ने जिसमें लगभग सारा गाँव सम्मिलित था, तुलसीराम और मंगलसिंह को भी दिवाली के अवसर पर मिठाई की दूकान खोलने की शिक्षा दी। परन्तु उन दोनों के पास पैसे न थे। वाह! यह भी कोई चिन्ता की बात है? लोगों ने सलाह दी कि जब इतनी कमाई की आशा हो तो फिर हानि के लिये भी तैयार रहना चाहिये, यद्यपि हानि की एक रत्ती भी सम्भावना नहीं। इस अवसर पर यदि एक दो गहने भी बेचने पड़ें तो कोई हर्ज नहीं। अतएव दोनों व्यापारी घर गये। एक ने पत्नी को और दूसरे ने माँ को (क्योंकि इसकी अभी शादी नहीं हुई थी) बहुत मारा पीटा, और फिर उनसे गहने लेकर महाजनों के पास गये, उन्हें गिरवी रख पैसे उधार लिये। उन पैसों का घी, चीनी, मैदा आदि खरीदा गया, और रामलाल की दूकान के मुक़ाबले में लड्डू और जलेबियों की दूकान खुल गई। रामलाल ने दोनों से कहा कि एक ही भाव कर लेना चाहिये, ताकि झगड़ा ही न रहे और प्रतियोगिता का अवसर ही न आये। उन दोनों ने अविलम्ब इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। अब न तो तुलसीराम और मङ्गलसिंह के बाप-दादा ने और न कभी इन्होंने खुद मिठाई बनाई थी, हाँ खाई अवश्य थी। परन्तु ऐसा तो कोई विशेष नियम नहीं कि खाने वाला बनाना भी जानता हो। इसलिये उन्होंने दूसरे व्यक्तियों की

सहायता चाही और कच्चे हलवाइयों को पकड़ लाये। अब यदि 'नीम हकीम खतरए जान' होता है तो कच्चा हलवाई दूकान के लिये हानि का कारण होता है, क्यों कि मिठाई तो सब बन जाती है, परन्तु बिकती बिलकुल नहीं, और यदि भाग्यवश बिक जाय तो लागत से चौथाई कीमत पर बिकती है। वह भी यदि ग्राहकों की हाथा-जोड़ी या अनुनय-विनय की जाय। अब तुलसी और मङ्गल के साथ लगभग यही हुआ। जब भाव एक जैसे निश्चित हो गये तो भला ग्राहकों का क्या सिर फिरा था कि राम लाल की दूकान छोड़ इन नये-सीखड़ों के हाथों पड़ते? अतएव अढ़ाई रुपये सेर पर सब मिठाई उसकी उठने लगी। अब पड़ी चिन्ता मङ्गल और तुलसी को और सलाह करने लगे, अपने सहयोगी मित्रों से। उन्होंने राय दी कि भाव सवा दो रुपये कर देना चाहिये। उन्होंने रामलाल की शर्तों का हवाला दिया। "शर्त"? वे विचित्र हँसी हँसकर बोले। "तुम भी निरे उल्लू हो। लड़ाई और व्यापार में (गाँव वाले प्रेम के स्थान पर व्यापार को महत्व देते हैं) सब कुछ उचित होता है, और शर्तों को कुछ नहीं गिना जाता।" फिर उन दिनों महायुद्ध जोरों पर था, और लोग जर्मनों और अंग्रेजों के वायदे सुन सुन कर तङ्ग आ चुके थे। मङ्गल और तुलसी ने इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार किया, और भाव गिरने की घोषणा कर दी। एकदम सारे गाँव में ढिंढोरा पिट गया कि "अमानतपुर के बड़े प्रसिद्ध हलवाईयों, मङ्गल और तुलसी, ने शुद्ध देशी खाँड और विदेशी घी की मिठाई सवा दो

रुपये सेर बेचने का फैसला कर लिया है।" ऐसा प्रतीत होता था कि ढिंढोरे वाला असली शब्दों को भूल गया था, परन्तु लोगों के लिए इन शब्दों की कोई विशेषता न थी। उन्होंने 'मङ्गल.... तुलसी....मिठाई....और सवा दो रुपये, ये चार शब्द सुने, और उनकी दूकान की ओर जाने लगे। रामलाल ने विरोध किया कि यह कार्य बचनों का उल्लंघन है। लोगों ने इन दोनों से यह कहलाया कि बचनों का अभिप्राय यह नहीं कि उन दोनों की मिठाई बिके ही न। ऐसे समझौते को सलाम–'सलाम तो सलाम सही', इन शब्दों के साथ रामलाल दूकान पर वापिस आया। उसकी मिठाई काफी बिक चुकी थी, और उसने कमी पूरी करली थी। अब उसके दिल में दूसरों की हँसी उड़ाने का विचार उत्पन्न हुआ। ज्यों ही लोगों ने उन दो दूकानों से मिठाई तुलवानी आरम्भ की, और इसके पूर्व कि वे पैसे चुकाते, उसने दूकान पर खड़े होकर ऊँचे स्वर से कहना शुरू किया:—

"चलो, बढ़िया मिठाई पौने दो रुपये सेर"। लोगों ने तुलसी और मङ्गल की खरीदी हुई मिठाई को वहीं पटका और सारे के सारे उसकी दूकान पर आने लगे। वह चालाक था, पैसे पहिले वसूल करता था और मिठाई बाद में तौलता था। उसने दो तोलने वाले रखे थे। वे जल्दी २ तोलने लगे। उधर फिर कान्फ्रेंस हुई, और बड़े विवाद के पश्चात्, उन्होंने भाव डेढ़ रुपये सेर करने की घोषणा की। उधर उसने सवा रुपये तो फिर इन्होंने एक रुपया कर दी। अब रामलाल मौन रहा। लोग एक रुपये के भाव पर

मङ्गल और तुलसी से मिठाई खरीदने लगे। वह हाथों हाथ बिक गई। जब उनकी दूकान खाली हो गई, रामलाल ने फिर ढाई रुपये का भाव कर दिया। अब तो उसका सर्वाधिकार था।

तुलसी और मङ्गल दोनों को तीन सौ रुपये का घाटा सहना पड़ा। उन्होंने बाज़ार में, अपने सलाहकारों पर चुन-चुन कर गालियों की वर्षा शुरू करदी। वे दोनों काफ़ी अभ्यस्त थे, लगातार दो घण्टे तक गालियाँ बकते रहे, और उन्होंने साथ ही कई नवीन गालियों का आविष्कार किया, जिसके कारण गाँव के शब्द-कोष में वृद्धि हुई और दूसरों के लिये आसानी।

लेकिन इस खेल से बढ़कर किसानों का खेल था। लम्बी बाँहों की कमीजों, सफेद लट्ठे के तहमद और रङ्गीन पगड़ियाँ पहिने, नुकीले लाल रङ्ग के गाँव के बने हुए जूते पहिने, कन्धों पर लम्बे, दोनों तरफ़ लटकते हुए, खद्दर के साफे रखे, हाथों में अपनी लम्बाई से ड्योढ़ी, एक ओर से लोहे में मढ़ी, लाठियाँ लिये, ये लोग पास वाले गाँव से ठेके की शराब लेने गये। गाँव के पास आकर बोतलें खाली कीं। जो अभ्यासी थे, उन्हें तो न चढ़ सकी, दूसरे नशे में चूर होकर धूल में लोटने लगे। इन शराब में मस्त लोगों को, दूसरे आदमियों ने सम्हाला और ऊँची आवाज़ से गाते हुए गाँव की तरफ़ चले।

सौभाग्यवश इस वर्ष लड़ाई न हुई, नहीं तो दो चार सिर फटना तो साधारण सी बात थी।

बच्चों को पटाखे चलाने में वह प्रसन्नता होती है, जो बड़ों को

शराब पीने या जुआ खेलने में। परन्तु उनकी दिवाली वस्तुतः रात्रि को मनाई जाती है जब कि इन्हें मन भर कर मिठाई मिलती है और जब वे मशालें और मोमबत्तियाँ जलाते हैं।

उधर सारे ग्राम में दिवाली मनाई जारही थी और दीप-मालिका जगमगा रही थी, उधर शागिर्द-पेशा खानदान के घर नया ही गुल खिला हुआ था।

अगले दिन नीलिमा जब प्रातः उठी, तो उसका चेहरा तब भी कुम्हलाया हुआ था। कल रात वह अच्छी तरह सो भी न सकी थी। उसके हृदय में अपने पति के व्यवहार पर आश्चर्य होरहा था। उनके मत से सारा अपराध उसका ही था। मैंने ही रणवीर या सुषमा से कुछ कहा, इसी कारण बात इतनी बढ़ गई। क्या यह अत्याचार नहीं ? यदि यह पूर्ण रूप से अन्याय नहीं तो क्या है ? क्या यह बात रणवीर ने उनसे कही है ? बड़ा झूठा और मक्कार है। मैंने उससे अच्छी तरह बात भी नहीं की। हो सकता है सुषमा ने उससे कुछ कहा हो। परन्तु सुषमा को क्या पड़ी थी, उसके कान में विष घोलने की। आख़िर कोई कारण भी तो होना चाहिये। क्या उसने स्वयं किसी से तो बात नहीं की ? याद नहीं आता। हाँ, एक दिन मेहरी से साधारण बात की थी कि मनुष्य बेकार और खाली बैठने के बजाय कुछ करता रहे तो स्वास्थ्य ठीक रहता है। परन्तु मैंने वह सुषमा के विषय में तो कहा नहीं था। हो सकता है कि महरी ने उससे जा कर कह दिया हो कि मैं ऐसा कह रही हूँ और उसके बारे में कह

रही हूँ। मेहरी ने नमक-मिर्च लगाकर, सुषमा से बात की हो और सुषमा ने रङ्ग चढ़ा कर, पति से। परन्तु क्या इतनी सी बात से रुष्ट हो गईं। यह तो कोई बात नहीं। एक बात अवश्य है कि कई दिनों से सुषमा चुप-चुप रहती है, बोलती भी कम है। अपने कमरे से भी कम बाहर आती है। और वह गाँव की औरतें भी तो! ईश्वर इनसे बचाए। कितनी मक्कार और चुग़लख़ोर होती हैं। इसी कारण मैं उनके पास अधिक जाती-आती नहीं। उनसे मिलती-जुलती नहीं। ये गाँव की औरतें सारे दिन दो ही काम करती हैं, खाना-पीना, और चुग़ली। बदज़ात कहीं की! वह कौन है बाहर? देखूं तो ज़रा।

वह बाहर आई। वहाँ मेहरी थी। उसने उसे संकेत से अन्दर बुलाया, बोली।

"मेहरी! तू छोटी बहू के पास चुग़लियाँ लगाती फ़िरती है............।"

"बीबी जी मैं! भगवान् जानता है, मैंने तो उनसे कोई बात तक नहीं की।"

"तो फिर उन्हें कौन बातें बताता है?"

"बीबी जी, होगी कोई बदज़ात! मुझे क्या पड़ी कि मैं आपकी बात करूँ। क्या मैं इतनी पागल हूँ कि अपने पाँव पर आप ही कुल्हाड़ी मारूँ। आख़िर मेरा निर्वाह आपके ही घर पर तो है। मैं आपकी बात तो कभी बाहर ले जाती नहीं, हाँ, आप तक बातें ले अवश्य आती हूँ।"

"आज क्या बात लाई है ?"

"ना बीबी जी, आज मैं कुछ न बोलूंगी। फिर छोटी बहू कहेंगी कि उनकी बातें फैलाती फिरती हूँ। ना बाबा।"

"क्या छोटी बहू की बात है ?" वह धीरे से बोली।

"बीबी जी क्या बतलाऊँ ? राम दया करे।"

"परन्तु कुछ पता भी तो चले।"

"सारे गाँव में यह बात फैल गई है कि दोनों भाइयों में झगड़ा हो गया है, और घर का बँटवारा हो रहा है।"

"बँटवारा ! घर का ! राम ! किसने कहा है ?"

"और किसने बीबी जी ?" वह धीरे से बोली "और दूसरा कहने वाला ही कौन है ? दोनों पति-पत्नी इस बात पर तुले बैठे हैं कि घर को बाँट कर ही दम लेंगे।"

"हे राम ! परन्तु इसका कारण क्या है ?"

"कारण ! कारण क्या पत्थर होगा। किसी के सीखे सिखाये कह रहे हैं।"

"कौन सिखाता है इन्हें ?"

"कौन नहीं सिखाता ? बीबी जी ! यह अमानतपुर है। यहाँ के लोगों से भगवान् बचाये। जो व्यक्ति घोड़े से गधा बना सकते हैं, वे और क्या नहीं कर सकते ? आप के घर पर सब के दाँत लगे हैं। कौन है जो इस घर में लड़ाई झगड़ा देखना नहीं चाहता ?"

"परन्तु हमने तो किसी का कुछ नहीं बिगाड़ा।"

"इससे क्या होता है ?" मेहरी बोली। "यह बात भला कम है कि आपका घर सबसे बढ़-चढ़कर है। आपके पास पैसा है। लोगों को यह एक आँख भी नहीं भाता।"

"क्या सारे गाँव में यही बातें हो रही हैं ?"

"बीबी जी, ऐसा लगता है कि गाँव में और कोई बात ही करने की नहीं रह गई। बहुत बड़ी बड़ी बातें हो रही हैं। मैंने तो और भी सुना है कि............।"

"कहो, कहो क्या सुना है ?"

"कि रणवीर बाबू ने किसी आदमी को भेजकर नगर से किसी वकील को भी बुलवाया है।"

"हे राम! यह मैं क्या सुन रही हूँ ? समझ में नहीं आता, क्या हो गया और ऐसा क्यों हो रहा है ?"

"बीबी जी उनके दिल में शक पैदा हो गया है।"

"शक ! कैसा शक ?"

"कि बड़े बाबू बहुत जल्द सारी जायदाद अपने नाम करवाने वाले हैं।"

"क्या गाँव वाले ऐसा कह रहे हैं ?"

"बीबी जी, गाँव वाले तभी कहते हैं जब बात कहीं से चले। बिना बात के बड़ी बात नहीं निकलती।" फिर बहुत धीरे से बोली, "छोटी बीबी जी अलग होने के लिए बेचैन हैं।"

"परन्तु क्यों ?" बीबी ने उसी तरह धीरे से पूछा।

"राम जाने, परन्तु यह सुना है कि वह आपका बड़प्पन

सहने को तैयार नहीं।"

"यह बात है! जैसे में सचमुच बड़प्पन दिखाती हूँ।"

"बीबी, राम झूठ न बुलवाए, आप के विषय में बात कहना महापाप है। सारा गाँव जानता है कि आप उसे पुत्री के समान रखती हैं।"

"परन्तु फिर गाँव यह क्यों मानता है कि मैं बड़प्पन दिखाती हूँ?"

"बीबी! शरारती लोग ऐसा फैला रहे हैं।"

"तो तुम जाकर उनकी बात को क्यों नहीं काटतीं?"

"मैं! बीबी क्या बतलाऊँ कि मैंने आपके बारे में उनसे क्या क्या कहा है? और तो और रामलाल महाजन की मेहरी निगोड़ी करतारी के साथ तो कल मेरी झड़प भी हो गई।" फिर बोली "अच्छा अब मैं चलती हूँ। कई घरों का पानी पड़ा है।"

उसके जाने के पश्चात् नीलिमा सारी बात ताड़ गई। उसने पिछली घटना पर दृष्टि डाली तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि कुछ शरारती लोगों ने सुषमा और रणवीर को सिखाया है कि वे शोर झगड़ा मचाएँ। परन्तु क्या वे बच्चे हैं? क्या वे स्वयं अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं कर सकते? क्या उन्हें अपने भले-बुरे का ज्ञान नहीं? लोग तो झगड़ा कराने का प्रयत्न करेंगे ही। परन्तु क्या इनका कोई उत्तरदायित्व नहीं? वैसे तो बड़ी चालाक बनी फिरती है। परन्तु यदि ये लोग अलग होना चाहते हैं, तो हो जायँ, हमारी इसमें हानि ही क्या है? मगर शोर और झगड़ा करने से क्या

लाभ ? जो काम सरलता से हो सकता है, उसमें झगड़े की क्या आवश्यकता ? देखो ना वकील को बुलवाया है। हे राम ! अब क्या होगा ? क्या हमारे घर की सब जगह बदनामी होगी ? क्या हमारी इज़्ज़त पर पानी फिर जायगा ?

"बीबी जी ! राम राम।"

"कौन है ? सुन्दरी ?"

"हाँ। महारानी जी। मैं आपकी मेहतरानी हूँ।"

वह बाहर गई और भङ्गन से बोली।

"कहो सुन्दरी ! क्या समाचार है ?"

"महारानी जी, ठीक ही है।"

"इसका मतलब कि ठीक नहीं।"

"महारानी जी ! ठीक क्या पत्थर हो, कलियुग में ठीक कैसे हो सकता है। मुँह काला हो, इन भङ्गनों का, इधर की उधर बातें करती फिरती हैं। अभी चम्पा हरामजादी का मुझ से झगड़ा हो गया। हमारे मुहल्ले में खड़ी आपके घर की बात कर रही थी, और जो मुँह में आए कह रही थी। मैंने उसे खरी खरी सुनाई। अरी टके की जबान और इस तरह चलाती फिरती है। क्या तू और क्या तेरी औक़ात ? छोटे मुँह बड़ी बात। तुझे बड़े आदमियों के बारे में मुँह खोलते लाज नहीं आती ?"

"परन्तु वह क्या कह रही थी ?"

"महारानी जी ! जो मुँह में आए बक रही थी। आपके बारे में, बड़े बाबू के बारे में, आपके घर के बारे में। और कह रही थी

कि सारे झगड़े में आप दोनों का अपराध है।"

"परन्तु कौन सा झगड़ा ?"

"महारानी जी, क्या जानूं ? कमजात कह रही थी कि सारा गाँव झगड़े की बातें केह रहा है।"

"कैसी बातें ?"

"यही कि छोटे भैया ने बड़े बाबू का भरी सभा में अपमान किया। अब वे बँटवारा कराएंगे, और यदि न हुआ तो मुकद्दमा चलाएँगे। उन्होंने मुकद्दमे के लिये वकील को भी बुलवाया है। जब उसने ऐसा कहा तो मैंने झाड़ू उठाई कि उसके मुँह पर दे मारूं, परन्तु मेरे भाई ने मुझे पकड़ लिया। नहीं तो कलजुगन का मुंह झुलस देती। महारानी जी! भगवान् इस नीच जात से बचाए।" और वह अपना काम करने चली गई।

अब नीलिमा को विश्वास हो गया कि मामला अधिक गम्भीर है और उलझ गया है। परन्तु मामला ही क्या है ? अब तक यह बात समझ में नहीं आई कि बीमारी की जड़ क्या है ? अब तक घर में स्वर्ग बस रहा था। किस प्रकार मिल जुल कर प्रेम से रह रहे थे। कोई झगड़ा न था। कोई बात न थी। वह सुषमा को बेटी की तरह मानती थी और रणवीर को बेटे की तरह। वे भी दोनों उन दोनों को ऐसा ही प्रेम करते थे। हम सोचते थे कि हमारे घर में सदा ही स्वर्ग का वातावरण बना रहेगा। कोई कह ही नहीं सकता था कि हम दो हो सकते हैं। परन्तु यह हुआ क्यों ? हो सकता है कि उसकी तरफ़ से या बाबू की तरफ़ से,

खेल या हँसी में, कोई बात कही गई हो। किन्तु उस बात का बतङ्गड़ बनाने से क्या लाभ ? उन्हें चाहिये था कि उस बात को वैसे ही निपटा लेते। वस्तुत: रणवीर के दौरे पर से लौटने के बाद ही यह सब झगड़ा खड़ा हुआ है, और सुषमा ने उसके हृदय में ग़लतफ़हमी पैदा की है। रणवीर को सन्देह हो गया है कि उसे अधिकार से वञ्चित किया जा रहा है। अगर सारा झगड़ा सुषमा ने खड़ा किया है, वही उसे दूर भी कर सकती है। ऐसी परिस्थिति में उचित प्रतीत होता है कि सुषमा के पास जाकर इस झगड़े को निपटाने की प्रार्थना करूँ। परन्तु क्या मैं जाऊँ उस मूर्ख स्त्री के पास, जिसने यह तूफ़ान खड़ा किया है ? क्या आवश्यकता पड़ी है ? तो फिर किसे पड़ी है ? यदि वह मूर्ख है तो मैं भी मूर्ख क्यों बनूँ ? मूर्ख पर क्रोध करना तो और भी नादानी है। इसके स्थान पर उसे सहानुभूति एवं दया की अतीव आवश्यकता है। फिर वह आयु में भी छोटी है, और छोटों से यदि ऐसा अपराध हो भी जाय तो उन्हें केवल क्षमा करने के और उपाय ही क्या है ? तो उचित यह है कि वह उसके पास जाय और उसे समझाए।

वह चम्पा के कमरे की तरफ़ चली। ज्यों ही उसने कमरे में पैर रखना चाहा, उसके कान में आवाजें पड़ीं। बातें हो रही थीं। यह औरतों की आवाज़ थी। एक तो साफ़ सुषमा की थी, और दूसरी ? शायद बिशनो की। नहीं उसकी आवाज़ तो मोटी है। फिर यह कौन है ? कोई जानी पहचानी आवाज़ है। अरे !

यह तो धान्ती नायन है। परन्तु यहाँ सवेरे सवेरे नायन क्या करने आई है ? देखूँ ? द्वार बन्द था। उसने दरार में से देखने का प्रयत्न किया। परन्तु फिर रुक गई। यह तो बुरी बात है। इस प्रकार बातें सुनना अच्छा नहीं होता। परन्तु वह अपने को वश में न रख सकी। उसने देखा कि छोटी बहू, दूसरी तरफ़ मुंह किये मूढ़े पर बैठी है, और धान्ती नायन पीढ़े पर बैठी उसके बालों को तेल लगा रही है। बातें सुनने के लोभ को भी वह संवरण न कर सकी। उसने द्वार पर कान लगाया।

"अच्छा किया बहू जो आपने यह फैसला किया है।" नायन की आवाज़ उसके कान में पड़ी।

"आदमी तङ्ग आकर क्या नहीं करता ? बहू कह रही थी।

"बहू जी ! जो गड्ढा खोदता है, वह स्वयं उसमें गिरता है।"

"अभी गिरा नहीं, गिरेगा।"

"बहू ! फिर दूसरे की दासता भी क्या ? हमेशा अपने घर में नौकर बन कर रहो। जब से तुम आई हो तब से तो मैं यही देख रही हूँ। बड़ी बहू तुमसे भी वैसा ही व्यवहार करती हैं जैसे अपनी मेहरी या भङ्गन से। हर बात में रोब, हर बात में शान। आख़िर धीरज की भी कोई सीमा होती है।"

"धान्ती ! सच पूछो तो हमारी तरफ़ से कुछ नहीं हुआ। इनका स्वभाव तो ऐसा है कि चुप रहना अच्छा समझते हैं। परन्तु छोटे भाई ही हैं, नौकर तो नहीं। कब तक उनका अत्याचार सहन किया जा सकता है।"

"बहू ! काठ की हँडिया बार बार नहीं चढ़ती।" नायन बोली।

पीछे से कोई आवाज़ आई और बड़ी बहू काँप ही तो उठी। उसका हृदय इतनी तीव्रता से धड़कने लगा जैसे अभी बाहर गिर पड़ेगा। शायद रणवीर आगया क्या उसने मुझे यहाँ खड़ी हुई और इस प्रकार बातें सुनते हुए देख लिया ? फिर तो अन्धेर हो गया। वह दिल में क्या सोचेगा ? हा राम ! अब क्या होगा। बड़े बाबू को जब इस बात की ख़बर होगी, वे सिर ही पीट लेंगे, और बहुत दुःखी होंगे। यह मैंने क्या किया ? परन्तु कोई न था। उसका यह केवल भ्रम था। शायद कुत्ता बिल्ली हो। निश्चय ही कोई आदमी न था। उसने कोटि कोटि धन्यवाद दिया। तो क्या अन्दर जाय या वापिस। वह इसी उधेड़ बुन में थी कि द्वार खुला और धान्ती नायन अन्दर से निकली।

"बड़ी बहू, तुम यहाँ ? क्या तुमने सब बातें सुनलीं ? उसके मुंह से सहसा निकल पड़ा।

"कौन ? बड़ी............" सुषमा अन्दर से भागी आई "अच्छा तो यह बात है ? अब जासूसी भी होने लगी ?"

"जासूसी ! एँ ! सुषमा जासूसी कैसी ?" वह लज्जित-सी होकर बोली।

"क्यों न हो पहिले दूसरों को भेजती थीं अब स्वयं आने लगी हैं। कर लीजिये आप जो कुछ करना चाहती हैं ताकि किसी बात की कसर न रह जाय।" सुषमा बोली।

"बहू ! तुम तो विचित्र बातें करती हो............"

"हाँ, मैं तो विचित्र बातें करूँगी ही। आप लोग चोरी भी करें और चतुराई भी और विचित्र बनें हम !"

"कैसी चोरी और चतुराई ? तुम्हें ऐसा कहते लज्जा नहीं आती ?"

"लज्जा ? किस बात की ? लज्जा उन्हें आना चाहिये जो दूसरों के कमरे के पास आकर, किवाड़ से कान लगाकर उनकी बातें सुनें।"

"कौन बातें सुनता था, सुषमा ?" बड़ी बहू घबरा कर बोली।

"कौन सुनता था ! भूल भी गई ! अभी अभी धान्ती ने आपको बातें सुनते देखा, और फिर आप ही औरतों से कहती फिरती हैं कि सारा अपराध हमारा है, और हर बात में हमारी ज्यादती है। धान्ती, अब तुम साक्षी हो। तुमने आँखों से सब देखा है। अभी छोटे भैया आएँगे तो तुम्हें सारी बात बतलानी होगी।"

"परन्तु बहू............" धान्ती कहने लगी।

"बहू वहू कुछ नहीं" वह डटकर बोली। "तुम्हें सच्ची बात बतलानी होगी। झूठ की पोल खोलनी होगी और यह बतलाना होगा कि किस प्रकार बड़ी बहू दरवाजे से लगकर जासूसी कर रही थीं।"

"बहू........" बड़ी बहू हैरानी और घबराहट के मिले-जुले भाव से बोलीं। "ना जाने तुम आज कैसी बहकी बहकी बातें

कर रही हो ? मुझे क्या पड़ी कि जासूसी करूं। मैं तो केवल............।"

"मेरा हाल पूछने आई थीं ! हैं ना ?" सुषमा दोनों हाथ हवा में घुमाती हुई बोली। "तुम्हें मेरी चिन्ता है ! मैं मरने जा रही थी इसलिए तुम हाल पूछने आईं ! अब मुझे चङ्गी भली देख तुम्हें अफसोस हो रहा है !"

"कैसी उल्टी सीधी बातें कर रही हो, सुषमा। आज तुम लड़ने पर क्यों इतनी उत्सुक हो ?"

"लड़े मेरी जूती, मुझे क्या जो मैं लड़ूँ ? फिर क्या मैं तुम्हारे घर लड़ने गई थी ?"

"बहू ! मेरा तुम्हारा घर क्या ? सब घर तुम्हारा ही है।"

"मैं अब इन चापलूसियों में नहीं आने की। "सब तुम्हारा है, यह भी तुम्हारा है, वह भी तुम्हारा है," इन चिकनी-चुपड़ी कुटनियों की बातों में अब नहीं आने की।"

"कौन कुटनी ? मैं ?" बड़ी बहू डटकर बोलीं।

"तू !" सुषमा ने चिल्लाकर उत्तर दिया। "पहिले ही तूने क्या कम कर रखा है, जो अब जलाने आई है। जले पर नमक छिड़कना तो कोई तुमसे सीखे। मुँह में राम, बगल में छुरी। आई है बड़े खानदान की बेटी !"

"खबरदार यदि खानदान की बात कही।" बड़ी बहू ने डांट बताई।

"और खबरदार अगर तुमने भी बेकार बक-बक की। अगर

तुम बड़े घर की हो तो यहाँ कौन उधार माँगता है ? बड़े घर को जाने मेरी जूती।"

"बकवास बन्द कर, जूती की बच्ची, नहीं ……… ।"

"क्या जूती जूती लगा रखी है भाभी ?" पीछे से रणवीर ने आकर कहा।

"सुन लिया आपने ? आपकी माँ जैसी भाभी, अपनी लड़की की जूतियों से मरम्मत कर रही थी। अब तो आपको पूरा विश्वास हो गया है ना ? आप सदैव इनका पक्ष लेते थे, और मेरी बात को हँसी में उड़ा देते थे। बड़ी बहू, बड़े घर की बेटी, मुझे कितनी बड़ी पदवी दे रही है !" और उसकी आँखों से न जाने कहाँ से आँसू गिरने लगे। जैसे उसके पास आँसू निकालने का कोई यन्त्र था।

"परन्तु यह भी तो बतलाओ कि पहिले तुमने क्या कहा ?" भाभी बोलीं।

"भाभी ! यह बहुत बड़ा अनर्थ है। मुझे कभी विश्वास नहीं होता कि आप भी ऐसे कठोर वचन और गालियाँ दे सकती हैं। आज तो मैं हैरान रह गया।"

"अभी जब आप पूरी बात सुनेंगे तो आश्चर्य-चकित होंगे।" सुषमा बोली।

"रणवीर ! तुम भी बहू का पक्ष लेने लगे ? मेरी बात बिना सुने ही।"

"हाँ, अब ऐसे रोब डालिये" सुषमा व्यंग से बोली।

"शायद डर के मारे आपकी बात मान जाँय और कान से सुनी बात पर विश्वास करने से इनकार करदें।"

"बहू! आज ता तुम्हारी जबान बहुत चल रही है?" नीलिमा बोली।

"मेरी तो केवल जबान चल रही है, तुम्हारे तो कान भी चल रहे हैं। अभी अभी इन्हें दरवाजों से लगाकर हमारी बातें सुन रही थीं। जैसे हम चोर हैं और ये पुलिस वाले।"

"दरवाजे से कान? चोर? पुलिस? यह सब क्या है? मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा।"

"आपकी समझ में कैसे आयगा? आपकी समझ तो भाई और भावज के पास रहन पड़ी है। जब यह स्वतन्त्र होगी तो आपको पता चलेगा। जो कोई देखता है कमजोर को दबाता है।" और वह जोर जोर से रोने लगी। "कभी खानदान की बड़ाई का रोब है, कभी घर की मालकिन होने का, कभी ऊँची पदवी का। और फिर जूतियों का प्रभाव डाला जा रहा है। आप सँभालिये इस घर को मैं यहाँ एक मिनिट भी नहीं रुक सकती। मैं अब जाती हूँ मायके।" और वह बाहर की तरफ चली।

"ठहरो ठहरो" रणवीर चिल्ला उठा। "कहाँ जा रही हो?"

"मैं अपने माँ-बाप के पास जारही हूँ। जिन्होंने जन्म दिया, पाला पोसा, वे दो रोटियाँ भी दे सकते हैं। पहिले भी आखिर उनके घर पर थी। वहाँ रूखी सूखी है, परन्तु ये कड़वे बोल तो नहीं हैं।" और वह चिल्लाने लगी। "जब देखो झगड़ा। आज

आपने अपनी आँखों से देख लिया, नहीं तो शायद अपको विश्वास ही न आता। यहाँ तो प्रतिदिन यही दशा है। आपके जाने के पश्चात् जीना कठिन हो जाता है। अभी उन्हें पता था कि आप यहाँ हैं, तो जासूसी की जा रही थी; यदि बाद में विष भी घोल दें तो कौन जान सकता है ?"

"सुषमा ! तुझे क्या होगया है ?" नीलिमा ने मौन भङ्ग करते हुए कहा।

"अभी तक कुछ नहीं हुआ था भाभी ! परन्तु अब अवश्य होगा।" रणवीर बोला।

"रणवीर बेटा ! भला क्यों ऐसी बातें करते हो ?" भाभी बोली।

"मैं किसी का बेटा नहीं, कोई मेरा माँ-बाप नहीं। मेरे माँ बाप मर चुके हैं, अब मैं दुनियाँ में अकेला हूँ।"

"ऐसा न कहो भैया, तुम्हारे बड़े भैय्या तुम्हारे सिर पर बैठे हैं।" भाभी ने प्यार से कहा।

"मुझे किसी को सिर पर बिठाने की आवश्यकता नहीं। मेरा सिर व्यर्थ का बोझ नहीं उठा सकता।"

"आज न जाने तुम लोग कैसी बातें कर रहे हो।" भाभी विस्मय से बोलीं।

"तुम स्वयं अपने दिल पर हाथ रख कर पूछो।"

"हमारे दिल में तो कुछ भी नहीं।"

"बिलकुल साफ है!" वह व्यङ्ग से बोला। "दर्पण

की तरह !"

"परन्तु रणवीर बात क्या है ?"

"बात यह है कि हम घर से अलग हो रहे हैं।"

"अलग ?" भाभी घबराहट से बोली ।

"हाँ, हम अलग होंगे और आज ही ।"

"क्या पागल तो नहीं होगये, रणवीर !" मनोहर बाबू ने अन्दर क़दम रखते हुए कहा ।

"अब तक तो पागल थे, अब होश ठिकाने आरहे हैं।" रणवीर बोला।

"क्या बात होगई है ?" वह नीलिमा से बोले ।

"ये क्या बतलायेंगी, बड़े घर की बेटी हैं ! शानदार जूते पहिनती हैं ! अब वे ही जूते अपनी छोटी देवरानी पर प्रयोग कर रही थीं।" रणवीर व्यङ्ग से बोला ।

"नीलिमा ! क्या कह रहे हैं छोटे बाबू ?" मनोहर ने डांट कर कहा ।

"आज ये दोनों लड़ाई करने पर तुले हुए हैं, इसलिये जो जी में आता है कह रहे हैं ।"

"और आप बड़ी भोली हैं !" रणवीर मुँह बनाकर बोला। "अभी अभी देवरानी की जासूसी कर रहीं थीं, उनको जूते दिखा रहीं थीं। उन पर रोब डाल रहीं थीं और अब आप एकदम देवी बन गई हैं। ये त्रिया-चरित्र अब यहाँ नहीं चलेगा।"

"रणवीर ! ऐसा कहते तुम्हे शर्म नहीं आती ?" मनोहर

बाबू बोले ।

"मुझे या बड़ी भाभी को ?"

"तुझे ?"

"वाह ! यह खूब रही ! उलटा चोर कोतवाल को डांटे ।"

"कोतवाल को डांटे ! क्या सुबह-सुबह चोर और कोतवाल की रट लगा रखी है ?" मनोहर बाबू ने कहा ।

"आप से यही आशा थी ।" रणवीर बोला ।

"बच्चों की तरह बातें मत करो ।" फिर नीलिमा से बोले, "तुम भी कई बार बच्ची बन जाती हो । दीवाली के दिन भी क्या महाभारत छेड़कर बैठ गई । अगर वे नादान हैं तो क्या तुम भी मूर्ख हो ? त्योहार के दिन कोई हँसी-खेल, विनोद-प्रमोद की बात करो, मिठाई मँगवाओ, खाओ, खिलाओ । आज के दिन इस समय तक तो लोगों के घरों में मिठाई जानी आरम्भ हो जाती थी और आज अभी मँगवाई ही नहीं । गाँव वाले क्या कहेंगे ?"

"अब गाँव वाले और क्या कहेंगे ? वे जो कहना चाहते थे कह चुके ।"

"क्या कहचुके ? बकने दो उन्हें । गाँव क्या मैं दुनियाभर की परवा नहीं करता ।" मनोहर बाबू ने कहा ।

"आप न करें, सब ऐसा नहीं कर सकते ।" रणवीर बोला ।

"क्यों नहीं कर कसते ? आखिर हम क्या किसी से लेकर खाते हैं ? हम किसी के ऋणी नहीं । फिर यदि गाँव वाले कोई

व्यर्थ की बकवास करें, हम भला उसकी परवा क्यों करें ? फिर कुछ बात भी हो ?"

"आपके लिये न हो, परन्तु हमारे लिये बहुत है।" रणवीर ने उत्तर दिया।

"क्या बहुत है ?"

"बात।"

"कौनसी बात ?"

"कि अब हम इस घर में इकट्ठे नहीं रह सकते।"

"क्यों अब इस घर को क्या होगया है ?"

"अब इसमें दो नहीं समा सकते।"

"यदि दिल बड़े हों तो सब-कुछ समा सकता है।" बड़े बाबू बोले।

"इसी का तो रोना है। जब दिल ही न रहे तो समायें कैसे ?"

"अभी तुम क्रोध में बैठे हो, रणवीर। आओ आज दीवाली है, दीवाली मनाएं, उसके बाद सोच-विचार करेंगे।"

"अब सोच-विचार का समय चला गया।" वह बोला।

"अच्छा जो तुम कहोगे वह करेंगे, परन्तु आज दिवाली का त्योहार न बिगाड़ो।"

"हमारे दीवाली न मनाने से त्योहर नहीं बिगड़ सकता।"

"परन्तु हमारा त्योहार तो बिगड़ जायगा। दीवाली वाले दिन, पूजा न करना, और दिये न जलाना बड़ा अपशकुन

होता है ।"

"दीवाली के दिये !" रणवीर व्यङ्ग की हँसी हँस कर बोला। "दिल के दिये तो बुझे पड़े हैं। दीवाली के दियों को जलाने से क्या होगा ?"

"रणवीर ! तुम बहकी-बहकी बातें कर रहे हो, शायद तुम्हारी तबियत ठीक नहीं ।"

"अब तो यह बटवारे के बाद ही ठीक होगी ।"

"बटवारा, बटवारा, क्या रट लगा रखी है ?" नीलिमा झुँझला कर बोली। "शायद ये इसमें क्या समझे बैठे हैं ?"

"तो फिर करवा क्यों नहीं देतीं ?" रणवीर बोला ।

"यदि मेरा बस चले तो एक पल की भी देर न लगाऊँ ।"

"बकवास बन्द करो" मनोहर बाबू चिल्लाकर बोले। "तुम स्त्रियाँ मामले को सुलझाने के बजाय इन्हें और भी उलझा देती हो ।"

"इस कारण तो हम फन्दे से निकलना चाहते हैं ।" रणवीर बोला।

"क्या फन्दा रणबीर ?" वह झुँझला कर बोले। "न जाने तुम्हें किसने यह पाठ पढ़ा दिया है कि किसी की सुनते ही नहीं।"

"समझाया किसने है ? क्या आप मुझे बच्चा समझते हैं ?" वह तेज होकर बोला। "क्या अगर मैं कुछ बोलता नहीं, तो देखता भी नहीं ?"

"क्या देखते हो ?" वह कुपित होकर बोले ।

"यही कि आप लोग हर बात में ज्यादती करते हैं। घर पर मेरा बराबर का हिस्सा है, जायदाद पर मेरा बराबर का हिस्सा है, कारबार पर मेरा बराबर का हिस्सा है .... ।"

"लेकिन कौन कहता है कि नहीं है ?"

"कहने या न कहने से क्या होता है ? आप यह बतलाइये कि वास्तविकता क्या है ? मैं ऐसे रह रहा हूँ जैसे नौकर। दूसरे नौकरों की तरह मुझे भी आदेश पालन करना पड़ता है। उनकी तरह मैं भी आपके आदेश का पालक हूँ। व्यापार की किसी बात में मुझे राय देने का अधिकार नहीं। मुँह खोलने की मुझे आज्ञा नहीं। जो कुछ आपका आदेश हो मुझे बराबर पालन करना होगा। सारा काम आपके हाथ में है और इसके भेदों की आप मुझ से बात-चीत तक न करेंगे। हिसाब किताब मुझे न दिखलाएँगे। कितना रुपया आता है, कितना व्यय होता है, कितनी बचत है, इन बातों का मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं। जहाँ आगे होकर बात करनी हो वहाँ आप ही होंगे, मुझे पूछा तक नहीं जायगा। किससे लेना है, किसको देना है, मुझे बतलाने की आवश्यकता नहीं। कहीं से रुपया आये, किसी को दान देना हो, इसका सम्पूर्ण अधिकार आपको है। बैङ्क के हिसाब की मुझे खबर तक नहीं, कितना रुपया किस-किस बैङ्क में जमा है, मुझ से गुप्त रखा गया है। आप जिस किसी को चाहें, मुझ से बिना पूछे दान और चन्दा देते रहें। मैंने उस दिन पाँच सौ रुपये दे दिये तो आपको मिर्चें लग गईं और सारे गाँव में बात फैलगई।

आपके लिये पाँच सौ रुपये हाथ का मैल है, जिसे चाहो एक क्षण में देदें, परन्तु मेरे ऐसा करने से शोर मच सकता है, आपका अपमान हो सकता है, कुल-मर्यादा नष्ट हो जाती है और फिर मुझे छोटा भाई, बेटा, बराबर का हिस्सेदार माना जाता है। मैं ऐसी बराबरी से बाज़ आया। आप मुझे मेरा हिस्सा निकाल कर देदीजिये और अपनी बड़ाई को, अपने शासन को और अपने रोब-दाब को क़ायम रखिये। मेरा इनसे कोई सम्बन्ध नहीं।"

मनोहर यह वक्तृता सुनकर एकदम सन्नाटे में आगया। उसने स्वयं को गिरते हुए अनुभव किया। वह वहीं बरामदे में ज़मीन पकड़कर बैठ गया। नीलिमा भी हैरान परेशान चित्रवत् खड़ी रही। किसी को यह ध्यान न आया कि मनोहर बाबू भूमि पर बैठे हैं। वही व्यक्ति, जिसकी परछांई तक से नौकर कांपते थे, आज भूमि पर अचेत बैठा हुआ था और किसी का ध्यान भी उसकी ओर न हो रहा था। जिस मनोहर बाबू की शान गाँव-भर में नहीं, प्रान्त भर में प्रसिद्ध थी, आज वह इस दशा में भूमि पर बैठा था और कोई भी इस बात की परवा तक न कर रहा था।

छोटा भाई जिसे वह अपना लड़का समझता था, उसे इतना ऊंच-नीच सुना गया। जिस व्यक्ति के मुख में उसे ज़बान तक होने का संदेह था वह आज उसके सामने खुल्लम खुल्ला बड़ी-बड़ी बातें कर गया। जिस व्यक्ति ने भाई के सामने एक शब्द भी

निकालने का साहस न किया था, आज वह पूरा एक व्याख्यान दे गया। वह व्याख्यान भी ऐसा जो हृदय के टुकड़े टुकड़े कर देने वाला था। इसे सुनकर उसके नासूर फूट निकले। एक एक शब्द विष में डूबा हुआ तीर था। एक एक बात कटुता से पूर्ण थी और वह उसका उत्तर तक देने से विवश था। आखिर ऐसी बातों का उत्तर दिया भी क्या जा सकता है ? वह सिर पकड़ कर बैठ गये। जैसे भूमि घूम रही हो और उन्हें गिरने का भय हो।

रणवीर ने जो कुछ कहा था, उसमें कुछ भी असत्य न था। उसने सब ठीक-ठीक वर्णन किया था; परन्तु उसके दृष्टिकोण में आज कितना अन्तर था। इसमें कोई संदेह नहीं कि घर की सारी देखभाल मनोहर के हाथ में थी, वही व्यापार संभालता, वही खेती-बाड़ी देखता, वही घर चलाता, वही खर्च के पैसे देता और खर्च का हिसाब रखता। परन्तु इसमें हैरानी का कोई कारण न था। पिताजी की मृत्यु के उपरान्त सारा प्रबन्ध ही उसके हाथ में आ गया था। और किसके हाथ में जा सकता था ? और बड़ा भी तो वही था, और फिर कई वर्ष बड़ा था। रणवीर उसके सामने बच्चा दिखता था और था भी बच्चा ही। उसने अपने काम में कभी बेईमानी नहीं की। वह रणवीर और सुषमा का कितना ध्यान रखता था। वे दोनों शायद अपना इतना ध्यान न रखसकते हों, जितना वह रखता था। घर पर प्रत्येक वस्तु की अधिकता थी, कमी तो बहुत दूर की बात थी। जहाँ तक खाने

पीने की वस्तुएं और फल, सब्जी, दूध, मक्खन या दूसरी अन्य वस्तुओं का प्रश्न था उनका कभी भी अभाव न था। वस्त्रों की कमी न थी। जहाँ तक शासन का सम्बन्ध था उसका प्रश्न ही उपस्थित न होता था। आखिर एक ही व्यक्ति तो सब की देख-रेख करेगा। साधारण-सी बात का नियन्त्रण करने के लिये पूरे प्रबन्ध की आवश्यकता होती है, फिर इतने बड़े व्यापार को सम्भालने के लिये अनुशासन की आवश्यकता ही थी। अनु-शासन में पाबन्दी और कुछ-न-कुछ कठोरता की आवश्यकता होती है। परन्तु पाबन्दी या कठोरता रणवीर के लिये तो नहीं, शेष सभी कर्मचारियों के लिये थी। जहाँ तक दान पुण्य का प्रश्न होता था, वह तो प्रायः जो व्यक्ति घर पर रहता है, जो शेष वस्तुओं पर कन्ट्रोल करता है, वही दान कर सकता है। वह दान पुण्य व्यक्तिगत स्थिति से नहीं, घर की ओर से दिया जाता था। अब इस घर में रणवीर भी शामिल था और सुषमा भी।

परन्तु रणवीर ने ऐसे कटु वचन और ऐसे कठोर ढङ्ग प्रयोग करने की क्या आवश्यकता समझी? उसकी बातों से पता चल रहा था कि उसका हृदय हमसे अत्यन्त उचट गया है, वह हमें धोखेबाज़ और कपटी जानता है, और उसके विचार में हम इन दोनों के पक्के जानी-दुश्मन हैं, और फिर उनके लाभ और उन्नति के विरुद्ध घर में कोई ऐसी बात भी तो नहीं हुई। नीलिमा को मैं भली प्रकार जानता हूँ, उसके स्वभाव से भी अच्छी तरह परिचित हूँ। वह घर का प्रबन्ध सुचारु रूप से कर रही है। उसके दिल

में इन दोनों के लिये कोई छल-कपट नहीं। वह मेरे स्वभाव को जानती है, आरम्भ ही से पहचानती है, इसलिये स्वयं को उसने ऐसे सांचे में ढाल रखा है कि मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ न हो। और मेरी इच्छा केवल यह रही है कि मेरे भाई और उसकी स्त्री को जरा भी असन्तोष न हो। जरा भी कष्ट न हो। तो फिर यह सब क्यों? रणवीर अवश्य किसी के हाथों खेल रहा है। किसी ने उसे उलटी पट्टी पढ़ा रखी है। ये विचार उसके नहीं, बात-चीत का यह ढङ्ग किसी दूसरे का है। उसके दिल में कोई दूसरा बैठा है।

वह कौन है? मानलीजिये कि 'अ' या 'ब' हुआ, तो क्या? क्या वह रणवीर को समझा सकेगा कि उसने जो मार्ग अङ्गीकार किया है वह बुरा ही नहीं भयङ्कर भी है। वह उसे ही नहीं, मुझे भी, सारे घर को नष्ट कर सकता है। तो यदि कोई व्यक्ति घर के सर्वनाश पर तुला हो, तो ऐसे मार्ग से उसे हटाना आवश्यक ही नहीं तो और क्या है? यह तो मेरा कर्तव्य है। फिर भी वह मेरा छोटा भाई है। कम-समझ है और अनुभव-हीन है। अभी उसने संसार की हवा के झोंकों को नहीं देखा है, अभी उसे संसार का कटु अनुभव नहीं हुआ है। ऐसी कठोर घटनाओं का सामना ही उसे कब करना पड़ा है? उसके मार्ग में कोई बाधाएँ भी नहीं आईं। इसी कारण वह बालक जैसा हठ कर रहा है। परन्तु अब मेरे समझाने से वह नहीं समझेगा। किसी के मनाए नहीं मानेगा। वह धुन का पक्का है और फिर भाग्य भी तो कोई

चीज़ है। होनहार प्रबल है, उसे कौन टाल सकता है। यदि भाग्य में बँटवारा और सर्वनाश होना ही अङ्कित है तो मैं क्या कर सकता हूँ? कोई दूसरा भी क्या कर सकता है? परन्तु मुझे अवश्य प्रयत्न करके देखना चाहिये। हो सकता है, मान जाय, रास्ते पर आजाए, है तो मेरा छोटा भाई ही, वही भाई जो अभी कल-तक मेरा आदर करता था, मेरी बात टालने का विचार तक नहीं कर सकता था।

"तो तुम अभी बँटवारा चाहते हो रणवीर?" उसने सहसा पूछा।

"हैं?" रणवीर ने चौंक कर कहा, जैसे स्वप्न से जागा हो। "हाँ, अभी, इसी समय।"

"परन्तु इतनी जल्दी भी तो क्या है? कुछ दिन रुक कर भी तो किया जासकता है।"

"परन्तु मैं रुकना नहीं चाहता।"

"इसमें शीघ्रता का कारण मैं नहीं जान सका, हां इतना कह सकता हूँ कि यदि तुम्हें सन्देह है कि इस बीच में कुछ गड़बड़ हो जायगी, तो तुम स्वयं सब काम सम्भाल सकते हो।"

"परन्तु मैं हैरान हूँ कि आपको इसमें क्या आपत्ति है?"

"मैं चाहता हूँ दीवाली वाले दिन, मिलाप के स्थान पर वियोग न हो।"

"आपको इसकी चिन्ता न करना चाहिये। इस पाप का भागी मैं बनने को तैयार हूँ।"

अब मनोहर के लिये कोई उपाय न था। उन्होंने अन्तिम उपाय करते हुए कहा—

"परन्तु हिसाब करने के लिये, कागज़ लिखने के लिये और अन्य आवश्यक चीज़ों के लिये, नगर जाना पड़ेगा।"

"आप इसकी चिन्ता न कीजिये। मैंने वकील बुला लिया है। वह आपका भी मित्र है। आपको भी उसपर पूर्ण विश्वास है। और वह सब लिख पढ़कर ठीक कर लेगा। रजिस्ट्री शहर में जाकर हो जावेगी।"

"जैसी तुम्हारी इच्छा," महोहर ने अन्तिम हथियार फेंकते हुए कहा।

इस प्रकार जब मनोहर ने रणवीर को अपनी बात पर अटल पाया, तो और कोई मार्ग न पाकर बँटवारा आवश्यक समझा गया। नीलिमा भी मौन रही। उसने सुषमा की बातें भी सुनी थीं और उसके दिल को भी भाँपा था, और जब रणवीर को बड़े बाबू से बातें करते देखा, तो उसकी आँखें खुल गईं। जब वह बँटवारे पर इतने डटे हुए थे, तो उनको उनके इरादे से हटाना असम्भव था। वस्तुत: ये दोनों बँटवारे के विरुद्ध थे, वे तो एक ही रहना चाहते थे, सम्पत्ति को विभाजित करके उसका सत्यानाश करना न चाहते थे। परन्तु वे कर ही क्या सकते थे? विवश होकर उन्हें बँटवारा स्वीकार करना पड़ा।

अब मनोहर बाबू को यह चिन्ता थी कि जब सर्वनाश अवश्य होना है और उसको रोकना उनकी शक्ति के बाहर है,

तो कम-से-कम बँटवारा आराम से तो हो जाय। वे इस कारण अधिक झगड़ा बखेड़ा न चाहते थे। वकील तो नगर से आया ही हुआ था। रणवीर सच कहता था कि उस पर उन्हें भी विश्वास है। वकीलों पर विश्वास का तो कोई अर्थ ही नहीं। वे मनुष्य के नहीं पैसों के होते हैं, डाक्टरों की तरह। परन्तु यहाँ सन्देह की सम्भावना भी न थी। सारी जायदाद का पूरा-पूरा अनुमान लगाया गया। मनोहर बाबू ने हिसाब की प्रत्येक वस्तु उनके सामने फैंक दी। भूमि, बाग़, कारखाना, नक़द सब का योग किया गया। कुल मिलाकर चार लाख की सम्पत्ति थी। इसके पूरे पूरे दो भाग कर दिये गये। जहाँ झगड़े की बात आती, मनोहर बाबू अपना भाग छोड़ने को कह देते, परन्तु रणवीर इस बात के लिये भी तैयार न था। वह मुफ्त का एहसान न लेना चाहता था। इसलिये उसके हिस्से भी आवश्यक समझे जाते। झगड़े का अवसर न आ सकता था, क्योंकि मनोहर बाबू हर बात पर झुकने को तैयार थे। उन्होंने रणवीर से पहिले कह दिया कि ये ही सारे कागज़ात हैं। यह सब हिसाब है, यह नक़द रुपया है। लेन-देन का हिसाब सब इन्हीं पत्रों में है। यदि उसे विश्वास हो तो ठीक है, अन्यथा वह जहाँ भी चाहे, वस्तुओं की तलाशी ले सकता है। उसने अपनी पत्नी के आभूषण भी लाकर रख दिये। नीलिमा ने विरोध किया कि ये सब तो मेरे मायके के हैं। इस पर मनोहर बाबू ने उसे खूब सुनाई। वह बेचारी चुप होगई। रणवीर की स्त्री के आभूषण भी नीलिमा के पास थे। सुषमा ने

यह प्रस्ताव रखा कि आभूषणों का भी एक जैसा भाग किया जाय। मनोहर बाबू तुरन्त तैयार होगये। रणवीर ने इसे स्वीकार करने में आना-कानी की। मनोहर ने उसे विवश किया और गहनों के भी बराबर-बराबर भाग किये गये। उद्यान पर से मनोहर बाबू पूरा पूरा अधिकार छोड़ने को तैयार थे। परन्तु इसे न माना गया और उद्यान दो भागों में बाँट दिया गया। इस प्रकार बँटवारा बिना किसी झगड़े-बखेड़े के सरलता से होगया।

इस काम में दीवाली का सारा दिन और अगला दिन भी लग गया। उसके बाद कागज़ तैयार किया गया। दोनों दलों ने इस पर हस्ताक्षर कर दिये, और फिर जाकर मैजिस्ट्रेट के सामने उस पर हस्ताक्षर करके उसे रजिस्टर्ड करवा दिया गया।

घर के दो भाग पहले ही थे। उनके पिता जी ने घर को इस प्रकार ही बनाया था कि उनके दोनों पुत्र साथ भी रह सकें और अलग भी। अपने लिये उन्होंने इसी घर में एक ओर प्रबन्ध किया हुआ था। वे प्रायः घर पर कम ही आते थे। अधिकतर बाग़ में रहते, और वहीं उनकी महफ़िलें लगा करतीं। अब केवल इतना कर दिया गया कि घर के बीच में दीवार उठादी गई। मनोहर तो इस विषय में एकदम मौन था, किन्तु रणवीर किसी बात को अधूरी न छोड़ना चाहता था। वह प्रत्येक वस्तु नियमानुसार बाँटकर उसे दस्तावेज़ पर लिखना चाहता था। उसका यह कहना था कि बात ऐसी होनी चाहिये जिससे बाद में झगड़े की सम्भावना ही न हो। मनोहर इसके उत्तर में न 'हाँ' कहता

और न 'नाँ' ही। वह केवल रणवीर की हर बात के आगे नत-मस्तक हो जाता। मनोहर के इस सरल व्यवहार से रणवीर को सन्तोष नहीं अपितु आवेश आरहा था। वह तो लड़ना और झगड़ना चाहता था। आखिर वह कोई भीख तो नहीं माँग रहा था। अपने पिता की सम्पत्ति का आधा भाग उसका उचित अधिकार था। यह क्यों समझा जाय कि उसे भिक्षा दी जारही है। वह इसे मनोहर की पालिसी समझता। परन्तु कुछ कर न सकता। आखिरकार सारा काम तीन दिन में पूरा होगया।

इसके कई दिनों बाद मनोहर चारपाई से न उठ सका। ज्यों ही वह रजिस्ट्री पर हस्ताक्षर करके घर वापिस लौटा, वह चार-पाई पर गिर पड़ा। तीव्र ज्वर और सिर की पीड़ा ने उसे आ दबाया। ज्वर किसी समय भी न उतरता। वह बुख़ार में घबरा कर उठ बैठता। उसे ऐसा लगता मानो स्वर्गीय पिता जी उसे आकर डरा और धमका रहे हैं।

रणवीर और सुषमा अपनी सफलता पर बहुत गर्वित थे। सुषमा बहुत प्रसन्न थी। आज वह अपने घर की रानी थी, दासी नहीं। अब भाभी देखें उस पर कैसे अधिकार जमाती है ? घर के व्यय पर उसका अधिकार होगा। पैसा उसके हाथ में होगा। चीज़ें वह स्वयं मँगवाएगी। स्वयं व्यय करेगी। कपड़ा गहना वह स्वयं खरीदेगी। अब देखूँगी कि बड़ी बहू आकर कैसे रोब जमाती है ? सब नौकर उसके वश में थे। उसके संकेत पर नाचते थे, क्योंकि उन्हें पैसे भाभी से मिलते थे या बड़े बाबू से।

अब तो ऐसी बात नहीं। अब मैं मालकिन बनूँगी, स्वयं मालकिन। अब देखूँगी गाँव वाले कैसे मुझे छोड़ सकते हैं। अब देखूँगी हर मामले में उसे ही कैसे महत्व दिया जा सकता है। उसने एक लम्बी सांस ली। सच है स्वतन्त्रता बड़ी अमूल्य देन है। सेवक का भी क्या जीवन ? दासता में बड़प्पन भी नहीं भाता। वह सोना जो कान खाये बेकार होता है। अब वह जिससे चाहेगी सम्बन्ध बढ़ाएगी। अपनी चहेती स्त्रियों से मेल-जोल रखेगी। उन्हें घर बुलाएगी। उनसे काम करवायेगी। उनको प्रसन्न रखेगी, पैसे से, चीजों से और इनाम से। पैसा संसार में क्या नहीं ख़रीद सकता ? अब जीवन का सच्चा आनन्द प्राप्त होगा और सच्चा सुख।

बारहवां परिच्छेद

रणवीर ने अलहदा होते ही पहला यह काम किया कि भगतसिंह को अपने पास बुलाया और उसे नौकरी करने के लिये कहा। बोले "भगतसिंह! मैं अपने काम को ठाटबाट से चलाना चाहता हूँ। इसके लिये मुझे तुम्हारी आवश्यक्ता है।"

"मैं प्रस्तुत हूँ," वह बोला। "परन्तु बात यह है कि मैं बिना कुछ लिये-दिये काम करूँगा।"

"तो इसका यह अर्थ समझा जाय कि तुम काम नहीं करोगे।"

"यह तो आपकी ज्यादती होगी। मित्र के लिये तो मेरी जान भी हाजिर है। फिर आप तो बहुत पुराने और पक्के मित्र हैं। इसका अभिप्राय केवल यह है कि मैं आपकी निःस्वार्थ सेवा करना चाहता हूँ।"

"आप पैसे लेकर और भी अच्छी सेवा कर सकते हैं।"

फिर भगतसिंह को मौन पाकर बोले—"आप मेरी कम्पनी के जनरल मैनेजर होंगे। सारा काम आपकी देख-रेख में होगा, और इसके लिये आपका ही उत्तर-दायित्व रहेगा, और मैं चार सौ रुपये मासिक देता रहूँगा।"

"चार सौ!" वह हैरानी से बोला "मैं इतना क्या करूँगा?"

"सो फिर बतलाऊँगा।" रणवीर बोला। "पैसा बुरी वस्तु नहीं होती। उचित वेतन देने पर कार्य भी उचित ही होता है। जितना गुड़ डालो उतना ही मीठा होता है।"

"अच्छा यदि आप अत्यन्त आग्रह करते हैं तो मैं आपका प्रस्ताव स्वीकार करता हूँ। परन्तु एक शर्त है, जिसे आपके स्वीकार किये बिना मैं काम नहीं कर सकता।"

"अब आप शर्तें बता सकते हैं," रणवीर बोले।

"शर्तें नहीं शर्त, और वह यह है कि मेरे काम में हस्तक्षेप नहीं किया जायगा।"

"आप का या किसी अन्य का?" रणवीर मुस्करा कर बोले।

"आपका या किसी अन्य का।" भगतसिंह ने गम्भीरता से कहा। "केवल एक यही शर्त होगी और इसके बदले में मैं आपको विश्वास दिलाने को तैयार हूँ कि आपका काम मनोहर बाबू के काम से कई गुना उन्नति कर जायगा।"

"मुझे यह स्वीकार है। और क्या चाहिये? हींग लगे ना फिटकरी रँग भी चोखा आय। मैं तो स्वयं इस आपत्ति से बचना

चाहता हूँ। प्रतिदिन के हस्तक्षेप से मेरा हृदय बहुत घबराता है। और मैं आप से यह वायदा करता हूँ कि आपके काम में न मैं स्वयं हस्तक्षेप करूँगा और न दूसरों को ही आज्ञा दूँगा।"

"तो आपने शर्त स्वीकार करली। अब मैं आज से ही काम आरम्भ करता हूँ।"

और उन्होंने काम आरम्भ कर दिया।

भगतसिंह के चरित्र के कई पक्ष थे। जब वह निर्धनों की सहायता के लिये उतरता, तो उन्हें सब कुछ देने को तैयार हो जाता; यदि किसी के विरुद्ध हो जाता तो उसकी जान के पीछे हाथ धोकर पड़ जाता। उसका एक विशेष स्वभाव यह था कि वैरी से प्रतिशोध अवश्य लेना चाहिये। वैसे तो सारे गाँव का यही विशेष गुण था। बदला लेना, कुल के गौरव का एक महत्वपूर्ण कर्तव्य माना जाता था, और प्रतिशोध की भावना प्रत्येक खानदान में स्वाभाविक थी। इसी कारण प्रायः कई कुटुम्ब पीढ़ियों से एक दूसरे के वैरी चले आते थे। यह बात कोई विशेष बिरादरियों तक ही सीमित न थी। यह नहीं कि केवल किसान या हरिजन ही इसमें लिप्त थे, कोई भी इससे सुरक्षित न था। यदि किसी बात पर दो परिवारों के सरदारों में झगड़ा, झड़प या लड़ाई होगई, तो फिर इनके लड़के और लड़कियाँ, नाती और सम्बन्धी सब को दूसरे परिवार के सब सम्बन्धित व्यक्तियों का बहिष्कार करना पड़ता था। इसी कारण गाँव में पीढ़ियों से पुराना वैरभाव चला आता था। दूसरे गाँव

में भी दशा ऐसी ही होगी, परन्तु अमानतपुर में तो यह बात अधिकता से पाई जाती थी, और इसका असर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पाया जाता था। यदि इन परिवारों में से एक परिवार किसी आपत्ति में फँस गया, तो दूसरे परिवार के लिये इससे पूरा-पूरा लाभ उठाने का यह अलभ्य अवसर होता था। इनके विचार में गर्म लोहे पर चोट करना सरल और लाभदायक होता है। दूसरे परिवार का कष्ट इनके हृदय में सहायता, प्रेम या दया को नहीं, घृणा, द्वेष और शत्रुता को जन्म देता और यदि वह किसी आपत्ति में नहीं फँसे, तो फँसाने के लिये भिन्न भिन्न प्रकार के उपायों पर विचार किया जाता। अब जहाँ दो मनुष्य इकट्ठे हों, कोई न कोई झगड़ा तो उठता ही है। फिर अमानतपुर में पर्याप्त व्यक्ति थे, कभी न कभी लोगों में भेदभाव का उत्पन्न होना बड़ी साधारण बात थी। इस कारण लगभग प्रत्येक परिवार और हर घर एक दूसरे के विरुद्ध और एक दूसरे का वैरी था, और अवसर पड़ने पर बदला लेने से न चूकता। अमानतपुर में दूसरों से बदला लेने का एक विशेष ढङ्ग यह था कि उस परिवार के लड़के या लड़कियों की शादी न होने दी जाय। इस कारण ज्योंही समाचार मिलता कि किसी लड़के की सगाई निश्चित हो रही है तो वे लड़की वालों के घर पहुँचते और उनके समक्ष उस घर का ऐसा चित्र खींचते और उसका इस प्रकार वर्णन करते कि यदि दुनियां में कोई नीच घर और नीच लड़का है तो वही है। फिर वे कहते कि हम केवल

मानवता के नाते ऐसा कह रहे हैं, और लड़की के लाभ और सुख के विचार से। बेचारी ग़रीब लड़की सारी आयु क्यों ठोकरें खाय और दुःखी हो। नहीं तो हमें इससे क्या कि लड़की का सम्बन्ध कहाँ हो रहा है? इस बात में अमानतपुर वालों ने एक विशेष प्रवीणता प्राप्त कर रखी थी। वे बात इस ढङ्ग से और इस प्रकार करते कि लड़की वाला प्रभावित हुए बिना न रहता, और वह अवश्य अनुभव करता कि यदि दुनियां में उसका कोई शुभचिन्तक है तो यही मनुष्य है। फिर यही नहीं, वे उससे लड़की के लिये दूसरे गाँव का या अपने में से किसी सम्बन्धी के लड़के का परिचय देते और वहाँ से सगाई छुड़वा कर कहीं और करा देते। यही बात वे लड़के वालों से जाकर करते। गाँव की किसी लड़की की सगाई छुड़वाने का भी उनका पूरा-पूरा प्रयत्न चलता। वे लड़के वालों से जाकर कहते कि यदि शादी करना है तो किसी शरीफ़ परिवार में कीजिये।

"इस परिवार में क्या बात है?"

"बात तो कुछ नहीं केवल लड़की दो चार बार लड़कों के साथ घर से भाग गई थी। बड़े प्रयत्न से वापिस लाई गई है, और हर बार यही कहती है कि वह अमुक लड़के से शादी करेगी, नहीं तो जान पर खेल जायगी।"

अब इतनी बात बतलाने के बाद भी यदि वह व्यक्ति उस सम्बन्ध को नहीं त्यागता तो वह परले दर्जे का मूर्ख ही हो सकता था।

यही नहीं, कभी-कभी ऐसा भी होता कि गाँव में बरात के आने पर वे बरातियों से मिलते। उनके हाथ में लड़की के प्रेमियों के द्वारा लिखे हुए पत्र देते, और बरात को वापिस लौटाने का यथा-सम्भव प्रयत्न करते। बहुत नहीं पर दो तीन बार ऐसा भी हुआ।

अब भगतसिंह इस वातावरण में पला था। कहीं दूसरी जगह जाकर रहने का उसे अवसर न मिला। लाख अच्छा स्वभाव होने पर भी वह स्थिति और सङ्गति से प्रभावित हुए बिना न रह सकता था। उसके पास दर्द से भरा दिल था। वह निर्धनों के लिये केवल शब्दों से ही नहीं बल्कि आचरण और व्यवहार के द्वारा सहानुभूति प्रदर्शित करता और उनके लिये सदैव प्रयत्नशील रहता। ऐसे विषयों में उसे वीरता और साहस भी दिखाना पड़ता। वह इस से कभी भी न घबराता। लोग उससे विरोध अवश्य करते। वह उसे सहन करता और अपनी हठधर्मी और साहस के कारण अपने सङ्कल्प और विचार में सफल होता। परन्तु वही मनुष्य दूसरे समय एक कठोर से कठोर द्वेषी भी हो सकता था। यह शायद विश्वास के योग्य बात न हो, परन्तु इसमें वास्तविकता थी। जो मनुष्य लोगों को काँग्रेस और गाँधी जी के उच्च सिद्धान्तों पर एक प्रभावशाली व्याख्यान दे सकता था और उन्हें एक उच्च आदर्श बतला सकता था और देश की वर्तमान स्थिति पर घण्टों विवाद कर सकता था, वह स्वयं अपने स्वभाव का इस सीमा तक परतन्त्र

था कि बदला लेने के लिये किसी भी गिरावट तक पहुँच सकता था। वह मनुष्य जो इस समय मानवता के उच्च शिखरों को छू रहा है, दूसरे समय पतन के गहरे गर्त में पहुँच जाता। मनुष्य के स्वभाव का यह विशेष उदाहरण भगतसिंह के चरित्र में कूट कूट कर भरा हुआ था। इसमें उसका केवल यह अपराध था कि वह ऐसे वातावरण में पला था और फिर वह अपने बाप का लड़का था।

मनोहर के विरुद्ध उसे इसके अतिरिक्त कोई असन्तोष न था कि मनोहर के पिता ने उसके अपने बाप के विरुद्ध गवाही दी थी और उसका बाप मरते समय यही अन्तिम वसीयत छोड़ गया था कि अनन्तराम की सन्तान से बदला अवश्य लेना।

भगतसिंह ने काम आरम्भ कर दिया। उसने स्थिति का सिंहावलोकन किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि जनरल मैनेजर के पद पर काम करते हुए, रणवीर के काम को उन्नति देने का यह उपाय भी है कि मनोहर के काम को हानि पहुँचाई जाय। नहीं, नहीं, उसे बिल्कुल समाप्त कर दिया जाय। यह बात सोचने में उसे शायद देर लगी, परन्तु उसका सर्वनाश करने के उपाय को सोचने में बिल्कुल देर न लगी। वह इतना बुद्धि-हीन न था कि उसको इन बातों के विचार में अधिक समय लगे। वह इस परिणाम पर पहुँचा कि रणवीर के काम को उन्नति देने के साथ, मनोहर के काम का सर्वनाश किया जाय, और इसका उचित उपाय यह था कि इसके लिये पैसा खर्च किया जाय। ऐसे

कामों के लिये पहिले पैसा व्यय करने में हिचकिचाहट न की जाय। व्यय तो अवश्य होगा और खूब होगा, परन्तु वह कई गुना सूद के साथ वसूल होगा।

इस परिणाम पर पहुँचने के बाद, इसे कार्य रूप में सफल बनाने के लिये एक योग्य व्यक्ति की आवश्यकता थी। यह सोचने में भी उसे देर न लगी और झट उसकी दृष्टि पण्डित मुन्शीराम पर पहुँची। जब भगतसिंह ने मुन्शीराम को डेढ़ सौ रुपयों का लोभ दिखाया तो उनका मुँह खुला ही रहगया। डेढ़ सौ रुपये! बाप रे! डेढ़ सौ रुपये मासिक! मुझे! इतना वेतन तो हमारे गाँव के एक ओवरसियर को मिलता है, जो जब भी छुट्टी पर घर आता है तो लोग उसकी ओर बड़ी आशाभरी दृष्टि से देखते हैं। इतना वेतन! वाह! अब दिन फिरे। परन्तु जब उसे मूल्य का पता चला तो हिचकिचाहट में पड़गया। उसकी आत्मा ने उसे कोसा। क्या जिस स्वामी के इस समय तक टुकड़े खाते रहे, उसे इस प्रकार, सङ्कट में छोड़ कर धोखा दोगे? यह नमक हरामी नहीं तो और क्या है? परन्तु पण्डित मुन्शीराम तीव्रबुद्धि होने के कारण आत्मा की ऐसी पुकार को दबाने के उपाय भली प्रकार जानते थे। फिर जब दिल ही किसी वस्तु का अभिलाषी हो तो बुद्धि को उसका उपाय ढूँढ़ने में विलम्ब नहीं लगता। पण्डितजी के हृदय और बुद्धि का भी यही हाल था। तुरन्त उपाय की खोज आरम्भ हुई। नमक हरामी कैसी? क्या हराम के पैसे लेते रहे हैं? यदि पैसे लिये हैं तो काम भी जी

दौड़ कर किया है। मुफ्त में कौन देता है? फिर वे कितने पैसे देते रहे हैं? पचास ही न? क्या सुबह से शाम तक काम करने की यही मजदूरी होती है। रोज़ काम करने वाला कारीगर मुझ से कहीं अधिक कमाता है। हाथ में आये हुए अवसर को खोना बुद्धिमान का नहीं मूर्ख का काम है। पण्डित मुन्शीराम और चाहे कुछ भी थे, मूर्ख न थे। साथ ही उन्हें वह युक्ति भी याद आई कि जब ऊँचे पढ़े लिखे लोग अधिक वेतन मिलने पर, एक नौकरी छोड़ कर दूसरी नौकरी करने में रत्तीभर सङ्कोच अनुभव नहीं करते, तो क्या सङ्कोच केवल हम जैसे गरीबों के लिये ही रह गया है? इस अन्तिम युक्ति ने सारी बाधाओं को दूर कर दिया। उनके सारे सन्देह, सारे आक्षेप इस प्रकार बह गये, जैसे बरसात का तेज़ पानी गलियों के कूड़े को बहाकर ले जाता है।

पण्डित जी के मान जाने पर भगतसिंह की बहुत-सी कठिनाइयाँ दूर होगईं, क्योंकि अब वे उनके दाहिने हाथ थे। जो कार्य वे स्वयं न कर सकते थे, मुन्शीराम उसे पूरा करते थे। फिर वेतन के अतिरिक्त कभी-कभी इनाम और इकराम मिलने का भी लालच होता। भगतसिंह ने मुनीम जी को अपनी योजना बतला दी। मुनीम जी समझदार थे, तुरन्त समझ गए। रणवीर बाबू के यहाँ नौकरी करते ही उन्होंने कपना काम आरम्भ कर दिया। अब उनका काम था कि मनोहर बाबू के अन्य कर्मचारियों और मशीन के कारीगरों को उनके काम से हटवा कर रणवीर बाबू

की ओर मिला लिया जाय। बिना लालच के कोई आने को तैयार न था। भगतसिंह यह जानते थे, इसलिये उन्होंने अच्छे और अधिक से अधिक वेतन देने का वचन दिया। मामूली वेतन वृद्धि करने में वे विश्वास न करते थे। इसीलिये उन्होंने दुगुनी मज़दूरी का वचन दिया। वे जानते थे कि दुगुनी मज़दूरी को कोई माई का लाल रोक न सकेगा। इससे मनोहर बाबू का काम समाप्त हो जायगा और एकाधिकार रणवीर के हाथ आजायगा। फिर अवसर आने पर कोई बहाना करके यह बढ़ी हुई मजदूरी कम भी की जा सकती है।

रणवीर बाबू ने हस्तक्षेप न करने का वचन अवश्य दिया था, परन्तु यह बात वह और भगतसिंह भी जानते थे। कि साधारण वाद-विवाद अवश्य होता रहेगा। क्योंकि आखिर रणवीर बाबू को प्रत्येक स्कीम और पालिसी पर विश्वास होना चाहिये। अब रणवीर भाई से अलग तो हो गये, परन्तु वह उसका बिलकुल सर्वनाश करने के पक्ष में न थे। फिर भी आखिर भाई थे। दूसरे उन्हें इससे कुछ लाभ भी न था। परन्तु भगतसिंह के पास और युक्ति थी। उन्होंने कहा कि मनोहर बाबू इस अलहदगी के कारण अत्यन्त दुखी हैं। यह बात उन्होंने अपनी प्रसन्नता से नहीं, मजबूर होकर, इच्छा के विरुद्ध, की है। इसलिये वे अत्यन्त रुष्ट भी हैं। अब वे यह सिद्ध करने का प्रयत्न करेंगे कि अलहदा होना हमारे लिये बहुत बुरा और हानिकारक था। इसलिये वे उसे ख़राब करने का प्रयत्न करेंगे। उनके पास इसका उपाय यह

है कि वे हमारे कार्य को हानि पहुँचायें और यही नहीं, उसे बिलकुल नष्ट ही करदें। बोले—

"रणवीर बाबू ! आप बहुत समझदार और योग्य हैं। यह सब ठीक है, परन्तु बुद्धि से बड़ा अनुभव होता है। और मैं डींग तो नहीं मारता, इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मुझे जीवन का कुछ अनुभव अवश्य है।"

"कुछ नहीं, बहुत।"

"खैर। यह तो आपकी महानता है, परन्तु इतना अवश्य कह सकता हूँ कि मनोहर बाबू इस बात को अपना अपमान समझ बैठे हैं। उन्होंने यह अच्छा किया है या बुरा, इस पर बहस नहीं, परन्तु सच यह है कि अब वे बदला लेने का पूरा-पूरा प्रयत्न करेंगे और फिर आपका काम नष्ट करके आपको अपने पाँव पड़ने पर मजबूर करेंगे, और दुनियां को यह बात सिद्ध करके बतायेंगे कि इस कारण वे बँटवारे के विपक्ष थे; और आपकी अनुभव शून्यता का डङ्का पीटेंगे।"

"बात तो तुमने पते की की है, भगतसिंह !"

"यही नहीं," भगतसिंह ने कहा "वे आपके भाई हैं, आप दोनों में एक ही रक्त है। परन्तु इस बात से आप इनकार नहीं कर सकते कि व्यापार में ये बातें नहीं चला करतीं। एक सफल और अनुभवी व्यापारी इन बातों की कभी चिन्ता नहीं करता, और यदि करता है तो वह व्यापारी ही नहीं। यदि है, तो बिलकुल असफल। अब आप दोनों का काम भी वही है। इसमें

भयङ्कर संघर्ष होगा। या तो आप अभी से इस काम को छोड़ दीजिये, मशीनों को बेच दीजिये और कोई दूसरा काम आरम्भ कर दीजिये, नहीं तो संघर्ष के लिये तैयार हो जाइये।"

"परन्तु मुझे क्या पड़ी है कि इस चलते हुए काम को छोड़ बैठूँ। वे क्यों न छोड़ दें?"

"वे स्वयं नहीं छोड़ेंगे। हमें छुड़वाना होगा।"

"हमें छुड़वाना होगा!" रणवीर घबराकर बोले।

"नहीं तो स्वयं छोड़ना होगा।"

"यह कोई आवश्यक नहीं।"

"बिलकुल आवश्यक है। यही इसकी शर्त है। यही अनुभव कहता है। यही व्यापार का इतिहास कहता है, यही जीवन का पाठ है। या तो आपको आगे बढ़ना होगा, या पीछे हटना होगा। आप साथ-साथ नहीं चल सकते।"

रणवीर खामोशी से छत को ताकने लगा।

"तो" भगतसिंह कुछ रुककर बोले—"आपको इस बात का निर्णय करना होगा कि आप होजिरी का काम करना चाहते हैं या कोई और। यदि यही करना चाहते हैं तो आपको निर्णय करना होगा कि आप अपने काम को खूब तरक्की देना चाहते हैं या केवल मनो विनोद के लिये रखना चाहते हैं। यदि उन्नति के शिखर पर लेजाना चाहते हैं तो आपको इस बात का भी फ़ैसला करना होगा कि क्या आप संघर्ष के लिये तैयार हैं? यदि तैयार हैं तो इस बात को अच्छी प्रकार समझना होगा कि संघर्ष,

आखिर संघर्ष होता है। इसमें खून, रिश्तेदारी, दोस्ती या किसी और ऐसी बेकार चीज का ध्यान नहीं रखा जासकता। यह तो लड़ाई का मार्ग है और लड़ाई के सिद्धान्त, रिश्तेदारी के सिद्धान्तों से भिन्न होते हैं। शायद आपको कृष्ण भगवान् का अर्जुन को उपदेश याद हो। किसी न किसी प्रकार से वह यहां भी लागू होगा।"

रणवीर द्विविधा में पड़ गए। भगतसिंह की युक्तियां ठोस थीं; सच्चाई से भरपूर। उनसे इनकार करना उसके बस का रोग न था। एक ओर रक्त का प्रश्न था, दूसरी ओर व्यापार का, उन्नति का। उसे शीघ्र फैसला करना होगा। भगतसिंह एक असली दुनियादार की तरह बात कर रहा था, सच्ची और बेलाग। फिर एक बात और थी। या तो उसे भाई से पृथक् ही न होना था परन्तु अब परिणाम के लिए तैयार रहना पड़ेगा। गांव में भगतसिंह के अलावा उसका कोई दूसरा सलाहकार नहीं था और न ही उससे अधिक कोई समझदार। फिर वह बनावटी नहीं अपितु दुनियादारी के दृष्टिकोण से काम कर रहा है। उसका आशय मनोहर बाबू को तबाह करना नहीं, अपने मित्र को सफल बनाना है। अब यदि इस सफलता के मार्ग में भाई का प्रेम, खून का सम्बन्ध, या कोई और बात बाधक होती है तो उसे ठुकराने के अतिरिक्त और उपाय ही क्या है। अब तो बहुत नहीं, केवल दो मार्ग थे। उसे एक का चुनाव करना पड़ेगा। यदि आगे बढ़ना है तो बाधाओं को हटाना होगा, कोमल भावों को भगाना होगा, और एक

पक्के दुनियादार की तरह आगे बढ़ना होगा। नहीं तो दूसरे को मार्ग देना होगा, पीछे हटना होगा, खुद ठोकरें खानी होंगी और शायद सर्वनाश के लिये तैयार रहना होगा। मार्ग दो हैं; एक उन्नति का दूसरा अवनति का। चुनाव शीघ्र करना होगा। निदान उसे भगतसिंह के आगे हथियार डालना पड़े।

अब भगतसिंह ने उसके दिल के कोनों में अटके हुए जाले को साफ करने के लिए झाड़ू उठाया।·······बोला:

"रणवीर बाबू! मुझे आपकी ऊंची समझ और तीव्र बुद्धि देखकर अत्यन्त हर्ष हुआ। अब मैं विश्वास और गर्व से कह सकता हूँ कि आप एक अत्यन्त सफल व्यापारी बनेंगे। आप मनोहर बाबू की पराजय पर आंसू मत बहाना। अभी अपने दिल में यह इरादा कर लीजिये कि आप एक बहुत बड़े सेठ बनेंगे। फिर मनोहर बाबू स्वयं आपके पास आवेंगे और ग़लती मानेंगे और आपकी समझ की बड़ाई करेंगे। उस समय आप फिर भाई से गले मिल सकते हैं। फिर वह सम्बन्ध, वह मित्रता पक्की होगी, कभी न टूटने वाली। इस समय ज़रा दिल को कड़ा कर लीजिये।"

फिर बोले,

"अब आप यहाँ न रहिये। कल, नहीं नहीं, आज ही तुरन्त दौरे पर निकल जाइये। वहाँ जाकर आर्डर भेजिये, जितने आप भेज सकें। आर्डर आप भेजेंगे, माल मैं भेजूंगा। आप देखेंगे कि सालों में नहीं, महीनों में आपका काम कितनी उन्नति कर

जायगा ।"

रणवीर सहमत हो गये। वे उसी रात कलकत्ते चले गये। अब भगतसिंह के लिये मैदान साफ था।

उसे मुन्शीराम मिल गये और दोनों ने काम को तरक्की देना आरम्भ कर दिया।

कुछ ही दिनों के अन्दर मनोहर बाबू का कारखाना खाली होगया। सब कारीगर उन्हें छोड़ कर रणवीर के पास चले आये। भगतसिंह ने इस बात को पहिले ही सोच रखा था, इसलिये उन्होंने इतने कारीगरों के लिए मशीनों का प्रबन्ध भी कर लिया था। वे जानते थे कि मनोहर बाबू की मशीनें बेकार पड़ी रहने पर भी, वे इन्हें बेचने का विचार तक न करेंगे। इसलिये वे शहर जाकर पुरानी और सस्ती मशीनें खरीद लाये थे। सब कारीगरों को उन मशीनों पर बिठा दिया गया।

मनोहर बाबू का काम बिलकुल रुक गया और रणवीर का काम ज़ोरशोर से चल निकला। फिर भगतसिंह खूब काम लेने वाला आदमी था। वह कठिन परिश्रम करता। प्रात: से सायं तक उसके दिल में केवल एक ही बात की धुन रहा करती थी कि काम को किस प्रकार उन्नति पर पहुँचाया जाय। उसका दिमाग चौबीस घण्टे केवल यही सोचता। वह स्वयं कारखाने का चक्कर लगाता। दिन में कई बार खाली बैठने वालों की जान खाता। वैसे तो होजरी के काम में इस बात की इस कारण आवश्यकता नहीं होती कि कारीगरों को उनकी मज़दूरी काम के

अनुसार दी जाती है और यदि कोई कारीगर काम कम करता है तो वही हानि उठाता है। परन्तु उसकी पालिसी यह थी कि उन्हें कम काम करने और कम मज़दूरी लेने का अवसर ही न मिले। इसलिए वह उन्हें अधिक काम के लिए विवश करता। कारीगरों को बहुत पैसे मिलने लगे। उत्पादन बढ़ने लगा। माल तेजी से बाहर जाने और रुपया धड़ाधड़ आने लगा। चारों ओर रणवीर का नाम प्रसिद्ध हो गया और साथ ही भगतसिंह का।

तेरहवां परिच्छेद

गांव में शारदा और सुषमा की मित्रता की घर घर चर्चा थी। अब शारदा वह पहले वाली शारदा न थी। शागिर्दपेशा खानदान के बाद, गांव में भगतसिंह ही गिना जाता था। ४००) वेतन कोई साधारण नहीं होता। कितनी ही अधिक शिक्षा प्राप्त करके भी कई मनुष्य इतनी बड़ी तनख्वाह नहीं पा सकते।

शारदा खूब शान से रहती। गांव की औरतें दिल में तो उससे जलती थीं और अवसर मिलते ही उसके विरुद्ध बातें करके, दिल के फफोले फोडतीं, परन्तु प्रगट रूप में उसकी खूब चापलूसी करतीं, और उसकी प्रशंसा के पुल बांधतीं। उसका घर औरतों का अड्डा बना रहता। कई औरतें मुफ्त में उसका काम करने आ जातीं। कोई दाल दलती, कोई मसाला और मिर्च पीसती, कोई हल्दी कूटती, कोई अचार मुरब्बा डालती, कोई आकर उसके पैर दबाती। बहुत सी चापलूसी करने और गप्पें लगाने के लिये उसके

घर पर मौजूद रहतीं। घन्टों महफिल लगती। सारे गांव की राजनीति, औरतों की बातें, आदमियों की हरकतें, नई सगाई, नया विवाह और नए मास के चाँद पर वहाँ विवाह होता। दुनियां में आने वालों और संसार से कूच करने वालों की भी वहीं चर्चा रहती। दूसरे देहात की बात भी तुरन्त वहाँ पहुँचती। इन पर शीघ्र विवाद आरम्भ हो जाता। सम्मति दी जाती। अन्तिम निर्णय सर्वदा शारदा के ऊपर रहता और सब उसके निर्णय के आगे सिर झुकातीं।

भगतसिंह को भी बहुत से समाचारों का यहीं से पता चलता। न जाने स्त्रियों को ऐसी सब बातों का कैसे पता चलता।

शारदा किसी के घर न जाती। केवल सुषमा के पास ही उसका आना जाना होता। वे मिलकर घण्टों बातें करतीं। सुषमा भी शारदा के घर के अतिरिक्त कहीं न जाती। हाँ, भगतसिंह ने अब एक नया पक्का मकान बनवा लिया था। लोगों का कहना था कि यह मकान रणवीर ने ही बनवा कर दिया था। पूरा ग्राम जानता था कि सुषमा और शारदा की दाँत-काटी रोटी है, और दोनों का आपस में बड़ा प्रेम है। सुषमा भी घण्टों शारदा के घर बैठती।

एक दिन जब रणवीर दौरे पर था, शारदा भागी-भागी सुषमा के पास आई और बोली—

"बहिन, लो बुरे का मुँह काला"

"क्यों क्या हुआ ?" उसने हैरानी से पूछा।

"होता क्या, जो व्यक्ति दूसरों के लिये गड्ढा खोदता है कभी न कभी उसमें स्वयं गिरता है।"

"यह गड्ढे और गिरने की बात मेरी समझ में नहीं आई।"

"आपके जेठ की करतूत उन्हीं के सामने आई।"

"कैसे ?" उसने घबराहट से पूछा।

"बहिन," शारदा बोली, "बात यह है कि बड़े बाबू, छोटे बाबू का फैला हुआ और बढ़ा-हुआ काम देख कर अन्दर ही अन्दर जल रहे थे। नीलिमा उनको रोज ताने देती कि वे नाकारे और निकम्मे बैठे हैं, और उनके दुश्मन इतना आगे बढ़ गये हैं। सारा काम हाथ से चला गया; अब हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से क्या बनेगा। मनोहर बाबू ने पूछा कि वह क्या कर सकते हैं, जो भाग्य में है वह होकर ही रहेगा। इस पर नीलिमा बहुत बिगड़ीं और उन्हें जली-कटी सुनाने लगीं। यदि वे भाग्य पर विश्वास किये बैठे रहेंगे तो और लोग आगे बढ़ जावेंगे। फिर उन्होंने पूछा कि वह क्या कर सकते हैं ? तो नीलिमा के मुंह से निकल गया कि पहिले इन दुश्मनों का नाश करो, तभी कार्य उन्नति पा सकेगा"।

"फिर" ? सुषमा ने उसी तरह हैरानी से पूछा।

"फिर, बहिन, मनोहर बाबू को भी ध्यान आया कि वह ठीक कह रही है। आखिर वे पत्नी के दास तो थे ही, उन्होंने एक षड्यन्त्र रचा"

"षड्यन्त्र ! कैसा षड्यन्त्र ?"

"दुश्मनों को नष्ट करने का"

"कैसे ?"

"वे नगर गये और वहां से पिस्तौल खरीद कर लाये।"

"पिस्तौल ?"

"हाँ, और बिला लायसेन्स, चोरी का, ताकि अपने शत्रुओं को ठिकाने लगा सकें।"

"किन शत्रुओं को ?"

"बहिन, बड़ी भोली हो तुम भी। ईश्वर उनका बेड़ा ग़रक करे, उन्हें अनाज का दाना नसीब न हो, उन अत्याचारियों ने छोटे..................।"

"क्या कहा ?" वह चिल्ला कर बोली।

"बहिन, धीरे से" शारदा ने मुंह पर हाथ रख कर कहा, "उन अत्याचारियों ने छोटे बाबू को समाप्त करने का फैसला किया था।"

"हाय"! सुषमा छाती पर दोनों हाथ पीट कर बोली। "फिर ?"

"परन्तु बहिन, मारने वाले से बचाने वाला बड़ा है। भगवान के घर तो न्याय होता है। इस दुर्घटना की सूचना किसी प्रकार पुलिस को होगई कि बड़े बाबू बिला लायसेन्स पिस्तौल खरीद कर लाये हैं। पुलिस मौके पर जा पहुँची। घर की तलाशी हुई और पिस्तौल गोलियों सहित पुलिस ने पकड़ ली।"

"फिर ?"

"फिर बड़े बाबू गिरफ्तार कर लिये गये। भला सरकार ऐसे मनुष्य को क्यों छोड़ने लगी ? उन्हें पकड़ कर थाने लेजाने ही वाले थे कि मुआ निरञ्जनसिंह वहां पहुँच गया।"

"कौन निरञ्जनसिंह ?"

"मुआ निरञ्जन बड़े बाबू का मित्र है। वह समाचार पाते ही घोड़े पर दौड़ा आया और उसने बड़े बाबू को जमानत पर छुड़ा लिया।"

"यह कबकी बात है ?"

"अभी की। मुझे अभी पता चला है कि पुलिस ने बड़े बाबू का चालान कर दिया है और थानेदार अभीअभी वापिस शहर चला गया है।"

"बहिन, कितने आश्चर्य की बात है !" सुषमा दोनों हाथों को मलते-हुए बोली।

"कितना घोर अन्धेर है ? ये लोग अब भी नहीं मानते। इन्हें भगवान का भी डर नहीं।"

"बहिन, ये भगवान से नहीं केवल जेल से डरते हैं।" शारदा बोली।

"तो क्या अब बड़े बाबू को जेल होगी ?" सुषमा ने आश्चर्य से पूछा।

"तो क्या उसे राज-तिलक होगा ? ऐसे अपराधी का यही दण्ड है।"

"फिर तो नीलिमा के होश ठिकाने आजायंगे। दुश्मनों से बदला लेने का कैसा बदला मिला!"

"बहिन! अब तो मेरी बात ठीक है ना कि जो दूसरों के लिए गड्ढे खोदता है स्वयं उसमें गिरता है।" और दोनों खिल-खिला कर हँस पड़ीं।

चौदहवां परिच्छेद

जब मनोहर बाबु घर पहुँचे तो नीलिमा घबराई घबराई आई और आँखों में आँसू भर कर बोली,

"सुना है कि पुलिस आई और तलाशी हुई ?"

"पुलिस ने आकर तलाशी ली थी, क्योंकि उन लोगों को इस बात की तनख्वाह मिलती है, परन्तु तुम क्यों इतनी घबराई हुई हो ?" मनोहर बाबू ने पूछा।

"बात भी तो घबराने की है। आज तक हमारे घर में ऐसा कभी नहीं हुआ था।"

"परन्तु यह तो इस बात का कोई प्रमाण नहीं कि अब भी न होगा।"

"मगर आपने तो दूकान में कोई ऐसी चीज नहीं रखी थी?"

"इससे क्या होता है। सरकार का क़ानून यह नहीं। क़ानून यह है कि यदि किसी के घर से कोई नाजाइज चीज़ मिले तो

वह अपराधी होता है।"

"क्या वस्तु मिली ?"

"एक गोलियों से भरा पिस्तौल।"

"गोलियों से भरा पिस्तौल !" वह चिल्ला कर बोली, "हा राम ! यह वहाँ कैसे आगया ?"

"किसी ने रखा होगा, और क्या ?" मनोहर बाबू बोले।

"किस ने ?" उसने घबराई हुई आवाज़ में पूछा।

"यह तो मुझे नहीं मालूम। यदि मुझे उसके नाम का पता होता तो उसकी चोरी किस काम की थी। कोई आदमी होगा, अब मैं क्या जानूं।"

"परन्तु अपराध कोई करे और भोगें आप" !

"तू बहुत भोली है नीलिमा। उसने अपराध इसीलिये किया है कि मैं भोगूं, नहीं तो उसे हमारे घर या दूकान पर रखने से क्या लाभ था ?"

"फिर क्या हुआ ?"

"यही कि पुलिस ने तलाशी ली.........."

"उसे कैसे पता चला ?" नीलिमा ने पूछा।

"किसी ने सूचना दी होगी।"

"किसने ?"

"कह नहीं सकता। परन्तु शायद वही होगा जिसने यह नाजाइज़ हथियार रखा था।"

"आपने कहा नहीं ?"

"पगली, अंग्रेजी कानून अन्धा है। इसमें कहने सुनने की गुंजाइश नहीं। हथियार हमारे घर से निकला। वहाँ किसने रखा ? क्यों रखा ? यदि मैं यह सिद्ध कर सकूँ कि मैंने नहीं, किसी और ने रखा है तो मैं बच सकता हूँ। यदि मैं यह सिद्ध न कर सका तो मैं दण्ड के योग्य हूँ और अपराधी भी हूँ।"

"यह तो अन्धेरगर्दी है।"

"यह कानून है।"

"भाड़ में जाय ऐसा कानून। परन्तु अब क्या होगा ?" नीलिमा बोली।

"वही जो मैंने बतलाया। वे मुझे अभी कैद करके शहर ले जा रहे थे..........."

"हथकड़ी लगा कर ?"

"नहीं। लाला अनन्तराम के खानदान पर इतनी कृपा तो वे करते हैं कि हथकड़ी न लगाएँ। केवल हिरासत में ले लिया था कि इतने में निरञ्जनसिंह खबर पाकर भागे-भागे आये और मुझे जमानत पर छुड़ा लाये। अब मुक़द्दमा चलेगा। और यदि मैं स्वयं को निर्दोष सिद्ध न कर सका तो मुझे दण्ड मिलेगा, जेल और जुर्माने का।"

"जेल !" नीलिमा के मुँह से चीख निकल गई। "जेल होगी और जुर्माना ! आप को जेल ?"

"क्यों ? जेल पशुओं को नहीं, मनुष्यों को होती है और न जाने कितने मनुष्यों को इस प्रकार बिना अपराध जेल का दण्ड

भोगना पड़ता है।"

"परन्तु यह तो अत्याचार है।"

"कोई अत्याचार नहीं। सुनो, नीलिमा, यहाँ कोई अत्याचार नहीं। कोई दया नहीं। इस संसार में कोई किसी का शत्रु नहीं, कोई मित्र नहीं। मनुष्य जब ऐसा कहते हैं कि हम किसी के मित्र अथवा वैरी हैं तो वे स्वयं को धोका देते हैं। उनके किये कुछ नहीं होता। यह सब भाग्य का फेर है। मनुष्य को कर्मों का फल भोगना पड़ता है। अच्छे बुरे का दण्ड उसे यहां ही मिल जाता है। यह हमारे वश की बात नहीं। यह ईश्वर के हाथ में है।"

"परन्तु हमने ऐसा कौन-सा पाप किया है?" वह रोकर बोली।

"कौन जानता है? परन्तु इसमें रोने की क्या आवश्यकता है? देखो नीलिमा, दुनियाँ में सुख और दुःख सदा नहीं रहते। दोनों आते हैं और चले जाते हैं। बिलकुल धूप और छाया के समान। न दुःख सदा रहता है और न सुख। जब हम इतना सुख भोग रहे थे तो कब यह सोचते थे कि हम सुख क्यों भोग रहे है? तब तो हम यह समझते थे कि सुखी रहना हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है। यह मनुष्य का स्वभाव है और इसी कारण वह दुःखी होता है। जैसे हमने सुख भोगा है, ठीक वैसे ही हमें दुःख के लिये तैयार रहना चाहिये।"

फिर वे चुप होगये और कुर्सी पर बैठकर सोचने लगे। कुछ देर बाद बोले,

"शायद मैंने तुम्हें पहिले भी कई बार बतलाया है कि जो

व्यक्ति संसार में आता है उसे सुख और दुःख अवश्य ही भोगने पड़ते हैं। भागवान बुद्ध ने इस सचाई को और संसार में फैले हुए दुख को देखकर ही निर्वाण प्राप्त करने के लिये दुनियां को त्याग दिया था। दुनियां में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ जिसे दुःख न भोगना पड़ा हो। किसी बड़े मनुष्य को देख कर साधारण मनुष्य यह विचार करते हैं कि वह बड़ा सुखी होगा। उसे किसी प्रकार का कष्ट न होगा। उसे किसी वस्तु की आवश्यकता न होगी और वह बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत कर रहा होगा। परन्तु वास्तव में दशा इसके बिलकुल विपरीत होती है। बड़े आदमियों को बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं। उनकी बड़ाई इस बात में होती है कि वे दुःख को बिना शोर मचाये सहन करते हैं। अब भला राम और कृष्ण को तो अवतार माना जाता है। राम को किस वस्तु की कमी थी? उनके संकेत पर क्या नहीं हो सकता था? वे तो एक राजा थे, परन्तु उन्हें बारह वर्ष जङ्गल में रहकर कितने दुःख झेलने पड़े; बिना झिझक, बिना आँसू बहाये। कृष्ण को कितने राक्षसों से युद्ध करना पड़ा। ईसा का जीवन दुःख झेलने के अतिरिक्त और क्या था? आज गाँधी जी को लेलो। दुनियां का सब से बड़ा आदमी है। परन्तु उनकी महत्ता अमीरी से नहीं, क्योंकि वह अपने पास एक पैसा भी नहीं रखते। शरीर से नहीं, क्योंकि वह साधारण-सा शरीर रखते हैं। बहुत बुद्धि से नहीं, क्योंकि दुनियां में उन से बहुत बड़े दार्शनिक और विद्वान् पण्डित हैं। वस्तुतः उनकी बड़ाई इस बात में है कि वे सबसे

अधिक दु:ख झेलते हैं। उनमें और दूसरों में इतना अन्तर है कि दूसरे अपने लिये झेलते हैं और वे दूसरों के लिये। परन्तु यही उनकी बड़ाई है। वाह बापू" ! वे सामने दीवार पर लगी हुई गाँधी जी की तस्वीर को देखकर बोले। "तुम्हारी गणना संसार के सब से बड़े मनुष्यों में श्रेष्ठतम होगी। उन बड़े मनुष्यों में से कुछ तो केवल धर्मों के प्रवर्त्तक थे, कुछ केवल राजनैतिक नेता थे, कुछ ने सीमित सम्प्रदायों के लिये काम किया। परन्तु तुम्हारा काम सब से बड़ा था। तुमने जीवन के हर भाग में प्रेम की महत्ता और श्रेष्ठता पर बल दिया। तुमने हमें भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार और मत रखने पर भी, प्रेम से रहना सिखाया और मनुष्य की श्रेष्ठता और मनुष्यता को उभारा। तुमने संसार की परतंत्र, निर्धन, पददलित और पिछड़ी जातियों और देशों के लिये एक ऐसा सन्देश दिया जो सदैव उनकी आत्मा में नव-जीवन, उनके विचारों में उच्चता और उनकी चिन्ताओं में साहस भरता रहेगा। संसार के सब अवतारों और पैग़म्बरों को तुमने बहुत पीछे छोड़ दिया। धन्य है तुम्हें।"

फिर अचानक एक ओर दरी पर बैठी नीलिमा को देखकर बोले।

"अजी, तुम यहीं बैठी हो, मैं न जाने क्या २ बोलता रहा।"

"परन्तु मेरे लिये एक-एक शब्द, घाव पर मरहम का काम कर रहा था। आज आपने मुझे एक नया संदेश दिया, एक नई शक्ति प्रदान की और मुझे कष्ट झेलने के योग्य बनाया।"

"सच ! तो उठो, पानी का एक गिलास पिलाओ।" वे हँसकर बोले।

पन्द्रहवां परिच्छेद

मुन्शीराम को घर आते देख, भगतसिंह शारदा से बोले,

"शारदा, पण्डितजी के लिए एक ठण्डा शरबत का गिलास बनवाओ और स्वयं सुषमा के पास चली जाओ। अभी-अभी उनका संदेश आया है कि वह अकेली हैं। वह उदासी महसूस कर रही हैं।"

शारदा ने मंगल से शरबत बनाने को कहा और स्वयं सुषमा के घर चली गई।

मुन्शीजी शरबत का गिलास पीने के बाद बोले,

"अन्दर बैठें?"

"यहाँ बैठक में भी कोई आपत्ति नहीं," भगतसिंह बोले। "परन्तु यदि तुम चाहते हो तो अन्दर ही चले चलते हैं" और वे दोनों अन्दर के कमरे में चले गए। भगतसिंह ने मंगल को आज्ञा दी कि और कोई अन्दर न आने पावे।

लकड़ी के तख्ते पर बैठते हुए भगतसिह ने पूछा,

"कहो पण्डितजी, क्या समाचार है" ?

"सब ठीक है।" पण्डितजी बोले। फिर कमरे के चारों ओर नज़र दौड़ा कर बोले, "सब बड़े बड़े वकीलों के मुंह बन्द कर आया हूँ।"

"वे क्या बोले ?"

"बोलते क्या चौधरी साहब ? बात यह है कि पैसे में बड़ी शक्ति है। जहां कुछ और काम नहीं कर सकता वहां पैसा कर सकता है। पहिले तो उनमें से कुछ बहाने करने लगे। परन्तु भला मेरे सामने उनकी क्या चल सकती थी ? अन्त में उन्हें परास्त होना पड़ा।"

"कितने वकील तोड़े ?"

"चोटी के तो चार हैं; उन सब को तोड़ लिया। दूसरे दर्जे के दस हैं; उन्हें भी खरीद आया हूँ। तीसरे दरजे के तो मेंढ़कों की भांति फिरते हैं, और वे मेंढ़कों की भान्ति ही टर्रायेंगे।"

"अब आपको बिल्कुल विश्वास है कि मनोहर बाबू के लिए कोई वकील तैयार न होगा ?"

"पक्का विश्वास है। आप शायद इन वकीलों को नहीं जानते। पैसा ही इनका धर्म है, पैसा ही इनका कर्म है। जब इन्हें आवश्यकता से अधिक और बिना परिश्रम के इतना धन हाथ आ गया, तो फिर क्यों व्यर्थ में सर खपाई करते फिरेंगे ?"

"अब देखूँगा मनोहर बाबू अपने छुड़ाने का क्या प्रयत्न

करते हैं, " भगतसिंह मूंछों को ताव देते हुए बोले।

"अब केवल एक ही प्रयत्न कर सकते हैं।"

"क्या ?"

"कि चुपचाप जेल-यात्रा करें, " मुन्शीजी बोले।

इस पर दोनों ने खूब जोर से अट्टहास किया।

"मुन्शीजी !" भगतसिंह बोले।

"जी"।

"एक बात अवश्य है कि स्कीम खूब चल रही है। मुझे स्वप्न में भी यह विचार न था कि रिवाल्वर इस सफलता से रखा जायगा और शिकार जाल में फँस जायगा।"

"वास्तव में" मुन्शीजी बोले, "आपको अभी मुन्शीजी की शक्ति पर संदेह है ?"

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं।"

"चौधरी साहब !" मुन्शीजी मूंछों को ताव देते हुए और सिर हिलाकर बोले, "हमारा तो यह है कि जिसके पीछे पड़ जांय उसे समाप्त करके ही छोड़ते हैं। एक बार आपको वचन दिया है। जब यह काम करना ही है तो फिर आपत्तियों की चिन्ता क्यों करें ? उनके घर रिवाल्वर रखवाना तो कोई बात नहीं, यदि आप कहें तो गांव में किसी के घर आग लगवा सकते हैं, जिसे चाहो मरवा सकते हैं, कौन सी बात है जो हम नहीं कर सकते ?"

"आपसे यही आशा थी, इसीलिए मैंने आपको इस काम

के लिए चुना।" वे जेब में हाथ डालकर कुछ निकालने लगे और बोले, "यह लीजिये आपका इनाम। १०००) रुपया। जिस दिन वे जेल जायेंगे १०००) आपको उस दिन मिलेगा।"

मुन्शीजी ने बिना कुछ कहे रुपये उठा लिए और उन्हें धोती की तह में दबा लिया। फिर कहने लगे,

"खूबी की बात यह है कि किसी भी मनुष्य को इस बात का विश्वास तक नहीं हो सकता कि यह कार्य किसने किया है। इसके विपरीत हर आदमी यह कह रहा है कि मनोहर बाबू ने रणबीर को मारने के लिए यह षड्यन्त्र रचा था और सब इन्हें ही गालियां दे रहे हैं।"

"यह तो वस्तुतः खूबी की बात है और प्रशंसा के योग्य। आपने प्रोपेगेन्डा का अच्छा जाल फैलाया है।"

"चौधरी साहब! आज का संसार ही इसी चीज पर कायम है। जब प्रोपेगेन्डा से मूंगफली का तेल, असली घी से अधिक बिकता है, और नकली वस्तुएँ असली वस्तुओं से अधिक मूल्य पाती हैं तो मनोहर बाबू के विरुद्ध प्रचार करके, उन्हें कैसे बदनाम नहीं किया जा सकता? और फिर इस बात के लिए हमें अंग्रेजों को धन्यवाद देना चाहिये, यद्यपि उनका कहना है कि जर्मन इस बात में बड़े हैं।"

"लेकिन मुनीमजी!" भगतसिंह बोले, "आपने तो जर्मनों की भी ऐसी की तैसी कर दी।"

और फिर दोनों ने जोर का अट्टहास किया। फिर भगतसिंह बोले

"अच्छा परिडतजी, आप तो माला फेरिये कि मनोहर बाबू अन्दर हों, और उनका घमराडी सिर नीचे हो। मैं तो यह चाहता हूँ कि रणवीर के लौटने से पूर्व ही उन्हें जेल हो जाय, ताकि वे इस बात को होनी समझ लें।"

"भगवान् चाहे तो ऐसा ही होगा।" परिडतजी ने मुंछों को ताव देते हुये कहा। "लेकिन आप रणवीर बाबू को एक विस्तारपूर्वक पत्र लिख दीजिये जिसे पढ़कर वह यह समझें कि सारा दोष मनोहर बाबू का है और उन्हें दराड अवश्य मिलेगा।"

"मैंने पत्र पहिले ही लिख दिया है," भगतसिंह ने उत्तर दिया।

सोलहवां परिच्छेद

मुकद्दमा चलने लगा और चलता रहा। परन्तु अधिक समय तक उसके चलने की आशय न थी क्योंकि मनोहर बाबू की ओर से कोई गवाह न था। घर के नौकर तो लगभग पहिले ही जा चुके थे। केवल एक दो शेष थे, वे क्या गवाही देते। वकीलों को प्राप्त करने का उन्होंने प्रयत्न किया, परन्तु उन्हें पता चला कि इनमें से किसी को अवकाश ही नहीं। इसलिये उन्होंने केवल एक काम किया, अपने आपको भाग्य के या मजिस्ट्रेट के अर्पण कर दिया और मजिस्ट्रेट ने उन्हें दो वर्ष की जेल और पाँच सौ रु० जुर्माने की सजा दी।

नीलिमा ने यह खबर सुनी तो मूर्छित हो गई। दो वर्ष और पाँच सौ रुपया! क्या यह कानून है? जुर्म कोई करे और दण्ड किसी को मिले! यह तो सरासर अन्याय है। क्या ये अदालतें हैं? सुनते तो यह थे कि अंग्रेजी राज में पूरा २ न्याय होता है।

दूध का दूध, पानी का पानी किया जाता है। परन्तु यहां पर उलटा बात हो रही है। वकील भी हमारा केस लेने को तैयार नहीं, क्योंकि उन्हें दूसरे केस लड़ने हैं। परन्तु गांव में तो यह अफ़वाह है कि उन्हें रिश्वत दी जा चुकी है। रिश्वत किसने दी? रणवीर तो यहां है नहीं। फिर किसे आवश्यकता थी कि इतनी चिन्ता करे?

अब उस बेचारी के लिये कितनी मुश्किल थी। दो बच्चे, एक भैंस, और सारे घर की सँभाल और देख-रेख। नौकर है परन्तु मूर्ख। मुनीमजी थे, वे बेचारे सेवा करते रहे, परन्तु अन्त में उन्होंने भी काम छोड़ दिया। वेतन का प्रश्न ही बहुत जटिल था; कहाँ से दिया जाय? उसे भी हटा दिया गया। अब उसके सामने अन्धकार ही अन्धकार था। एक भारतीय नारी का जीवन जिसका पति उसके पास नहीं, बड़ा सङ्कटमय हो जाता है। वह घर से बाहर नहीं जा सकती। उसे दूसरों की दृष्टि खाने को तैयार रहती है। सम्बन्धी भी उससे मुँह मोड़ लेते हैं। यदि उसके पास पैसा है, आभूषण हैं, तो कुछ सम्बन्धी या अन्य पड़ोसी उसके आगे-पीछे फिरेंगे, उसकी खुशामद करेंगे, उसकी हर आज्ञा सिर-माथे पर लेंगे और उसके माल को हड़पने का कोई उपाय करेंगे। ऐसे भी लोग होते हैं जो इन इच्छाओं के स्वप्न पूरे न होने पर उनको बदनाम करते हैं। उनके आचरण और चरित्र के विषय में भिन्न-भिन्न प्रकार की अफ़वाहें फैलाते हैं। और ऐसी अफ़वाहों पर तुरन्त ही सब विश्वास कर लेते हैं, क्योंकि उन

औरतों के पास उन्हें खण्डन करने का कोई साधन नहीं होता। और यदि हो भी तो लोग उनका भरोसा नहीं करते। एक विधवा औरत के लिये जीवन आपत्तियों से भरा रहता है। कोई उसका सहायक नहीं होता, कोई उसका हमदर्द नहीं होता, और विशेष कर यदि कोई मनुष्य जानबूझ कर उसके या उसके परिवार के पीछे हाथ धोकर पड़ा हुआ है, तो वह विवश हो जाती है।

अब नीलिमा यह जानती थी कि यदि कोई मनुष्य उसके विरुद्ध काम करता है तो वह रणवीर है। वह यह न जान सकी थी कि रणबीर के उनके विरुद्ध होने का क्या कारण है। हजार बार विचारने पर भी उसे कोई उचित कारण समझ में नहीं आया। परन्तु उसका विचार था कि बंटवारा होजाने के बाद स्थिति सुधर जावेगी और यदि दोनों भाई एक दूसरे के मित्र न होंगे तो दुश्मन भी न होंगे। परन्तु बंटवारे के पश्चात् यह दशा देख कर वह आश्चर्य-चकित होगई। दशा सुधरने के स्थान पर और भी बिगड़ती गई। और उसके परिणामस्वरूप उसके पति को जेल की हवा खानी पड़ी।

क़ैद के समाचार से उसे बहुत दुःख हुआ। उसके दिल में आया कि अपील करूं, परन्तु अपील के लिये भी आदमी की आवश्यकता थी। केवल उसके मायके में आदमी थे। परन्तु पिता जी का देहान्त हो गया था, उसके भाई कुलदीप का भी स्वर्ग-वास हो गया था। छोटा भाई रणजीत था, परन्तु एक तो उसे अपने काम से अवकाश ही न मिलता, दूसरे उसमें इतनी

सूझ-बूझ ही न थी, तीसरे बहिन की ओर उसका कोई ध्यान न था, और वह उसके लिये कोई मुसीबत झेलने को तैयार न था। और कोई रिश्तेदार ऐसा न था जो उनके लिये व्यर्थ में आपत्ति में पड़े।

दुनियां उसे एक अंधेरे कुएँ की तरह मालूम दे रही थी। कोई मार्ग न सुझाई देता था। दो बच्चे और वह भी छोटी आयु के। सारा गाँव आबादी से भरपूर था, परन्तु कोई ऐसा न था जिसे वह अपना कहसके, जिसके सामने दुखड़ा रोसके, जिसके सामने अपना हाल बयान करसके। अब केवल एक ही आधार था जिसके सामने वह प्रार्थना करने का साहस कर सकती थी और वह मनुष्य नहीं, पत्थर की मूर्ति थी। वह कृष्ण जी की, इस पत्थर की मूर्ति की आरती उतारती थी। उसके सामने पल्लू फैलाकर बैठती और प्रार्थना करती। दुःख की पराकाष्ठा में भी उसका मूर्ति पर से विश्वास न हटा था। जीवन में बार-बार परास्त होने और आपत्ति पर आपत्ति उठाने के पश्चात् भी वह अपने इष्टदेव का ध्यान करती। वस्तुतः उन दिनों उसकी शरण लेने से उसे शान्ति प्राप्त होती। जब उसे चारों ओर काले बादलों और अंधेरी रात के सिवाय कुछ न दिखाई देता तो देवता की शरण में आकर उसके दिल को कुछ धीरज मिलता और उसे कुछ आशा बँधती। वह अनुभव करती कि दुःख के अथाह समुद्र में गिरने पर भी उसे तैरने का सहारा मिल गया है और वह इस सहारे की सहायता से समुद्र को पार कर सकेगी।

पहिले कई दिन तो उसकी दशा बहुत खराब रही। पति के घर पर होने से दुःख का अनुभव ही न होता था। उसे देख कर वह कष्टों को भूल जाती थी। फिर उसकी सेवा में काफ़ी समय बीत जाता। परन्तु अब तो घर खाने को दौड़ रहा था। अब किस से दिल खोल कर बातें करे, किसे जाकर अपने दुखी दिल की दशा का वर्णन करे और किस से शान्ति और धीरज की बातें सुनें ?

कृष्ण की मूर्ति के बाद वह अपने पति की तस्वीर के पास आकर खड़ी हो जाती और न जाने कितनी देर वहाँ खड़ी रहती। उसकी आँखों से लगातार आँसू ही बहते रहते और वह हिच-कियाँ भरती रहती। अब आँसू थमगये, हिचकियाँ बन्द हो गईं, परन्तु दिल को शान्ति फिर भी न हुई। हाँ, एक बात अवश्य हो गई कि मूर्ति के सामने बैठकर उसने रोना, चिल्लाना और गिड़गिड़ाना बन्द कर दिया। उसकी जगह अब वह रामायण का पाठ करने लगी। रामायण की कहानी में राम और सीता जी के बनवास और उसके बाद अकेली सीताजी के बनवास की कहानी से उसे कितनी शान्ति प्राप्त हुई। तो इसका अर्थ यह है कि उससे पूर्व भी स्त्रियों को ऐसे और इससे भी अधिक दुःख में से गुजरना पड़ा। वह तो सीता से बहुत कम दुःख में है। सीता को तो बन में ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में जाकर रहना पड़ा, जङ्गलों में, जहाँ जँगली जानवरों के अतिरिक्त कोई साथी न था, जहाँ जीवन की सुविधाएँ भी सुलभ न थीं, और जहाँ जँगली फलों के अतिरिक्त

खाने को कुछ न था। अपने घर में उसे इतना कष्ट तो नहीं। यहाँ भयानक मनुष्य तो अवश्य हैं, परन्तु जँगली डरावने पशु तो नहीं। फिर सीताजी ने दुःख के सामने कभी हार न मानी। पहिले तो पति के साथ उसने दुःख भोगा, कष्ट सहे, आपत्तियों का सामना किया। अगर राम दुःख उठाते समय कुछ न बोले और एक वीर मनुष्य की भांति दुखों का सामना करते रहे तो सीताजी भी तो एक वीर महिला की तरह अपने पति के साथ-साथ सब कष्टों को झेलती रहीं। सीता जी इसी लिये आदर्श स्त्री मानी जाती हैं। रामायण के पढ़ने का असली अर्थ तो यही है कि जीवन के संघर्ष में दुनियादार किस प्रकार आपत्ति से लोहा ले सकें। घरों में रामायण के प्रचार करने का लाभ ही यह है कि हम लोग भी अपने जीवन को सुधार सकें, और इसे आदर्श बना सकें। ये विचार उसे असीम शान्ति और धैर्य प्रदान करते।

न जाने क्यों कुछ दिनों के पश्चात् उसके विचारों में भी परिवर्तन आने लगा। उसने अपने जीवन में भी जैसे एक परिवर्तन अनुभव किया। जीवन का भार जैसे धीरे-धीरे कम हो गया और वह ऐसे अनुभव करने लगी, कि वह एक स्वतन्त्र पक्षी की भांति हवा में उड़ रही है, अकेली, और जिसका साथी, सदैव के लिए नहीं, कुछ समय के लिए उससे जुदा हो गया है।

अब तक वह अपने पति के साथ जीवन के दुःखों को सहती रही थी और उसी के साथ जीवन का सुख आराम भोगती रही थी। अब आज उसका पति तो जेल का दुःख सहन कर रहा है

और वह आराम से घर में रह रही है। उसे अपनी इच्छा के अनुसार खाना, पीना, पहिनना मिलता है। नरम बिस्तर पर सोती है और पति के वियोग के अतिरिक्त उसे कोई कष्ट नहीं है।

यह स्वार्थ नहीं तो क्या है? वह अब भी उसका साथ देगी। यदि वह जेल में दुःख भोगता है तो यह भी वैसी ही तकलीफ उठायेगी। यदि उसे कोई सुख और आराम प्राप्त नहीं है तो वह भी उसे लात मारेगी। इस कारण उसने जेल के जीवन का अपने विचार से अनुमान लगाया। उसने जीवन के सम्पूर्ण कष्टों का चित्र अपनी आँखों के सामने खींचा आर उसने वे ही कष्ट अपने जीवन में सहना आरम्भ कर दिये। वह प्रातः चार बजे उठती और चक्की से आटा पीसती। उसके घर चक्की तो पड़ी थी, क्योंकि दालें, दलिया, मसाला आदि वह घर पर ही पिसवाती थी परन्तु अब उसे स्वयं प्रयोग में लाने लगी। उसने इस बात का निश्चय कर लिया कि जिस दिन वह हाथ से आटा नहीं पीसेगी, उस दिन भोजन नहीं करेगी। चक्की पीसने के पश्चात् वह स्नान आदि करती, और उसके बाद पूजा-पाठ। फिर बच्चों की ओर ध्यान देती। उनके और अपने कपड़े स्वयं धोती। खाना स्वयं बनाती और बर्तन भी स्वयं मांजती। दोपहर का आराम उसने बिलकुल ही बन्द कर दिया। दोपहर को अवकाश मिलते ही वह चर्खा कातने लगती। रात को सोने से पूर्व भी वह चर्खा कातती। इस प्रकार उसने अपने जीवन को एक विशेष सांचे में ढाल लिया। इससे उसे दोहरी शान्ति मिलती। एक तो

उसके दिल को यह ढाढस मिलता कि वह अपने पति के दुःखों की हिस्सेदार बन रही है। इससे जेल में उसके पति की आत्मा को, और घर पर उसकी आत्मा को शान्ति मिलती। और दूसरे अब रोने-धोने के बजाय वह कुछ काम में लगी रहती। जीवन अब पहिले से अच्छा मालूम होने लगा। अब रोना धोना बिलकुल बन्द हो गया। वह इस जीवन से इस प्रकार प्रभावित हो गई जैसे आरम्भ से ही वह इस प्रकार रह रही हो।

पहिले तो उसे रणवीर और सुषमा पर क्रोध आता परन्तु अब उसे इन पर क्रोध करने का समय ही न मिलता और न उसे क्रोध की याद आती। वह काम में इतनी मग्न रहती कि उसे केवल इस विशेष काम के अतिरिक्त कुछ और दिखाई ही न देता। हाँ, कभी-कभी रात को सोते समय जब उसे पति की याद आती और रणवीर और सुषमा पर क्रोध आने को होता तो वह अपने आप को समझाती। न जाने कहाँ से उसे मनोहर बाबू की बातें याद आ जातीं, वही सुख-दुःख भोगने की बातें। जब जीवन में सुख-दुःख का चोली-दामन का साथ है, और सुख के पश्चात् दुःख और दुःख के पश्चात् सुख आता है या सुख में दुःख और दुःख में सुख मिला रहता है, तो फिर किसी दूसरे को इसके लिये अपराधी क्यों ठहराया जाय? यदि यह दुःख न आता तो कोई दूसरा दुख आता। यदि अब इसके कारण देवर और देवरानी हैं, तब कोई और होते। इसमें उन बेचारों का क्या अपराध? इन्हें व्यर्थ में दोषी क्यों समझा जाय? जब जीवन में सब को दुख

अवश्य भोगना ही है तो क्यों न उसे चुपके से सहन किया जाय। चीखने, चिल्लाने या किसी को दोषी ठहराने और किसी पर अपराध लादने के बजाय, क्यों न वीरता और साहस से, शान्ति और धैर्य से उस दुःख का सहन किया जाय। मैंने रणवीर और सुषमा से कितनी ज्यादती की है कि अपने दुःखों का कारण उनको मानकर, सब बोझ उन ही पर लादने का प्रयत्न किया। यह कितनी बुरी बात है। अच्छा आज से मैं प्रतिज्ञा करती हूँ कि भविष्य में कभी भी ऐसा कुविचार पास न आने दूँगी और उन बेचारों को कभी अपराधी अथवा दोपी न ठहराऊँगी।

परन्तु एक बात अवश्य है। यदि मेरे रिश्तेदार या दूसरे आदमी मेरे पति के लिये अपील न करसकें, तो मैं क्यों न इसके लिये प्रयत्न करके देखूँ। सम्भव है मेरा परिश्रम सफल हो जाय और वे छूट सकें। अच्छा मैं इसके लिये अवश्य प्रयत्न करूँगी।

सत्रहवां परिच्छेद

शारदा की भगतसिंह से शादी हुए एक युग बीत चुका था। परन्तु दर असल आरम्भ में उसके प्रेम का केन्द्र भगतसिंह नहीं, चञ्चलसिंह था। चञ्चलसिंह उसी के गाँव का रहने वाला था। गाँव का नाम था बीनापुर, अमानतपुर से पन्द्रह मील दूर। शारदा के भाई निर्मलसिंह और चञ्चलसिंह में घनिष्ठ मित्रता थी। निर्मलसिंह शहर में पढ़ता था और वहाँ जिस मुहल्ले में वह रहता था वहीं उसका प्रेम किसी लड़की से हो गया। वह लड़की उसकी जाति की न थी। परन्तु निर्मल कहता कि प्रेम में जाति काम नहीं आती। शारदा हँस कर कहती "तो और क्या काम आता है?" इस पर निर्मल एक आह भरता। कभी-कभी शारदा भाई से मिलने शहर जाती तो उस लड़की को देखती। उस का नाम था सुशीला। वह अपने भाई का सन्देश लेकर सुशीला के पास जाती और सुशीला का सन्देश भाई को लाकर देती। निर्मलसिंह

और सुशीला का विचार था कि शारदा अभी बच्ची है और इन बातों से अपरिचित है। परन्तु शारदा इन बातों में ख़ूब मज़ा लेती, और दोनों के दिलों को समझने का प्रयत्न करती। कभी-कभी सुशीला और निर्मल की छिपकर मुलाकात होती, और इनका एक-एक शब्द उसके हृदय-पट पर अङ्कित हो जाता। जब वह लौटकर गाँव आती तो अपनी सहेलियों को यह बातें सुनाती। फिर वे ड्रामा करतीं। वह स्वयं सुशीला बनती और दूसरी लड़की निर्मल।

"सुशीला! तुम नहीं समझतीं कि तुम्हारे बिना जीवन दूभर हो रहा है?" निर्मलसिंह कहता।

"निर्मल!" सुशीला आह भर कर कहती। "तुम्हें अपने दिल का क्या हाल बताऊँ? दिन-रात, सुबह शाम, हर पल, हर घड़ी, तुम्हारी ही तस्वीर मेरे दिल में रहती है। तुम्हारे बिना घर खाने को दौड़ता है।"

"सुशीला!" निर्मलसिंह उसका हाथ अपने हाथ में थाम कर कहता—"कालेज में जरा भी दिल नहीं लगता। पहिली बात यह कि मैं कालेज जाता ही नहीं, यदि जाता हूँ तो क्लास में नहीं जाता और यदि वहाँ जाता हूँ तो प्रोफ़ेसर के लेक्चर को ख़ाक नहीं समझ सकता। वे बोलते जाते हैं और मुझे केवल उनके ओठ हिलते दिखते हैं, और कभी-कभी तो वह भी नहीं।"

"क्यों?" वह हैरानी से पूछती।

"क्योंकि आँखों के सामने किसी और का चित्र नाचने लग

जाता है। प्रोफ़ेसर की जगह भी मुझे तुम ही दिखाई देती हो।"

"और यदि कभी तुम प्रोफ़ेसर से ऐसी बातें करने लग जाओ, जैसे मुझ से कर रहे हो, तो ?"

"एक दिन ऐसा ही तो हुआ" निर्मल हँस कर बोला।

"कैसे ?"

"अंग्रेजी का घण्टा था। प्रोफ़ेसर साहब एक कहानी पढ़ा रहे थे, जिसमें साधारणतया एक लड़के और एक लड़की के प्रेम का वर्णन था। प्लाट था दो लड़के और एक लड़की, या दो लड़कियाँ और एक लड़का। प्रेमी प्रेमिका से बातें कर रहा है, और उसकी सुन्दरता की सराहना भी। उस समय मुझे तुम्हारी याद आगई। मैं क्लास, कमरा, प्रोफ़ेसर सब की याद भूल गया। हर जगह तुम ही तुम नजर आने लगीं, और यह मालूम हुआ कि प्रोफ़ेसर की जगह तुम खड़ी हो। अचानक तुमने प्रश्न किया।

"क्या तुम समझ रहे हो ?"

"मेरी जान!" मैंने कहा—"समझने की आवश्यकता ही क्या है, जब तुम मेरे सामने हो, तो फिर और कोई इच्छा रह ही क्या जाती है ? आह ! केवल यही जी चाहता है कि तुम्हारी बलाएँ ले लूँ।"

"और न मालूम क्यों अनुभव हुआ कि मेरे चारों तरफ लोगों की भीड़ अट्टहास कर रही है और तुम क्रोध से आँखें निकाले मेरी ओर देख रही हो। मैं घबराया। फिर मैंने ज़ोर से आँखें मलीं। क्या देख रहा हूँ कि तुम ग़ायब होगई हो और

तुम्हारी जगह प्रोफ़ेसर साहब खड़े हैं, और भीड़ के बजाय क्लास के लड़के हँस रहे हैं। प्रोफ़ेसर साहब गरज कर बोले—

"तो आजकल यह हाल है? मिस्टर इलाज कराओ नहीं तो मुश्किल पड़ जायगी।"

इस पर खूब क़हक़हा पड़ा।

"यह तो बड़े मजे की बात है।" सुशीला हँस कर बोली।

"प्यारी, यह तो कुछ नहीं, बड़ी-बड़ी मजे की बातें हुईं और उनको फिर कभी सुनाऊंगा।"

"परन्तु निर्मल! तुम तो लड़के हो। बाहर भी घूम सकते हो। अधिक उदास होने पर बाज़ार में या बाहर जा सकते हो। हम लड़कियों के लिये बड़ी मुश्किल पड़ती है। घर में किसी से दिल की बातें कह नहीं सकतीं। यह माँ-बाप तो ऐसे निर्दयी होते हैं कि गला ही घोंट दें क्योंकि उन्होंने स्वयं कभी प्रेम किया नहीं था, दूसरों को करते देख नहीं सकते। चहार दीवारी के अन्दर ही घुट-घुटकर मरजाती हैं।"

"तुम स्कूल तो जाती हो।"

"सो तो ठीक है, परन्तु लड़कियों से भी तो दिल की सारी बातें नहीं की जासकती, और न हरएक लड़की से। किसी विशेष लड़की से भी कहने में बड़ी लज्जा आती है। तुम इन लड़कियों को नहीं जानते। उनका दिल इतना हलका होता है कि किसी बात को गुप्त नहीं रख सकतीं, और जब तक उसे दूसरों को बतला न देंगी चैन न लेंगी।"

"रोकें तो उफर जाय शिकम और ज्यादा।"

"क्या मतलब ?"

"मेरी जान ! यह ज़ौक़ का एक मिसरा है जो ऐसे लोगों के लिये कहा गया है।"

"पूरा शेर क्या है ?"

"जो पेट के हल्के हैं पचे बात कब उनसे रोकें तो उफर जाय शिकम और ज्यादा।"

"तो यह ज़ौक़ मियां स्कूल की इन लड़कियों के बारे में ही कह गये हैं ?" वह सिर हिला कर बोली।

"जी ! पूरे हजरत थे।"

"तो मैं कह रही थी" सुशीला निर्मलसिंह के कोट के बटन से खेलती बोली, "आओ कहीं भाग चलें।"

"कहाँ ?" निर्मल बोला।

"तुम्हारे गाँव", वह बोली।

"वहाँ कोई आपत्ति तो नहीं, केवल बापू के जूतों का डर है।"

"क्या बापू ऐसा न करते थे ?" सुशीला ने पूछा।

"परन्तु वे जूतों से डरते नहीं थे।"

"तुम क्यों डरते हो ?"

"बापू के बापू सादा मोची का जूता पहिनते थे और मेरे बापू एड़ी वाले बूँट।"

"तुम तो मजाक कर रहे हो।" वह रूठ कर बोली।

"अरी रूठ गईं ! इतनी-सी बात पर ! अगर विश्वास नहीं

तो जिस दिन बापू आवेंगे, उस दिन छिप कर उनका जूता देख लेना।"

"अरे यह बाहर कौन आ रहा है ?" वह घबरा कर बोली।

"तुम इस चारपाई के नीचे छिप जाओ। शायद यह नरोत्तम है।"

नरोत्तम ने अन्दर आते ही पूछा,

"क्यों मेरे यार! किससे बातें हो रहीं थी ?"

"बातें ? किसी से तो नहीं। यहाँ है ही कौन जिससे बातें करता।"

"मेरे यार शेर ने बिल्ली से दाव सीखा और बिल्ली पर ही टूटा। हम से सीखकर हम पर ही प्रयोग कर रहे हो ? सच बताओ कौन थी और कहाँ है ?"

"क्या पागलपन का दौरा तो शुरू नहीं होगया ?"

"तुम्हारे चेहरे से तो ऐसा ही लगता है। अभी देखो दौरा अपना पूरा पूरा असर दिखाएगा।"

इतना कहकर नरोत्तम जमीन पर बैठ कर चारपाई के नीचे देखकर बोला।

"मेरे यार यह कौन बैठी है ?"

"कौन ?" निर्मल घबरा कर और पसीना पोंछता हुआ बोला।

"यह ! यह है मेरी..............मेरी..............."

"कौन ? मलका मेरी ? आयरलैण्ड वाली या स्काटलैण्ड

वाली ?"

"मेरी कज़न", बड़ी कठिनता से उसने वाक्य पूरा किया।

"अच्छा कज़न ? अब समझा ? परन्तु मेरे यार ! कज़न को खाट के ऊपर बिठाने के बजाय, नीचे क्यों बिठा दिया ?"

और फिर अट्टहास करता हुआ बोला,

"देखो मेरे यार ! कज़न को लाओ या फुफी को, लेकिन उन्हें खाट के नीचे मत बिठाओ। दूसरे हम से कभी परदा न करो। दाई से पेट छिपाने से कोई लाभ नहीं होता। अच्छा, बाई बाई। अपने राम चलते भले।" यह कह कर वह चला गया।

इस पर बाकी लड़कियाँ खिलखिला कर हँस देतीं।

जब शारदा जवान हो गई, तो उसे भी अपने अन्दर एक तड़पते हुए दिल की धड़कनें अनुभव हुईं। उसे यह महसूस हुआ कि उसे भी ऐसे प्रेमी की आवश्यकता है जो इन धड़कनों को सुन सके और अपने दिल की सुना सके। उसे जीवन में कुछ खोया-खोया अनुभव होता। जब वह घर पर काम करती तो उसका दिल काम में न लगता। माँ समझती कि शायद थक गई है, परन्तु यह तो प्रति-दिन का हाल था। फिर उसने सोचा कि उसकी तबियत खराब है। उसे दवा-दारू की चिन्ता हुई। उसने शहर जाकर उसे दवा भी खिलाई, परन्तु मर्ज़ बढ़ता गया ज्यों ज्यों दवा की।

एक दिन शारदा नियमानुसार खेतों को रोटी लिये जा रही थी कि उसे ईख के खेत में से कोई आता हुआ दिखाई दिया।

वह घबराई। परन्तु वह चञ्चल था। चञ्चल उनका पड़ौसी था। वह उसके साथ बचपन में खेला करती थी। उस समय दिल की धड़कनों की उसे शिकायत न थी, मगर अब वह खूब जवान हो रहा था। कभी-कभी शारदा ने उसे पहिले भी घूमते-घामते देखा था। आज उसे इस प्रकार गन्ने के खेत से निकलता हुआ देख, वह आश्चर्य-चकित सी होगई। उन दोनों ने एक दूसरे को देखा। दोनों एक दूसरे के अल्हड़पन और भरी जवानी को देख कर विस्मित होगये। अचानक शारदा को ध्यान आया कि वह अकेली है। उसे जल्दी जल्दी रोटी लेकर जाना चाहिये। सीधी पगडण्डी पर जाने के बजाय वह खेत की आड़ के साथ होली। चञ्चल ने कुछ साहस से काम लिया। हिम्मत करके बोला—

"शारदा ...."

उसके मुँह से अपना नाम सुनकर एक क्षण के लिये उसकी आँखें बन्द होगईं। उसकी चाल धीमी होगई। परन्तु वह कुछ न बोली। उसने फिर आवाज़ दी और लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ उसके आगे पहुँच गया। फिर मार्ग रोक कर बोला—

"तुम उत्तर क्यों नहीं देतीं?"

"तुम कौन होते हो जी, दूसरे का मार्ग रोकने वाले?"

"लड़कियों की स्मरण-शक्ति बहुत कमजोर होती है।"

वह धीरे से मुस्कुरादी और आगे बढ़ी।

"तुम आगे नहीं बढ़ सकतीं।"

"क्यों, तुम यहाँ के चौकीदार हो क्या?" वह मुस्कुराकर

बोली ।

"राजा", उसने हँस कर कहा।

"तो राजा को क्या चाहिये ?"

"कर।"

"कर ? मैंने सोचा था ...."

"रानी। हैं न ? वह भी चाहिये।"

"तुम्हें ऐसा कहते शर्म नहीं आती।" वह गम्भीरता से बोली।

"मुझे ? बिलकुल नहीं। राजा लोगों को शर्म नहीं आया करती।"

"बड़े बे-शर्म होते हैं।"

"हाँ ! रानियों के मामले में।" फिर दोनों हँस दिये।

"अच्छा, अब मैं जारही हूँ। मुझे देर हो रही है। मुझे जाने दो।"

"मेरा कर तो दिये जाओ।"

"क्या ?"

"आज केवल लस्सी पिलादो। कल फिर बतलाऊँगा।"

"क्या प्रति-दिन नया कर लगेगा ?"

"प्रति-दिन।"

"खूब सीना-जोरी है ?"

"खूब।"

वह मुस्कुराई और उसने रोटियों का बण्डल नीचे रखा और

लस्सी की मटकी को दोनों हाथों से थाम प्यासे को लस्सी पिलाने लगी। उसने दोनों हथेलियों की ओख बनाली और उसे मुँह से लगा लिया। उसने लस्सी उडेलना शुरू किया और उढेलती रही। वह लस्सी पी रहा था। वह पिला रही थी। परन्तु दोनों के नेत्र परस्पर एक दूसरे के हार्दिक रहस्यों को जानने का प्रयत्न कर रहे थे।

मटकी खाली होगई। शारदा उसे जैसी की तैसी लटकाए खड़ी रही और वह भी ओख बनाए रहा। कितने ही मिनिट वे इसी प्रकार खड़े रहे। सहसा शारदा को ध्यान आया कि मटकी खाली होगई है। बोली,

"मटकी खाली होगई और तुम्हारी प्यास अभी तक बुझी नहीं?"

"यह प्यास मटकियों से बुझने की नहीं," उसने आह खींच कर कहा।

"तो क्या घड़ा लाऊँ?"

"ना ही घड़ों से।"

"तो फिर किस से बुझेगी?"

"चितवन की मादकता से।"

"हटो!" वह विचित्र ढङ्ग से गरदन हिला कर बोली। फिर कहने लगी—

"बहुत देर होगई। मरम्मत होगी। जाती हूँ।"

"परन्तु लस्सी का क्या कहोगी?"

"लस्सी का ? इसका क्या है, गिर पड़ी और मटकी टूट गई। ऐसे।" उसने जोर से मटकी को जमीन पर फैंक कर कहा "और लस्सी उलट गई।"

"तुम बड़ी नटखट हो।"

"और तुम चञ्चल।"

वह जोर से हँस पड़ा।

"इस तरह मत हँसो। कोई सुन लेगा।"

"लौटने तक मैं यहीं मिलूँगा।"

और वे इसी प्रकार प्रति-दिन मिलते रहे। प्रेम और कस्तूरी छिपाये नहीं छिपती। इनका प्रेम भी न छिप सका। सारे गाँव में बात फैलगई और सर्व-साधारण सी बात होगई। प्रत्येक यही चर्चा करने लगा। ग्राम का प्रेम बड़ा महँगा सौदा होता है। मनचले साहसी ही इसमें कूदते हैं। उन्हें बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सुना है कि प्रेमी से सब सहानुभूति रखते हैं। परन्तु वास्तव में उन्हें एक वस्तु अधिकता से मिलती है, और वह है गालियाँ। प्रेमी और प्रेमिका के माँ-बाप के शत्रुओं को अपने विरोधियों को बदनाम करने के लिये स्वर्णावसर प्राप्त हो जाता है। अन्य मनुष्य भी इनको प्रेम और प्यार से नहीं, अपितु घृणा की दृष्टि से देखते हैं। जिधर ये जांय उन पर अङ्गुलियाँ उठती हैं। ताने कसे जाते हैं और उनका अपमान किया जाता है। लोगों के विचार में ये व्यक्ति गाँव के दूसरे युवक और युवतियों का सदाचार बिगाड़ते हैं। इस कारण

उनके साथ किसी की सहानुभूति नहीं होती। फिर लड़के के माता-पिता पर जोर डाला जाता है कि वे अपने लड़के को या तो अपने बस में रखें या उसका विवाह करदें। नहीं तो उसे यह धमकी दी जाती है कि उसका सिर गञ्जा कर दिया जायगा। केवल वे धमकी ही नहीं देते अपितु लोग वास्तव में ऐसा कर भी बैठते हैं, अथवा उसे गाँव से बिल्कुल निकाल ही देते हैं। लड़की तो घर में रोक ली जाती है। उसकी स्वतन्त्रता पर पाबन्दियाँ लगादी जाती हैं। और कुछ उन्नतिशील देहाती तो ऐसी लड़कियों को कुटुम्ब का कलङ्क जानकर उन्हें कुछ पिला भी देते हैं, और वह तड़प-तड़प कर जान दे-देती है। तब कुछ लोग करुणा से पूर्ण गीत गाते हैं।

लड़की का तो यह हाल होता है। उधर यदि सच्चा प्रेमी है जो कि लाखों में एक मिलता है, वह भी सिर पर राख डालकर घर से बाहर निकल जाता है और सारी आयु ऐसे ही तड़प कर गँवाता है। परन्तु प्राय: उसका विवाह कर दिया जाता है और उसकी पत्नी आकर उसे मार्ग पर ले आती है और वह ठीक हो जाता है।

अब चञ्चलसिंह की तो घर वालों ने गालियों, मुक्कों और डण्डों से मरम्मत की और दूसरे लोगों ने लाठियों की धमकी दी। परन्तु उसे लाठियों से विशेष प्रेम न था। अतएव वह इस मार्ग से हट गया और उसने अपना विवाह किसी और लड़की से कर लिया और शारदा को भूलगया।

शारदा के लिये तुरन्त वर की खोज की गई। विचार यह था कि यदि वर न मिला तो उसे कोई औषधि पिलादी जावेगी क्योंकि कोई भी माता-पिता लड़की को सदा के लिये घर पर रखने को तैयार नहीं होते। उनका कहना था कि यदि घर पर किसी व्यक्ति को रहना था तो लड़की के स्थान पर लड़के का जन्म लिया होता। वर की खोज की गई। निर्मल को शारदा से बड़ा प्रेम था, इसलिये उसने इस मामले में बड़ी दौड़-धूप की। भगतसिंह उसका मित्र था, उसने उस पर दबाव डाला। शारदा के बाप ने भगतसिंह के बाप को दहेज का लालच दिया और सौदा पट गया। इस प्रकार शारदा की भगतसिंह से शादी हो गई।

शारदा की शादी भगतसिंह से होगई, मगर वह इतनी शीघ्र चञ्चल को न भुला सकी। उसके दिल से प्रेम की पुरानी पीड़ा किसी तरह भी जाती न थी। उसे वह याद आजाती और उसे दुःख देती। अब उसके घर में किस वस्तु का अभाव था? किन्तु वह फिर भी चञ्चल की याद को भुला न सकती थी। प्रेम सरलता से भुलाया भी तो नहीं जाता। अब प्रति-वर्ष वह अपने घर औरतों को इकट्ठा करती। सावन के त्योहार पर, वह औरतों को इकट्ठा करती, उसके आंगन वाले नीम के पेड़ के नीचे एक झूला डाला जाता जिस पर वे सब झूलतीं। वैसे तो वह सब को बुलाती परन्तु नव-विवाहिता बहुओं को विशेष रूप से आमन्त्रित करती। स्त्रियाँ झूले पर झूलतीं, तालियाँ बजाकर नाचतीं और खुशी से पागल हो उठतीं। शारदा केवल दूसरों के नाच गाने ही

से प्रसन्न न होती, अपितु स्वयं भी नाच-गाने में भाग लेती। फिर अपने घर पकवान तैयार कराती और स्त्रियों में बाँटती। पहिले तो वह कुछ न बाँटती थी परन्तु अब अधिक रुपया आने से उसके व्यय का कोई मार्ग खोजना आवश्यक था। ढोलक बजती और उसके ऊपर गीत गाये जाते। न जाने स्त्रियों को कितने गाने याद थे। उनके गीतों की पूँजी समाप्त ही न होती थी। उसके घर के सामने दूकानों की भीड़ होती। अन्दर आंगन में औरतें एक चक्कर में खड़ी हो जातीं। उस चक्कर में नाचने और गाने वाली स्त्रियाँ इकट्ठी होतीं और खूब ऊधम मचता। घेरे में घुसना तो सब के बस की बात न थी जो वहाँ न पहुँच सकतीं, वे बाहर चाट की दूकानों पर बरसतीं और खूब चाट खातीं। अन्दर ढोलक पर गीत गाये जाते। इस प्रकार दो तीन सप्ताह तक यह मेला लगता। ज़ोर तो एक सप्ताह रहता।

उस साल जब कि मनोहर को सज़ा हुई, उसके कुछ दिनों बाद, यह त्योहार भी आ पहुँचा। नीलिमा तो दुःख के दिन काट रही थी, उस बेचारी के लिये त्योहार का कुछ महत्व भी न था, परन्तु सुषमा तो पहिले से भी अधिक उत्साह के साथ हिस्सा ले रही थी। उसे खुशी क्यों न होती ? उसने नीलिमा को पराजित कर दिया था। उसे चारों शाने चित गिरा दिया था। अब नीलिमा की शान समाप्त हो चुकी थी। गाँव में बड़ी बहू का भय जाता रहा था। उसकी हुकूमत विदा हो चुकी थी। उसका वैभव एक बीती हुई कहानी था। अब नीलिमा का स्थान सुषमा ने

लेलिया था। गाँव की औरतों में श्रेष्ठता का स्थान तथा उच्च पद उसे ही प्राप्त था। औरतें अब उसकी तरफ न देखती थीं। उनकी दृष्टि सुषमा के भाग्य को निहारती। सुषमा शारदा की प्रत्येक दशा में और अवसर पड़ने पर सहायता करती। वह दूसरों को बतलाना भी चाहती थी कि उसकी मित्रता से कितना लाभ हो सकता है। शारदा का पद भी तो खूब बढ़ा-चढ़ा था। औरतें शारदा से ईर्ष्या करतीं। उसका स्थान सचमुच इर्ष्या करने के योग्य था।

जब नाच-गाना पूरे ज़ोर से चल रहा था और अविवाहिता युवतियाँ और नव-विवाहिता बहुएँ मुकाबले का नाच नाच रही थीं। शारदा को अपनी जवानी के बीते दिन याद आगये, जब वह भी शादी से पहिले, जवानी के नशे में चूर, मस्त नाच नाचा करती थी और आकर्षक गाने गाती थी। एक बार वह इतने सज-धज के साथ आई कि औरतें उसे देखकर दङ्ग रह गईं। लेकिन उस दिन चञ्चल उसे छिपकर देख रहा था और यह सब उसीके लिये था। इस घटना को स्मरण करके उसके दिल में फिर वे पुराने दिन याद आगये। क्यों न वह आज फिर नाचे। अगर और किसी के लिये नहीं, तो चञ्चल की याद के लिये, उस दिन की याद ही के लिये सही। उसने अपनी यह दिल की बात सुषमा पर प्रगट की। उसने इसका अत्यन्त हर्ष के साथ स्वागत किया। शेष औरतों ने तालियों के शोर से इसका अनुमोदन किया। और यह प्रस्ताव भी रखा गया कि सुषमा और शारदा दोनों नाचें।

दोनों सजी-सजाई घेरे के अन्दर गईं। घेरा खाली करदिया गया। शेष सब स्त्रियाँ बाहर होगईं। मीरासन ने ढोलक पर हाथ रखा। ढोलक की आवाज़ तेज़ हुई। लड़कियों ने गाना उठाया।

ढोलक की आवाज़ तेज़ तो हुई, परन्तु ज्योंहीं अन्तिम पद कहा गया, शारदा के दिल की विचित्र दशा हो गई। उसे अनुभव हुआ कि पृथ्वी उसके नीचे से खिसक रही है। वह धम से गिर पड़ी। एकदम औरतें उसके चारों ओर इकट्ठी होगईं और उसे पङ्खा झलने लगीं। उसकी शकल देख कर वे डर गईं। एकदम उसके बाज़ू और शरीर अकड़ गया। आँखें फिरगईं।

उसकी आत्मा शरीर का पिंजरा त्याग चुकी थी।

तहलका मचगया। एक क्षण में इसकी मृत्यु का समाचार सारे गाँव में फैलगया। लोग इकट्ठे होगये। वे हैरान होकर एक दूसरे की ओर देख रहे थे। भगतसिंह वहाँ नहीं था। रणवीर बाबू ने एकदम विशेष दूत शहर दौड़ाया और वह भागे-भागे आये। वे मृत शारदा को देखकर अपना माथा पीटने लगे।

दाह-संस्कार के बाद रणवीर ने सुषमा से कहा कि भगतसिंह बहुत उदास रहता है। यदि ऐसी ही दशा रही तो सम्भव नहीं कि वह सब काम-काज छोड़दे और कहीं तीर्थ-यात्रा पर चला जाय। इस दशा में उसका सारा कारोबार नष्ट हो जावेगा। तो उसके लिये सुषमा क्या कर सकती थी? रणवीर ने यह प्रस्ताव भी रखा कि क्योंकि अब भगतसिंह खाना अपने घर ही खाता है इसलिये क्यों न उससे कहा जाय कि हमारे घर आकर ही वह

रहे। सुषमा ने उत्तर दिया कि इसमें आपत्ति तो कोई नहीं, क्योंकि वह आपके मित्र हैं। लेकिन............... ।

"लेकिन क्या?" रणवीर ने संजीदगी से पूछा।

"लेकिन लोग क्या कहेंगे?"

"लोग! कौन लोग?" वह क्रोध से पागल होकर बोला। "मैं ऐसे लोगों की परवाह नहीं करता। मैं किसी का दिया हुआ नहीं खाता। यदि लोग मेरे बारे में कुछ कहें तो मैं परवाह नहीं करता। लेकिन देखूँ, कौन लोग मेरे विरुद्ध कुछ कहने का साहस करेंगे? वे अच्छी तरह जानते हैं कि रणवीर उनकी जबान खींच लेगा। अभी गाँव में कोई ऐसा आदमी पैदा नहीं हुआ है जो रणवीर के विरुद्ध कुछ कह सके।"

सुषमा खामोश होगई। फिर उसे क्या आपत्ति थी?

भगतसिंह घर पर ही रहने लगे। सुषमा पर्दा तो इससे पहिले भी न करती थी, अब तो उससे और भी घुल-मिल कर रहने लगी। आख़िर पति का मित्र तो था ही।

अब भगतसिंह रणवीर के घर का एक सदस्य था। आख़िर उसका अब था भी कौन? बच्चे पहिले ही न थे। पत्नी का देहान्त हो गया था। पैसे की उसे चिन्ता ही न थी। मित्र के लिये वह काम करता था। जिस मित्र का काम उसने इतना ऊँचा उठाया था, उसे अब कैसे छोड़े। वैसे उसने रणवीर से कई बार कहा कि अब उसकी इच्छा है कि जीवन के शेष दिन हरिद्वार में जाकर गुज़ारे। उसके हरिद्वार जाने में रणवीर को वैसे तो कोई

आपत्ति न थी, परन्तु उसका काम तबाह बर्बाद हो जाता। वह जानता था कि भगतसिंह के जाने से उसका काम सम्भालने वाला कोई न होगा। इसलिये उसकी खुशामद करना उसके लिये आवश्यक होगया था। उसने सुषमा को समझाया कि भगतसिंह की सेवा में कोई कसर न उठा रखी जाय। भगतसिंह के अपने नौकर भी थे, अब उन सब को भी रणवीर के घर बुलवा लिया गया और इस कारण भी कि उनकी घर पर आवश्यकता न थी। एक को तो उसका खास काम करने के लिये घर पर रख लिया गया और बाक़ी दो को कारखाने में लगादिया गया। भगतसिंह की गाय भैंस भी रणवीर के घर आगई।

वास्तव में वे दोनों इतने घनिष्ट मित्र होगये थे कि किसी को उसे स्वीकार करने में कोई आपत्ति न हो सकती थी। लोग जानते थे कि रणवीर और भगतसिंह की गहरी मित्रता है, और भगत-सिंह के बाद, शारदा के मरने का ग़म यदि किसी को था, तो वह सुषमा थी। यह भी वे जानते थे।

दौरे पर जाने का समय आया। भगतसिंह ने रणवीर से प्रस्ताव किया कि इस बार वह दौरे पर जायगा। प्रस्ताव तो उचित था मगर रणवीर के दिल में शक पैदा होगया कि अगर भगतसिंह के दिल में वैराग्य उत्पन्न होगया और उसने अपने डेरे वहीं लगा लिये तो कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। इसलिये उसने दिल में यह फैसला किया कि भगतसिंह को घर पर ही रहना चाहिये। बड़ी मुश्किल से उसने भगतसिंह को समझाया

कि उसका इस समय दौरे पर जाना उचित नहीं। उसे घर पर ही रहना चाहिये। हाँ, अगली बार जब उसकी तबियत ठीक हो जायगी, तब बाहर जाने में भी कोई आपत्ति नहीं।

भगतसिंह राजी होगया, परन्तु बड़ी कठिनता से।

रणवीर दौरे पर चला गया। पहिले तो लोग खामोश थे क्योंकि भगतसिंह के साथ रणवीर भी तो घर पर था। परन्तु उन्हें विचार था कि इस बार तो रणवीर दौरे पर जायगा नहीं, किसी और को भेजेगा या उसके दौरे पर जाने के बाद भगतसिंह अपने घर रहेगा। वैसे रणवीर इस बात को जानता था कि मालिक के लिये अधिकतर दौरे पर जाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि एजेन्ट भी तो बाहर जाने के लिये तैयार रहते हैं। लेकिन उसका विचार था कि अधिकतर तो एजेन्टों को ही भेजना चाहिये, और साल में एक दो बार तो मालिक को भी जाना चाहिये। व्यापार के लिये यह बहुत आवश्यक था। इस बार रणवीर न जाता परन्तु कुछ ऐसा काम आ पड़ा कि उसे विवश जाना ही पड़ा। अब लोगों की जबान को कौन पकड़े? साफ़ साफ़ और प्रगट में तो कोई कहता न था, क्योंकि भगतसिंह से कौन नहीं डरता था? हाँ, अन्दर ही अन्दर लोग इस बात की चर्चा करने लगे कि क्या रणवीर व्यापार के साथ, अपनी पत्नी को भी मित्र की निगरानी में छोड़ गया है? वस्तुतः उनके घर की बात किसी न किसी प्रकार फैल ही जाती। शायद नौकरों के कारण ऐसा होता था। एक नौकर जो उनके घर से निकाल दिया

गया था, उसने गाँव में जाने से पूर्व, लोगों में, विशेष कर भगतसिंह के दुश्मनों में यह अफ़वाहें फैला दीं कि भगतसिंह और सुषमा के सम्बन्ध बढ़ रहे हैं। इन बातों का समर्थन मेहरी और नायन से होता रहा, क्योंकि जब वे सब कुछ आँखों से देखती थीं, तो ज़बान से बयान कैसे न करतीं। औरतों के कान बड़े तेज़ सुनते हैं, आँखें बड़ी तेज़ देखती हैं, परन्तु उनकी ज़बान कहीं अधिक तेज़ चलती है। वह उक्ति इनके विषय में बिलकुल ठीक उतरती है जिसमें कि एक पत्नी अपने पति से साड़ी की माँग कर रही थी। वह बार-बार हाँ, हाँ कह रहा था। वह तङ्ग आकर बोली—

"लेकिन तुम मर्दों की भी अजीब दशा होती है। इस कान सुनी और उस कान निकाल दी।"

"यह तो ठीक है" वह बोला, "परन्तु औरतें मनुष्यों से बाज़ी ले जाती हैं।"

"कैसे ?"

"वे दोनों कानों से सुनती हैं और ज़बान से निकालती हैं।"

उसकी पत्नी ने तो सम्भव है यह बात पसन्द नहीं की, परन्तु पति ने तो एक सचाई को सुन्दर शब्दों में व्यक्त कर दिया।

रणवीर दौरे पर गये थे। मनोहर जेल में बन्द थे, भगतसिंह बीमार पड़े थे। शहर के एक योग्य और अनुभवी डाक्टर का इनके लिये प्रबन्ध किया गया। डाक्टर एल० के० कपूर हर तीसरे दिन टेक्सी में आते और भगतसिंह की दवा-दारू करते।

पन्द्रह दिनों के पश्चात् उनका ज्वर ठीक होने लगा। लेकिन डाक्टर साहिब ने उन्हें पूरा आराम करने की आज्ञा दी थी। सुषमा को उनकी देख रेख करनी पड़ी। अब करती भी क्या? एक तो पति के मित्र, दूसरे उसके घर में ठहरे हुए, तीसरे बीमार; फिर उसकी प्यारी सहेली के पतिदेव। मनुष्यता का भी तो यही आग्रह था। उसे कोई ख़ास काम तो था नहीं। उसने तन-मन से रोगी की सेवा शुरू की। उसको ठीक समय पर दवाई पिलाना, उसके लिए विशेष पथ्य तैयार करना और उसके बिस्तर आदि का प्रबन्ध करना ये सब उसके कर्त्तव्यों में था। नौकरों को आदेश था कि बीमार का विशेष ध्यान रखें। रात को सोने से पूर्व एक बार वह उसका हाल स्वयं पूछ जाती, और तसल्ली कर लेती कि सारा प्रबन्ध ठीक है। रात को हर नौकर तीन तीन घण्टे के लिए पाबन्द कर दिया जाता। इस प्रकार हर समय एक नौकर उसकी परिचर्या में रहता।

एक रात जब सुषमा सोने से पहिले, भगतसिंह को देखने आई, तो उसे अकेला देख, नौकर पर क्रुद्ध होकर बोली,

"कहाँ गया मरदूद मनसुखा? उसे इतनी बार कहा है कि एक मिनट के लिए भी यहाँ से न हिले।"

"दर असल मैंने ही उसे भेज दिया" भगतसिंह ने कहा। वे बिस्तर पर बैठे हुए थे।

"आपने भेज दिया? क्यों?"

"अब मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। उसकी आवश्यकता नहीं।"

"फिर भी वह बाहर बैठ सकता था। इसमें क्या अपत्ति थी?"

"खैर, अब कोई ऐसी जरूरत नहीं। केवल सिर में मामूली-सा दर्द है, शायद कमजोरी के कारण। वह भी प्रातःकाल तक ठीक हो जायगा।"

"तो बाम ही लगा लीजिये," सुषमा बोली।

"जरूरत तो नहीं, परन्तु यदि आपको आग्रह है तो लगा दीजिये।"

सुषमा ने कोने में पड़ी हुई, बड़ी मेज पर से बाम की शीशी उठाई, और उसे खोलकर अंगुली से उसके सिर पर लगाने लगी। पांच दस सेकिन्ड के बाद भगतसिंह बोला,

"आपके हाथों में शायद जादू है?"

"आपको कैसे पता चला?" वह लज्जा से बोली।

"अनुभव से। जिन हाथों के छूने से ही सिर का दर्द फौरन दूर हो जाय, उसमें जादू नहीं तो और क्या है?" और न जाने क्यों, उसका हाथ, अचानक, सुषमा के हाथ पर जा पड़ा। उसने अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न किया, परन्तु भगतसिंह के बीमार होने पर भी उसके हाथ में काफी शक्ति थी। उसने उसका हाथ नहीं छोड़ा और साथ ही बोला,

"मैं इस हाथ का कितना आभारी हूँ, और खासकर हाथ वाले का, जिसने, एक ऐसे रोगी को मौत के मुंह से बचाया जिसका दुनियां में और कोई सहायक नहीं।"

"यह तो आप मुझे लज्जित कर रहे हैं," सुषमा बोली। वह

लज्जा से झुकी-झुकी जा रही थी।

"मैं दिल की बात कर रहा हूँ, सुषमा। सच कहता हूँ कि तुमने मेरे लिये जो कुछ किया है उसे मैं आजीवन भूल नहीं सकता। दर असल शारदा ने मुझसे तुम्हारी बहुत तारीफ की, और तुम्हारे दुःख का रोना मेरे पास आकर रोया। उसने मुझे अत्यन्त विवश किया, कि मैं तुम्हें अत्याचार से बचाऊं और तुम्हें अपने घर की अधिकारिनी बनाने में तुम्हारी सहायता करूं। अन्यथा साफ बात तो यह है कि रणवीर के लिये मैं यह सब कभी न करता। मैंने जो कुछ किया, तुम्हारे लिए, शारदा की सहेली के लिये, किया।"

"इसके लिए तुम्हारी बहुत बहुत आभारी हूँ!"

"सच?" भगतसिंह ने अपनी आँखें, सुषमा की आँखों में गड़ाते हुए और उसे अपनी तरफ खींचते हुए कहा। इस बार सुषमा ने कोई विरोध न किया। भगतसिंह ने उसे छाती से लगा लिया, और उसके बालों में अंगुलियाँ फेरता हुआ बोला,

"और अब भी यदि मुझे इस घर में, या यहाँ के काम से कोई दिलचस्पी है तो वह तुम्हारे कारण। आज यदि तुम मुझसे रूठ जाओ, अपनी हमदर्दी मुझ से खींच लो, और उदासीनता का व्यवहार करो, तो कल या तो भगतसिंह को मुर्दा पाओगी या गङ्गाजी के किनारे किसी साधु के आश्रम में।"

"ऐसा मत कहो", उसकी गोद में लेटे और उसके गालों पर अंगुलियाँ फेरते हुए सुषमा ने कहा।

"तो मैं विश्वास करूं कि हमदर्दी का हाथ मुझ से खींचा न जायगा ?"

"आप कैसी बातें करते हैं ?"

"दिल की—और सच कह रहा हूँ कि यदि मुझे इस समय दुनियां से कोई दिलचस्पी है तो वह तुम्हारे कारण है। यदि आज मैं इस असीम कृपा से वञ्चित हो जाऊं, तो जीवन में मेरे लिए और कोई रस नहीं रहेगा।"

"आप मेरी ओर से निश्चिंत रहिये।"

"परन्तु सोच लीजिये।"

"क्या ?"

"कि यह सौदा महंगा पड़ेगा। प्रेम का सौदा सदा ही महंगा पड़ता है। उसकी क़ीमत बहुत बड़ी होती है।"

"क्या ?"

"लोगों की अंगुलियाँ, ताने, अफवाहें, बदनामी, रणवीर का गुस्सा, मनोहर और नीलिमा..............."

"मनोहर और नीलिमा!" वह तिलमिला कर बोली। "मैं क्या परवाह करती हूँ उनकी ? मेरी जाने जूती।"

"आह ! गुस्से में तुम कितनी सुन्दर हो जाती हो।"

"आप मुझे बना रहे हैं ?"

"सच कहता हूँ। दिल से कहता हूँ। बनाने के लिये क्या और दुनियां कम है ?"

"इसका मतलब है कि दूसरों को बनाते हो।"

"तुम तो बाल की खाल उतार रही हो, और सच यह है कि यदि तुम दूसरों की परवाह न करो, तो भगतसिंह तुम्हें सब सङ्कटों से बचाने का वचन देता है। वह प्रलय तक तुम्हारा साथ देने की क़सम खाता है। तुम केवल लोगों की बात की परवाह न करो।"

"आप यह विश्वास रखिये।"

"परन्तु यदि रणबीर आकर कुछ कहेगा तो..............."

"उन्हें मैं संभाल लूंगी। यदि स्त्री अपने आदमी को धोखा न दे सके तो वह स्त्री ही क्या?"

"और जो दूसरे आदमी को न दे सके?"

दोनों अट्टहास से हँस पड़े।

यह बात सत्य सिद्ध हुई कि दीवारों के कान होते हैं और अगले दिन इस बात चीत का एक-एक शब्द लोगों की ज़बान पर था। यह बात सर्वत्र फैल गई कि सुषमा के दो पति हैं। नौजवानों को हंसी मजाक का अवसर हाथ लगा। जहाँ दो तीन लड़के इकट्ठे हुए कि उन्होंने ये बातें आरम्भ क़र दीं।

"अरे यार, कितना भाग्यशाली पुरुष है!"

"देखिये न, उसे रणवीर की नौकरी से कितने लाभ है?"

"पहले वह रणवीर का नौकर था अब सुषमा का है।"

"यह नौकरी ऐश की है।"

"अजी बुरी कौन-सी है?"

"मैं तो यह कहूँगा कि न ग़मे रोजगार न ग़मे इश्क।"

"अब रणवीर को काफी आराम हो गया है। बे फिकरी से दौरे पर जा सकता है।"

"क्यों ?"

"पहिले तो उसे पत्नी की चिन्ता रहती थी ना, अब वह भी जाती रही।"

"और किसी दिन उसे घर की भी चिन्ता न रहेगी। भगत-सिंह सब आराम से संभाल लेंगे।"

"बड़े मित्रता निभाने वाले हैं।"

"पहिले केवल गरीबों के सहायक थे।"

"भाई, उन्नति के मार्ग पर डटे हैं।"

"प्रगति शील ठहरे ना।"

और एक बुलंद हँसी फ़िज़ा में बिखर जाती।

अठारहवां परिच्छेद

एक दिन गज्जनमल ने आकर नीलिमा से कहा कि मनोहर बाबू से मिलने के लिए कोई सज्जन पधारे हैं और उनका नाम राजकमल है। राजकमल! यह कौन होंगे? नीलिमा ने स्मृति शक्ति पर जोर डाला। उसे याद आया कि किसी समय मनोहर बाबू ने अपने एक मित्र का जिक्र किया था, जो अफ्रीका में रहते थे। क्या ये अफ्रीका से तो नहीं आये? गज्जनमल ने कहा "हाँ वे यही कहते हैं।" इस पर नीलिमा को याद आगया कि उसके पति ने उनके बारे में उसे बतलाया था। राजकमल, मनोहर बाबू के स्कूल के समय के मित्र थे। उनके पिता ईस्ट-अफ्रीका मे अपना स्वयं का व्यापार करते थे। मैट्रिक पास करने के पश्चात् उन्होंने लड़के को वहीं पास बुला लिया और अपने काम मे लगा लिया। वहीं उनकी शादी हो गई। बाल बच्चे हुए। पिताजी की मृत्यु के पश्चात् सारे काम को स्वयं ही संभालने लगे। उनका काम उन्नति

पर था। शुरु शुरु में तो वह मनोहर बाबू को पत्र लिखते रहे और मनोहर बाबू भी उन पत्रों का उत्तर देते रहे। परन्तु बीच में पत्र-व्यवहार में शिथिलता आ गई। कभी कभी दोनों में एक-आध पत्र का आदान प्रदान होता रहता था।

आज उनका आगमन सुन कर नीलिमा हैरान होगई। वह सोचने लगी कि क्या वह उनसे स्वयं बात करे? पर उनके सामने जाना शायद ठीक न होगा। एक तो वह उनको जानती न थी, दूसरे गाँव का मामला था। वहाँ साधारण सी बात ही तुरन्त फैल जाती है और लोग जो मुँह में आये बकने लगते हैं। उसने फैसला किया कि वह गज्जनमल से कहदे कि मनोहर बाबू तो जेल में हैं। वह उसे कहने ही लगी थी कि उसे फिर ध्यान आया कि शायद वह बुरा मानें। इतनी दूर से आये हैं। यदि उनका मित्र उन्हें नहीं मिला, तो कम-से कम मित्र की पत्नी का यह तो कर्तव्य था कि उन मित्रके की पूरी पूरी जानकारी करादे। संभव है कि उसके राजकमल से न मिलने पर, मनोहर बाबू भी जेल से लौट कर अप्रसन्न हों। इस कारण उसने गज्जनमल से कहा कि वह राजकमल से मिलेगी। इन्हें ऊपर बैठक में बुला लिया गया। उसने चाय तैयार करने की अज्ञा दी और स्वयं उनसे मिलने चली गई।

राजकमल लगभग पैंतीस-छत्तीस वर्ष के होंगे, मनोहर बाबू से दो तीन वर्ष छोटे। ख़ूब भरा हुआ शरीर और गेहुँआं रङ्ग था और ऐनक लगाते थे। सफेद सूट पहिने थे और सफेद रङ्ग का

ही टोप लगाये थे, हाथ में छड़ी थी।

नीलिमा को देख कर, उन्होंने टोप उतार कर दोनों हाथ जोड़, नमस्ते की। फिर दोनों बैठ गये, वे नीलिमा से मनोहर बाबू के जेल जाने की खबर सुनकर बड़े दुखी हुए। फिर बोले—

"मुझे मनोहर पर अत्यन्त क्रोध आ रहा है। क्या वह मुझे एक पत्र नहीं लिख सकता था? पत्र क्यों? क्या तार-घर टूट गया था? मूर्ख कहीं का! जेल में पड़ा सड़ रहा है। बहुत शरीफ़ बना फिरता है। स्कूल में भी उसका यही हाल था। आज-कल सभ्यता का युग नहीं। मैं होता तो ऐसे भाई को शूट कर देता। चाण्डाल कहीं का। भाई को जेल भिजवा दिया।"

"यह भाग्य की बात है," नीलिमा बोली।

"भाग्य! भाग्य क्या होता है? मैं भाग्य पर विश्वास नहीं करता। भाभी, मनुष्य स्वयं अपने भाग्य को निर्माण करता है। हमारा भाग्य स्वयं हमारे हाथ में है। भाग्य कायरों का हथियार है। मनोहर ने खामोशी से जेल जाकर अव्वल दर्जे की कायरता दिखलाई है, और क्षमा करना, आपने भी।" वे नीलिमा को सम्बोधित करके बोले।

"मैं क्या कर सकती थी?"

"आप क्या नहीं कर सकतीं थीं?" वे क्रोध में भर कर बोले। "हिन्दुस्तानी स्त्रियां, बीसवीं शताब्दी में भी ऐसी ही बातें करती हैं। बातें बनाने में, रोने-धोने में, शोर मचाने और चिल्लाने में वे संसार के दूसरे देशों की महिलाओं से कहीं अधिक उन्नति कर

रही हैं। परन्तु ऐसी बातों में एक-दम पीछे हैं।"

फिर रुक कर बोले—

"यदि कोई अंग्रेज या अन्य यूरोपियन महिला होती तो वह अपने पति को छुड़ाने के लिये एड़ी-चोटी का जोर लगा देती। वकीलों के पास जाती, अपीलें करती और एक अदालत से दूसरी अदालत में जाकर लड़ती। या तो वह उसे छुड़ा लेती और यदि नहीं छुड़ा सकती तो कम-से-कम उसे इतना सन्तोष तो होता कि पति के लिये वह लड़ी और जी-जान से लड़ी।"

वे दुःख और क्रोध से इतने अधीर हो रहे थे कि उनके शब्द मुँह पर आकर रुक से गये।

"मुझे बहुत अफ़सोस है", वे अपने आवेश को रोकते हुए बोले। "मनोहर जैसे शरीफ़ आदमी को जेल की सजा मिले और बिना अपराध के। यदि उसे पिस्तौल की आवश्यकता थी तो क्या वह उसके लिये लायसेन्स नहीं ले सकता था। क्या क़ानून है इन्डिया का? अन्धा! एक-दम अन्धा। खैर मैं देख लूंगा।" तभी नौकर चाय लेकर दाखिल हुआ।

"यह किस के लिये चाय है? मेरे लिये! सोच कर तो आया था कि आज खूब चाय पीऊँगा, खूब खाऊँगा और जी-भर के मित्र से बात-चीत करूंगा। परन्तु..........परन्तु............" वे आगे एक शब्द न कह सके। उनका गला रुंध गया, आँखों में आँसू झलक आये। उन्होंने कोट के ऊपर की जेब से रूमाल निकाल कर आँखें पोंछीं। फिर कुर्सी से उठे, हैट को मेज़ पर से

उठाकर बग़ल में दबाया और छड़ी को सम्भाल कर बोले,

"भाभी जी ! अब तो चाय उसी समय पिऊंगा जब शहर जाकर अपील दायर करूंगा और मनोहर के साथ ही आकर खाना खाऊँगा।"

और एक-दम कमरे से चलदिये। नीलिमा ने पुकारने के लिये मुँह खोलने का प्रयत्न किया। दाहिना हाथ आगे फैलाया जैसे कहना चाहती हो "एक कप तो पीते जाइये," परन्तु अचानक उसे ध्यान आया कि पीछे से आवाज नहीं दिया करते, और जब कि वे एक शुभ काम के लिये जा रहे थे।

राजकमल टेक्सी में अमानतपुर आये थे। उनका गाँव अमृतपुर शहर से दो मील दूर था। परन्तु वह सीधे शहर पहुँचे और वहाँ के सब से प्रसिद्ध और योग्य एड्वोकेट, दीवान चन्द, के पास पहुँचे और कमरे में जाते ही, पाँच सौ रुपयों के नोट उनकी मेज पर रख कर बोले—

"देखिये साहब, मेरे प्रिय मित्र मनोहर बाबू जिनको आप अच्छी तरह से जानते होंगे, बिना अपराध सजा भुगत रहे हैं। उनका अपराध यही है कि वे निरापराध हैं। उनके दुश्मनों ने, जिनमें उनके छोटे भाई सबसे आगे हैं, उनके घर रिवाल्वर रख कर उन्हें फंसा दिया। मुकद्दमा एक दम झूठा है और आप जैसा योग्य और प्रसिद्ध एड्वोकेट उन्हें एक-दम छुड़ा सकता है। यदि आप डिस्ट्रिक्ट जज से अपील करके और अपने व्यक्तिगत प्रभाव से पेशी की तारीख शीघ्र लिखवा कर उन्हें एक सप्ताह के

अन्दर अन्दर छुड़वालें तो मैं आपको पांच सौ और दूँगा।"

"एक सप्ताह में छुड़ादूँ और केवल पांच सौ?"

"तो चलिये एक हज़ार और दूँगा।"

"एक हज़ार ही?"

"हाँ! एक हज़ार और। लीजिये अभी एक सप्ताह बाद की तारीख़ का चेक आपके नाम लिखे देता हूँ और यदि आप न छुड़ा सके, तो आप एक पैसे के भी अधिकारी न होंगे। कहिये स्वीकार है?"

बैरिस्टर साहब पांच मिनट सोचने के बाद बोले,

"स्वीकार है।"

परन्तु राजकमल को फिर भी विश्वास न था। उन्होंने अपने सामने अपील दायर करवाई। दीवानचन्द साहब के साथ कोर्ट गए और जब पूरा भरोसा होगया तब जाकर चाय पी।

उन्नीसवां परिच्छेद

नीलिमा पूजा करने के बाद, कृष्ण जी की मूर्ति के आगे बैठी प्रार्थना कर रही थी। उसके दोनों बच्चे नौकर के साथ बाहर घूमने गये थे। वह गला भर कर कह रही थी—

"भगवान ! तुमने सदा ही दुखियों की रक्षा की है। द्रौपदी की लाज तुमने रखी। अपने भक्तों पर सदा ही दया करते रहे हो। मुझ पर भी तो दया करो। हम लोग तो बिल्कुल निर्दोष हैं। न जाने आप हमें किस पाप का दण्ड देरहे हैं। परन्तु अब तो दण्ड पूरा हो चुका होगा।"

"क्या चाहती हो?" एक हलकी सी आवाज़ सुनाई दी, जैसे भगवान उसके कान में कह रहे हों।

"आप तो सब जानते हैं भगवन् ! अब तो मेरे पतिदेव को रिहाई मिल जाना चाहिये।"

"तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार। पीछे मुड़ कर देखो।"

असीम आश्चर्य के साथ नीलिमा ने पीछे मुड़ कर देखा। देखते ही उसने अपनी आँखें मलीं, जैसे स्वप्न देख रही हो। सचमुच ही उसके पतिदेव खड़े थे। पास ही छड़ी संभाले और हैट बगल में दबाये राजकमल सिर झुकाये खड़े थे। वह एकदम उठी, जैसे बिजली का बटन दबने से, और भागी-भागी मनोहर बाबू के पास आई, फिर उसके गले से चिमट कर बोली—

"प्राणनाथ आप !"

उसकी आँखों से आँसुओं की वर्षा हो रही थी।

"और हम भी," पास खड़े हुए राजकमल बोले।

"आप !" वह अपने पति से हटकर राजकमल की ओर देख कर बोली। "तो कृष्ण जी ने आप ही को भेजा है। मेरे पास आपको धन्यवाद देने के लिये शब्द नहीं।"

"किस बात का धन्यवाद ?"

"किस बात का ! आपने इन्हें छुड़ाया। क्या यह सधारण बात है ?"

"मैंने ? नहीं तो। यह तो अपने भाग्य से छूटे हैं।"

"हटिये" वह मुस्करा कर बोली—"आप तो मजाक कर रहे हैं।"

"राम। राम। मजाक।" राजकमल हाथ हिलाते हुए बोले—"मैं और मजाक! मजाक तो मेरी शकल से कोसों दूर भागता है।"

नीलिमा और मनोहर खिलखिला कर हँस पड़े।

मनोहर के छूटने की ख़बर गांव में एकदम फैल गई। वे मोटर में आये थे। प्रातःकाल का समय था। वैसे तो गाँव में तांगे के आने की ख़बर ही एकदम फैलजाती है, और मोटर के आने पर तो सारा गाँव काम छोड़कर बाहर आजाता है।

मनोहर के छूटने की ख़बर हर घर और हरएक आदमी के पास पहुँच गई। लोग अपने अपने काम छोड़कर, उसे देखने के लिये भागे, जैसे कोई सर्वप्रिय नेता, जेल से छूटकर आया हो। आध घण्टे के अन्दर उनके घर के बाहर एक मेला-सा लग गया। मनोहर हाथ जोड़ कर सब से मिले। कई लोगों से, जिनमें किसान और महाजन थे, गले मिले। सब की आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। उनके जेल जाने के फ़ौरन बाद लोगों को इस बात का विश्वास होगया था कि वे निरापराध हैं। शारदा की मृत्यु के पश्चात यह विश्वास और पक्का होगया था। वे जानगये कि यह सब रणबीर और भगतसिंह का षड्यन्त्र था। जब मनोहर किसानों से गले मिल रहे थे तो सब रो रहे थे। ये हर्ष और शोक के मिले-जुले भाव लोगों के दिलों से उभर कर नेत्रों के द्वारा बाहर आरहे थे। सभी मनुष्य अब उसके असली गुणों को समझ रहे थे। उसके विरुद्ध लोगों के दिलों में जो घृणा का अस्थायी भाव था, जो वैरियों ने फैला दिया था, एकदम नष्ट हो गया। जैसे सूरज के निकलते ही रात का अन्धेरा एकदम भाग जाता है, वैसे ही मनोहर को देखते ही मनुष्यों का द्वेष-भाव एकदम जाता रहा।

राजकमल ने गज्जनमल को अलग बुला कर पूछा—

"क्या इस समय बांटने के लिये कोई मीठी वस्तु है ?"

"गुड़ के सिवाय कुछ नहीं, और वह भी अधिक नहीं है।"

"हलवाई की दूकान से कुछ मिल सकता है ?"

"सरकार ! यह गांव है इतनी वस्तु कहाँ मिल सकती है ?"

"तो ऐसा करो कि दूकान से चार पाँच बोरी अच्छा गुड़ मंगवालो या किसी के घर से, और अभी लोगों में बांटना आरम्भ कर दो। हलवाई से कहदो कि सारे गाँव में बाँटने के लिये कल प्रातःकाल तक लड्डू भी तैयार करले।"

"कितने ?" गज्जनमल ने पूछा।

"मैं तो हलवाई नहीं, परन्तु यह अवश्य ध्यान रहे कि हर व्यक्ति को बच्चा हो या बड़ा, कम-से-कम पाँच पाँच लड्डू मिलने चाहियें।"

"पाँच !" वह हैरानी से बोला।

"और क्या पचास ?"

"मेरा मतलब पाँच अधिक तो न होंगे।"

"मैंने सोचा कम तो न होंगे।"

और दोनों हँस दिये।

घर में पड़ा हुआ गुड़ बंटना आरम्भ हो गया। इतने में गज्जनमल सब से उमदा गुड़ की बोरियाँ भी लिवा लाए। मेला लगा हुआ था। सारा गाँव इकट्ठा था। एक ओर नीलिमा ने गुड़ बाँटना आरम्भ किया। उसकी सहायता के लिये दूसरी औरतें

भी आगई।

सारा गाँव मनोहर और नीलिमा की खुशी में आनन्द-विभोर था।

राजकमल के संकेत पर, गजनमल ने सब लोगों से कहा कि अगले दिन ठीक दस बजे मिठाई बंटेगी। इसलिये सब लोग बच्चों सहित आवें। गाँव के हर एक व्यक्ति को निमन्त्रण दिया गया।

अगले दिन भी उस दिन की तरह, सारा गाँव इकट्ठा हुआ, भगतसिंह और सुषमा को छोड़कर। रणवीर दौरे पर था।

बीसवां परिच्छेद

भगतसिंह ने जनरल मैनेजर की हैसियत से पहिले तो कारीगरों की मजदूरी दुगुनी करदी थी, परन्तु धीरे-धीरे उसने उनकी मजदूरी कम करना आरम्भ कर दिया, यहां तक कि फिर उसी दर पर वापिस ले आया। वह जानता था कि मनोहर के जेल से छूटने के बाद उसमें काम करने का फिर साहस ही कहां रहेगा। इसलिये कारीगरों के भागने की कोई आशङ्का ही न होगी। दूसरे, कारीगरों से उसके व्यवहार में भी अन्तर पड़गया था। अब उसमें पहिले-सा प्यार, पहिली-सी सहानुभूति न थी। अब वह एक सफल और घमण्डी मिल मालिक की तरह अपने नौकरों के अधिकार की चिन्ता न करता था, न उनके आराम की। साथ ही सुषमा के साथ उसके प्रेम-व्यवहार का समाचार पाकर वे भी सब उससे घृणा करने लगे थे। गाँव के लोगों में शिक्षा चाहे कम ही क्यों न हो, परन्तु वे गाँव में बदमाशी करने वाले को बहुत ही

घृणा से देखते हैं। यदि वह व्यक्ति बहुत बड़ा आदमी है, और लोग उसके विरुद्ध कुछ क्रियात्मक पग नहीं उठा सकते तो वे किसी न किसी प्रकार, उसके विरुद्ध, अपने घृणा के भाव अवश्य प्रगट करते रहेंगे। भगतसिंह के विरुद्ध यह भाव बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा था और ख़ास कर कारख़ाने के मज़दूर, कारीगर और दूसरे काम करने वाले उसके विरोधी बन गये थे।

भगतसिंह के विरुद्ध एक गुप्त षड्यन्त्र रचा जा रहा था, और आश्चर्य की बात यह थी कि इसका नेता मुन्शीराम था। बात यह हुई कि एक दिन कुछ नवयुवक कारीगरों ने मुन्शीराम को बाहर खेतों में घेर लिया और एक चमकता हुआ छुरा उसके पेट में घुसेड़ने की धमकी दी। मुन्शीराम की आँखें जैसे बाहर निकल आईं। शरीर थर थर काँपने लगा, और उसके प्राण बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगे। परन्तु उसने बड़ी कठिनता से उन नवयुवकों से पूछने का साहस किया कि यह सब किस कारण से ?

"किस कारण से ? क्या तुम नहीं जानते ? ब्राह्मण होकर, इतनी पूजा पाठ करते करते, तुम एक बदमाश के हाथ की कठ-पुतली बने हुए हो ?"

"मैं उसका नमक खाता हूँ," उसने काँपते हुए स्वर में कहा।

"बकते हो ! उसका नमक कैसे खाते हो ? तुम रणवीर के नौकर हो, जो मनोहर बाबू का भाई है, सगा भाई, और जिसे इस हरामी ने जेल भिजवा दिया है।"

"शायद इसन ही पिस्तौल रखवाई हो," एक ने कहा।

"मैंने ? नहीं। मैंने नहीं," मुन्शी राम ने कांपते हुए कहा।

"तो अब जीना चाहते हो या मरना ?" उत्तमचन्द ने जो उनका सरदार था, छुरी दिखाते हुए पूछा।

"जी......जी......जीना," उसमे कांपती हुई आवाज में दोनों हाथ जोड़कर कहा।

"तो एक शर्त पर और शर्त यह कि आज से भगतसिंह के विरुद्ध मोर्चा कायम करना होगा। हम उसमें शामिल होंगे और उसके लीडर तुम होगे।"

"म......म......मैं ?"

"और क्या तुम्हारा बाप ?" उत्तमचन्द ने रुष्ट भाव से कहा। "बोलो स्वीकार है या चलने दूँ छुरी को ?" उसने छुरी को पण्डितजी की तोंद के समीप लेजाकर कहा।

"स्वी..........का..........र.......है।" पण्डितजी ने थर थर कांपते हुए कहा।

"तो ठीक है और सुनो यदि कुछ गड़बड़ की तो बच्चों सहित.........." उसने छुरी को हवा में फिराते हुए कहा, जैसे समझा रहा हो कि गरदन पर फिरेगी।

मुन्शीराम घर आये तो दो दिन बिस्तर से न उठ सके। तीसरे दिन वैद्यजी को बुलाया। उन्होंने बिना नाड़ी देखे ही कहा,

"पेट की शिकायत है। चूरन दिये देता हूँ," और चूरन की

शीशी निकालकर उसे चार पुड़ियों में बन्द कर पण्डितजी के हाथ पर रख दिया। पण्डितजी अन्दर ही अन्दर कुढ़ रहे थे, और अपने क्रोध को दबाये बैठे थे। चूरन को देखकर उनका क्रोध बाहर व्यक्त हो गया। पुड़ियों को लेकर वे वैद्यजी के माथे पर मारते हुए चिल्लाकर बोले,

"चूरन के बच्चे! भागता है या नहीं! या तेरा ही चूरन बनादूँ। चला है वैद्यगिरी करने। नाड़ी देखना तो आता नहीं, और लगा है चूरन देने।"

वैद्यजी एक दम बौखला उठे। आज तक किसी ने उनका इतने विचित्र प्रकार से स्वागत नहीं किया था और न उनकी दवा के विषय में इस प्रकार के विचार प्रकट किये थे। उन्होंने पहिले तो हैरान होने का प्रयत्न किया, किन्तु जब इसमें सफल न हुए, तो क्रोध से बोले,

"मुंह संभाल कर बोलिए पंडितजी।"

"पंडितजी का बच्चा," पंडितजी खाट के सिरहाने से अपनी लाठी उठाते हुए बोले, "भगता है यहाँ से, या दूँ एक और निकाल दूँ बाहर सारे दाँत।"

वैद्यजी ने सोचा कि क्या ठिकाना ऐसे आदमी का। कहीं सचमुच न दे बैठे और दाँत बाहर निकाल दे। इसका शयाल होगा और मेरी जान पर आबनेगी। सेफ्टी फ़र्स्ट के सिद्धान्त को मानते हुए, वे पंडितजी की लाठी की पहुँच से दूर सुरक्षित स्थान पर खड़े होकर बोले,

"निकालूं बाहर सारे दाँत !" जैसे दाँत निकालना कोई हँसी खेल है। "देखो हाथ लगाकर, अभी न पुलिस को सूचना कर दूँ !" इतना कह कर वैद्यजी ने द्वार की ओर देखा कि बन्द तो नहीं।

"पुलिस की धमकी देता है, दुष्ट ! ठहर जरा, तुझे अभी जरा पुलिस की बतलाता हूँ," इतना कह कर पंडितजी बिस्तर से उठे और लाठी उठाकर वैद्यजी के पीछे पड़ गये। द्वार खुला ही था। वैद्यजी एक छलांग में पार हो गये। उन्होंने इस बात को पहिले ही समझ लिया था। जूते हाथ में लेकर वे तेजी से भागने लगे। अब पंडित मुन्शीरामजी लाठी संभाले उनके पीछे हो लिए। गाँव के लोगों ने यह तमाशा देखा तो हैरान हो गए। परन्तु खेल बुरा न था। सब लोग एकदम इकट्ठे हो गये। आगे आगे, जूते हाथ में लिये, वैद्यजी, और पीछे-पीछे, लाठी हाथ में लिए पंडितजी। इनके साथ ही साथ लोगों का समूह। "जाने न पाए वैद्यजी" के नारे तेजी से गूंज रहे थे। शिकार आगे-आगे और शिकारी पीछे पीछे। वैद्यजी को लाठी से बहुत घृणा और भय था। इसलिये उनकी टांगें उन्हें और भी तेजी से लिए जा रहीं थीं। गलियों में से होते हुए वे सब फिर बाजार में आए। अब लोगों की भीड़ बढ़ गई थी। बाजार में जब वैद्यजी हलवाई की दुकान पर पहुँचे तो दूकान बन्द मिली, परन्तु बाहर दो सांडों की लड़ाई हो रही थी। सांडों को देखकर वैद्यजी चकरा गए। इधर पहाड़, उधर खाई। आगे बढ़ें तो सांड, पीछे हटें तो लाठी।

शायद हलवाई ने जान बूझ कर यह शरारत की थी। परन्तु इस समय वैद्यजी के सामने हलवाई पर क्रोध का नहीं, अपनी प्राण-रक्षा का प्रश्न था। वे कर्तव्य विमूढ़ता में पड़ गए। पीछे मुड़कर देखा, पंडितजी समीप आ रहे थे। सहसा उन्हें कुछ सूझी। लाठी का भय उन पर इतना छागया था कि उन्होंने आगे भागने का ही फैसला किया। अब राह में एक रुकावट थी। उन्होंने इसको दूर करने का प्रयत्न किया। एक ऊंचे चबूतरे पर चढ़कर उन्होंने सांडों के ऊपर से छलांग लगाई। परन्तु दुर्भाग्य! बीच में ही एक सांड के ऊपर अटक गए। अब उन्हें सही अवस्था का ज्ञान हुआ। उस समय शायद जोश में ऐसा कर गये। परन्तु अब स्वयं को इस प्रकार सांड पर सवार देखकर भय से चिल्लाने लगे। जूते उनके हाथ से छूट गये। गिरने के डर से सांड के गले से चिपट गए। सांड आदमियों का इतना शोर सुन कर और अपनी पीठ पर किसी को बैठे पाकर घबरा गया। उसने लड़ाई से हटकर भागने में ही अपनी भलाई समझी। सांड आगे आगे, उस पर चिल्लाते हुए सवार पंडित जी, और पीछे नारे लगाता, शोर मचाता और भागता हुआ जुलूस। उनमें सबके आगे लाठी हाथ में लिये मुन्शीराम। सांड गाँव के बाहर पहुँचा। परन्तु उस पर अब भी वैद्यजी बैठे थे। वैद्यजी जूता तो गंवा बैठे थे, प्राण गंवाना न चाहते थे। वे पहिला अवसर मिलने पर सांड से कूदना चाहते थे। भागता हुआ सांड वृक्षों के पास से निकला, वैद्यजी को अचानक कुछ सूझी। वे तुरन्त एक

डाली से लटक गये। पीठ पर से बोझ को हलका जानकर सांड रुका। वह पीछे मुड़ा परन्तु समूह को आते देख फिर भाग खड़ा हुआ। अब वैद्यजी अर्ध-मूर्छित दशा में हो रहे थे। डाली हाथ से छूट गई और वे नीचे गिर पड़े। लोगों ने वैद्यजी के मुख पर छींटे मारे और उन्हें सचेत किया। होश में आते ही जब उन्होंने पण्डितजी को देखा तो फिर भाग खड़े हुए। परन्तु पण्डितजी बोले,

"सुनो, अब भागो मत। आज हम तुम्हें क्षमा करते हैं। लेकिन तुम्हें प्रतिज्ञा करनी होगी कि भविष्य में किसी को चूरन की धमकी नहीं दोगे।"

"चूरन की धमकी!" वैद्यजी ने पण्डित को बिल्कुल पास देखकर कठिनाई से ये शब्द जिह्वा पर लाने का यत्न किया।

"हाँ चूरन की धमकी।" पण्डितजी ने चिल्ला कर कहा।

"तेरे पास चूरन के अतिरिक्त कुछ और है भी? जो कोई आता है उसे चूरन ही देता है, और कहता है राम-बाण है। यदि तूने भविष्य में ऐसी हरकत की तो मार मार कर 'मचकूमा' बना दूंगा।" यह शब्द 'मचकूमा' गाँव वालों और वैद्यजी के लिए बिल्कुल नया था। परन्तु उसे पण्डित मुन्शीराम के मुख से सुनकर वैद्यजी को पूरा विश्वास हो गया कि 'मचकूमा' चूरन के बाद की ही दूसरी वस्तु है, क्योंकि चूरन को भी तो काफी कूटना पड़ता है। वैद्यजी ने सब लोगों के सामने जनेऊ पकड़कर सौगन्ध खाई कि वे 'मचकूमा' बनना पसन्द न करेंगे। हाँ चूरन के स्थान

पर कोई अन्य राम-बाण तैयार कर लेंगे।

लोग इस फैसले से बहुत प्रसन्न हुए क्योंकि वे सब राम-बाण चूरण और उसके लाभ सुन सुन कर तङ्ग आ गये थे। परन्तु उनकी एक अभिलाषा दिल ही में रह गई। वे वैद्यजी का 'मचकूमा' बनता देखना चाहते थे।

घर आकर इस घटना से पण्डितजी का अपना मूड वापिस आया और उन्होंने उत्तमचन्द से सम्बन्धित घटना पर ठन्डे दिल से विचार करना आरम्भ किया। क्यों न ऐसे आदमी की पुलिस में सूचना देकर उसे नज़रबन्द कराया जाय और उसके गिरोह को भी? ऐसे आदमी कितने भयानक होते हैं। देखो न नङ्गी छुरी! राम, राम! उन्होंने आँखें बन्द कर ली। जालिम! नर पिशाच! परन्तु उन्होंने पुलिस को सूचना दी और उसने उनका कुछ न किया, तो? और यदि एक बार पुलिस ने उनको डांट-डपट करदी और फिर वे गांव में आकर ऊधम मचाने लगे? और आखिरकार पुलिस गांव में तो रहेगी नहीं। और यदि इन दुष्टों ने इस प्रकार एक के बाद दूसरे खानदान का सफाया कर दिया तो! राम राम! वह छुरी! कितनी तेज थी उसकी धार। यदि सफाया कर दिया तो किसी का क्या जायगा? बाद में पुलिस खूनियों को खोजेगी, पकड़कर उनपर मुकद्दमा चलायेगी, परन्तु उसे क्या मिलेगा? वह तो जिन्दा न होगा, न उसके बाल-बच्चे। भगतसिंह का भी क्या जायगा? और रणवीर बाबू का? परन्तु क्या उत्तमचन्द ठीक नहीं कह रहा था कि भगतसिंह जैसे दुष्ट का

साथ नहीं देना चाहिये। मुझे क्या खबर थी कि वह इस सीमा तक बढ़ जायगा और सुषमा के साथ भी.........राम राम। घोर अन्धेर, कैसा कलजुग है। सचमुच मैं पूजा-पाठ भी करता हूँ और यह काम भी! क्या मेरे लिए यह उचित है? मैंने अकारण मनोहर बाबू के साथ अन्याय किया। उनका काम बंद करवाया, उन्हें जेल भिजवाया। राम राम! ऐसा करते समय मैंने यह बिलकुल नहीं सोचा कि मैं इतना नीच काम कर रहा हूँ। मैं बड़ा पापी हूँ। अच्छा होता यदि उत्तमचन्द मेरे पेट में छुरी भोंक देता! ऐसे पापी की सज़ा ही यह है। इस जीवन के लिए मनुष्य को कितने नीच और गन्दे काम करने पड़ते हैं। परन्तु क्या मैं इसका प्रायश्चित्त नहीं कर सकता? यह ठीक तो है। यदि मैं मनोहर बाबू का काम फिर से शुरू करादूँ तो प्रायश्चित्त हो जायगा। भगतसिंह को नीचा देखना पड़ेगा और उसका सत्या-नाश होगा, कमीना कहीं का।

इस विचार के आते ही पण्डितजी ने तुरन्त नौकर भेजकर उत्तमचन्द को घर पर बुलाया और उक्त प्रस्ताव किया। उन्होंने कहा कि वे दोनों छिपकर मनोहर बाबू से मिलें और उन्हें विश्वास दिलाएं कि यदि वे फिर से काम शुरू करने को तैयार हों तो सारे का सारा स्टाफ़ रणवीर बाबू के यहाँ त्यागपत्र देकर उनके पास काम करने को तैयार है।

उनके पास गँवाने को बेकार समय नहीं था। वे तुरन्त मनोहर बाबू के पास गये। मनोहर बाबू अपनी बैठक में राज-

कमल के साथ बैठे बातें कर रहे थे। पण्डितजी उस समय भावों के प्रवाह में इस सीमा तक बह रहे थे कि वहाँ पहुँचते ही मनोहर बाबू के चरणों पर गिर गये और बच्चों की तरह रोने लगे। पण्डित जी को देख उत्तमचन्द का भी दिल भर आया। वह भी मनोहर बाबू के पाँव पर गिर पड़े। मनोहर बाबू यह सब देखकर बहुत आश्चर्य में पड़ गये। उन्होंने पण्डितजी और उत्तमचन्द को अलग हटाया। बोले,

"पण्डितजी! यह पाप क्यों चढ़ा रहे हो?"

"नहीं। पाप उतार रहा हूँ।"

"वह कैसे?"

"मैंने आप पर बहुत अत्याचार किया। भगतसिंह के कहने में आकर, मैंने यह सब किया था .... ।"

"क्या रिवाल्वर आपने रखवाया था?" राजकमल ने विस्मय से पूछा।

"हाँ।"

"क्या अदालत में यह कहोगे?"

"अदलत में!" पण्डित जी काँप कर बोले।

"छोड़ो अब, जो होगया सो होगया।" मनोहर बाबू बोले, "जब साँप निकल गया, तो लकीर पीटने से क्या लाभ?"

"अभी तो साँप जीवित है और उसे मारना अति आवश्यक है।" उत्तमचन्द बोला, "परन्तु उसे मारने का दूसरा उपाय है।"

"वह क्या?" राजकमल ने पूछा।

"यदि मनोहर बाबू मानें।" उत्तमचन्द ने आँसू पोंछते हुए कहा, "और काम फिर से चलाने का बचन दें, तो हम सब के सब, सारा कर्मचारीवर्ग, आज ही त्याग-पत्र देकर इनके पास आने को तैयार हैं।"

"नहीं। ऐसा उचित नहीं।" मनोहर बाबू बोले।

"तो अनुचित भी नहीं।" राजकमल ने बात काटते हुए कहा।

"तुम चुप रहो जी।" वे मनोहर बाबू को सम्बोधित कर बोले। फिर उन दोनों से बोले–

"तुम्हारा प्रस्ताव विचारणीय है, परन्तु इसमें कोई विशेष कठिनाई तो नहीं ?"

"एक है," पण्डितजी ने कहा।

"क्या ?"

"हम दो सौ कारीगर हैं, किन्तु मशीनें केवल सौ हैं, और वे भी एक अर्से से बेकार पड़ी हैं।"

"क्या नई मशीनें नहीं मिल सकतीं ?"

"नई क्या, पुरानी मशीनें भी, कोशिश करने पर एक दो दिन में जुटाई जा सकती हैं। यदि आज ही किसी को शहर भेजा जाय, तो वह परसों तक लौट सकता है।"

"स्वीकार ! बिल्कुल स्वीकार, तुम स्वयं ही जाओ मुन्शी-राम," राजकमल ने कहा।

"नहीं" उत्तमचन्द बोले, "इन्हें यहाँ अभी काम है, हम गज्जनमल को भेज सकते हैं।"

"विचार बुरा नहीं" राजकमल ने कहा।

"मेरी अनुमति में ...." मनोहर बाबू कुछ कहने लगे।

"आपकी अनुमति फिजूल है, हम उसे सुनने तक को तैयार नहीं। अच्छा है आप इस विषय में मौन रहें। आपको हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है," और उनसे बोले—

"तुम लोग समय बर्बाद न करो। पण्डित जी ! काम शुरू करने के लिये कौनसा शुभ-मुहूर्त है ?"

"परसों बुध है," मुन्शीराम बोले।

"बुध काम सुध" राजकमल ने हँस कर कहा।

अगले दिन प्रातः, रणवीर कम्पनी के दो सौ अठारह कर्मचारियों ने, चौबीस घण्टे के नोटिस पर अपना त्याग-पत्र अर्पित किया। त्याग-पत्र देख भगतसिंह सटपटाये और बोले कि यदि वे इतना शीघ्र त्याग-पत्र स्वीकार कराना चाहते हैं तो उन्हें पहिली उजरत नहीं मिलेगी। पण्डित मुन्शीराम यह उत्तर सब कर्मचारियों के पास, कारखाने में लाये। उसी समय एक विशेष सभा बुलाई गई। उसमें फैसला किया गया कि भगतसिंह के विरुद्ध जुलूस निकाला जाय और उसके मकान को घेर लिया जाय। जब तक वहएक-एक पैसा चुका न दे, उसका पीछा न छोड़ा जाय। यदि वह फिर भी न माने तो मशीनों को बे-कार कर दिया जाय। सावधानी के लिये, गाँव के सब मार्गों और पगडण्डियों पर आदमी बिठा दिये गये कि कोई व्यक्ति पुलिस को सूचना न देसके।

एक दम जुलूस गाँव की गलियों में "भगतसिंह मुर्दाबाद,"

"बदमाश मैनेजर मुर्दाबाद," "शराबी मैनेजर मुर्दाबाद," "धोखेबाज मैनेजर मुर्दाबाद," के नारे लगाता हुआ गुज़रा। सब से आगे मुन्शीराम और उत्तमचन्द थे। वे झण्डा पकड़े हुए थे, जिस पर लिखा हुआ था "अमानतपुर-मज़दूर-यूनियन ज़िन्दाबाद।" जुलूस के साथ गाँव के दूसरे बेकार लोग भी मिलगये। बच्चों को तमाशा हाथ लगा। अपने पतियों से सहानुभूति दिखाती हुई, औरतें भी जुलूस में आकर मिल गईं। जब जुलूस उस घर के सामने पहुँचा, जहाँ भगतसिंह रह रहे थे, उसकी संख्या बहुत बढ़गई थी।

भगतसिंह ने छिपकर इतने बड़े जुलूस को देखा तो उसके होश उड़ गये। अपने विरुद्ध नारे और गालियाँ सुनीं तो वह क्रोध से पागल होगया। परन्तु वह अब कर ही क्या सकता था। उसे लोगों के इस अचानक परिवर्तन पर आश्चर्य हुआ। उसे चौक की पञ्चायत याद आगई, जब बिशनदास को सज़ा से बचाने पर, और गाँव के लिये एक गरीब-फण्ड स्थापित करके, उसने गाँव के प्रत्येक व्यक्ति की शुभ-कामनायें प्राप्त की थीं। उस दिन वह लोगों की दृष्टि में एक नेता था। आज वह एक नीच और बदमाश व्यक्ति है।

"कमीना·······कहीं का········। बदमाश। धोखे बाज़, फ़रेबी। पापी·······" उसने कानो में अँगुलियाँ अड़ालीं।

परन्तु उसने तत्काल ही वर्तमान स्थिति पर विचार किया और तीव्र बुद्धि से काम लेते हुए यह फैसला किया कि इस

समय लोगों के सामने झुकना ही उचित है। उसने अविलम्ब ही मुन्शीराम और उत्तमचन्द को बुलाया और कहा,

"आप लोगों ने व्यर्थ इतना कष्ट उठाया। मैं तो आपके जाने के बाद ही निर्णय कर चुका था कि आपकी मांगें स्वीकार करने योग्य हैं। लाइये मैं हस्ताक्षर करदूं, और वेतन अभी बंटवाए देता हूँ।"

"परन्तु एक मांग और है," उत्तमचन्द बोला।

"क्या ?"

"आपको लिखना होगा कि यह समझौता बिल्कुल शान्ति से हुआ, आपने सब मशीनों को ठीक दशा में पाया और आपको हममें से किसी के विरुद्ध कोई शिकायत नहीं, और किसी भी कर्मचारी के विरुद्ध भविष्य में मुक़द्दमा नहीं चलाया जायगा, और यह कि समझौता बिना किसी अनुचित दबाब के हुआ है।"

यह भगतसिंह पर कठोर चोट थी। इन लोगों ने उसकी नियत को भांप लिया था। परन्तु मरता क्या न करता। उसे लाचार होकर सब मांगों पर अपने हस्ताक्षर करने पड़े।

विजय के नारे लगाता हुआ जुलूस वापिस चला गया।

इक्कीसवां परिच्छेद

इस घटना से कुछ दिन पहले हरदेवसिंह भगतसिंह से मिलने आया था। हरदेवसिंह अमानतपुर का लोहार था। बहुत दिनों की बात है कि एक बार बाज़ार में बैठे बैठे, साधारण-सी बात पर हरदेवसिंह और भगतसिंह में अनबन हो गई। भगतसिंह ने उसे पीटना आरम्भ कर दिया। उसे बुरी तरह मारा। इसके बाद उसने एक फौजदारी मुकद्दमे में, उसके विरुद्ध गवाही देकर उसे जेल भिजवा दिया। परन्तु एक बार तो भगतसिंह ने हरदेव के साथ बहुत अत्याचार किया। वह कहीं से एक औरत उड़ा लाया, शायद विवाह करके या खरीद कर। भगतसिंह ने कुछ आदमियों के साथ मिलकर उसे भगवा दिया।

इस घटना के पश्चात्, कम-से कम लोगों ने, इस बात का अनुमान अवश्य लगाया था कि यदि हरदेवसिह अपने पिता का असली पुत्र है, तो उसे भगतसिंह से इसका बदला अवश्य लेना

चाहिये। भगतसिंह के शत्रुओं ने उसे उस समय ही भड़काया कि उसे तुरन्त ही फौजदारी मुकद्दमा दायर कर देना चाहिये, परन्तु हरदेवसिंह परिवार वाला व्यक्ति था और गाँव में रहना चाहता था। उसने सोच विचार कर यही निश्चय किया कि या तो गाँव में रहूँ या फौजदारी लड़ूं।

धीरे धीरे लोग इस बात को भूल भी गए। भगतसिंह भी भूल गया। परन्तु हरदेवसिंह के दिमाग में यह बात घर कर चुकी थी। सायंकाल के समय हरदेवसिंह को रणवीर के मकान पर देखकर, भगतसिंह दङ्ग रह गया। फिर उसने सोचा शायद उसका कोई मुकद्दमा है। सलाह लेने आया है। परन्तु भगतसिंह को देखकर हरदेवसिंह ने कहा,

"आप अपने घर चलिये।"

"क्यों?"

"काम है और वह वहीं बतलाया जा सकता है।"

ऐसा काम क्या हो सकता है जो केवल उसके घर पर ही बतलाया जा सकता है? परन्तु हरदेवसिंह ने ये बातें इस ढङ्ग से कहीं, कि भगतसिंह को उनमें कुछ बात नजर आई और उसके साथ अपने घर को चल दिया।

घर दिनों से खुला न था, इस कारण बैठक साफ न थी। भगतसिंह ने एक नौकर को साथ ले लिया था कि जल्दी जल्दी बैठक झाड़ दे।

जब वे दोनों कुर्सियों पर बैठ गये तो भगतसिंह बोले,

"कहो, क्या बात है ?"

"दिलीपकौर आपसे मिलना चाहती है।"

"दिलीपकौर !" जैसे भगतसिंह कुर्सी से उछल पड़ा। "दिलीपकौर यहाँ कैसे और कब आई ?"

"वह अभी अभी आई है। उसने मुझे बतलाया है कि उसका पति मरगया है।"

"पति मर गया है !" इस समाचार से जैसे भगतसिंह के शरीर में बिजली सी दौड़ गई।

"मर गया ! कब मरा ?"

"शायद तीन चार मास हो चुके"।

"तीन चार मास ! कमाल है हमें पता ही नहीं चला।" फिर थोड़ी देर के बाद बोला, "कहाँ भेंट हो सकती है" ?

"अभी अभी अंधेरा हुआ जाता है, उसे यहीं ले आता हूँ।"

"कोई देख लेगा ?"

"तो हरदेवसिंह किस मर्ज़ की दवा है। आप विश्वास रखिये, किसी को कानोकान पता न चलेगा।"

"तो ठीक है।"

और हरदेवसिंह दिलीपकौर को लिवाने चला गया। भगतसिंह ने नौकर को बुलाया और कहा,

"मेरे मित्र आ रहे हैं। उस घर से दूध के तीन गिलास और मिठाई यहाँ ले आओ और तुम स्वयं तीन घण्टे के बाद आओ। यदि कोई मिलने वाला आए तो कह देना कहीं गये हैं। यहाँ का

किसी को पता न चले। सुनते हो ना ?"

"जी सरकार। मेरे होते हुए किसी को कैसे पता चल सकता है ?"

नौकर जल्दी जल्दी मिठाई और दूध दे गया। पानी का एक घड़ा और गिलास भी रख गया। फिर स्वयं वापिस चला गया।

तो दिलीपकौर का पति मर गया, भगतसिंह पलङ्ग पर लेट कर सोचने लगे। कितने वर्ष होगए, जब उससे पहली भेंट हुई थी। तब उन दोनों की शादी न हुई थी। चौकियों का मेला था, जिसमें हजारों की भीड़ इकट्ठी होती थी। आस पास के देहात के लोग सज धज कर इस मेले में आते। वह भी सफेद तहमद, लम्बे घेर का कुर्ता, और हरे रंग की पगड़ी लपेटे हुए था। उसकी आँखों में काजल था, और गले में सोने का कण्ठा। हाथ में सिर से ऊंची लाठी थी जिसके दोनों तरफ लोहा लगा हुआ था। उसके साथ गाँव के दूसरे मित्र थे।

मेले में जाकर, उन्होंने ठेके की दूकान से बोतल ली, और घूमते घामते एक स्थान पर पहुँचे, जहाँ चन्डूल लगे हुए थे। वे तीन मित्र थे, एक पालकी में बैठ गए। गिलास निकालकर वे शराब पीने लगे, और मस्ती में आकर गाने लगे। चन्डूल घूम रहा था और वे गा रहे थे। इतने में उसकी दृष्टि दूसरे साथ वाले चन्डूल पर गई जहाँ कुछ लड़कियाँ एक पालकी में बैठी भूल रही थीं। इनको देखकर वे हंसी से दोहरी हुई जाती थीं। उनमें दिलीपकौर भी एक थी। मेला समाप्त होने पर वे उनके पीछे-पीछे होलिये, कुछ दूरी पर, ताकि किसी को बिल्कुल शक न हो। इनका गाँव मेले

वाले गाँव से दो मील दूर था। उसका नाम जगतपुर था। उन्होंने उसका घर अच्छी तरह देख लिया और लौट आए।

कुछ दिनों बाद, जब दिलीपकौर घर पर अकेली थी, उसने घर के बाहर एक साधु को खड़े पाया। जब वह अन्दर से आटे की मुट्ठी लाकर उसे देने लगी तो साधु महाराज बोले कि उन्हें भूख लगी है, अगर कुछ भोजन मिल सके तो बड़ी कृपा होगी। वैसे तो दिलीपकौर ऐसे साधुओं को मुंह न लगाती थी, जो इस प्रकार घर-घर भीख मांगते फिरते हैं, परन्तु उसे याद आया कि उस दिन उसने अधिक आटा गूंध लिया था, रोटियाँ अधिक बन गईं थीं। यदि उन में से चार पाँच रोटियाँ इस साधु को दे दूँ, तो माँ की डांट फटकार से बच जाऊंगी। माँ उस समय गाँव के दूसरी ओर बसन्तसिंह नम्बरदार की पत्नी स्वर्णकौर से मिलने गई थी। वह साधु की ओर ऐसे देखने लगी, जैसे कह रही हो "मुआ निगोड़ा कितना हट्टा कट्टा है, और रोटी माँगता फिरता है। इसे बैल की जगह हल में जोतो तो पता चले।" और फिर साधु से बोली,

"साधुजी, यहाँ अन्दर ड्योढ़ी में आजाइये, मैं रोटी लाती हूँ," और भागी भागी अन्दर गई। साधुजी के शब्द पर उसकी अपनी हंसी रुक न सकी और अन्दर जाते ही जोर से हंस पड़ी। जब वह पाँच रोटियों के ऊपर साग, और लस्सी का कटोरा भरकर लाई तो साधुजी ने पूछा,

"अन्दर कौन हैं, माई जी?"

"किसकी माई जी!" उसने हैरान होकर पूछा।

"आपकी, और किसकी ?"

"आपको कैसे पता चला ?"

"अभी कोई अन्दर हंस रहा था न ।"

"ओह, वह, हाँ, हाँ" वह मन्द मुस्कान से बोली, "नहीं, नहीं। माँ तो नम्बरदार के घर गई है।"

"नम्बरदार के घर !" अब साधुजी को कुछ धैर्य हुआ, और उन्होंने उसके हाथ से रटियाँ ले लीं। जब रोटियाँ दे कर वह अपना हाथ लौटाने लगी, तो वे हाथ की ओर ध्यान से देखकर बोले—

"तुम्हारा हाथ तो खूब है। बड़ा भाग्यवाला है।"

"आपको हाथ देखना आता है सन्तजी ?"

"इस सन्त को क्या नहीं आता ?"

"तो मेरा हाथ भी देखिये ना।"

"क्यों नहीं ?"

उसने अपना हाथ आगे बढ़ाया। वे उसे बड़े ध्यान से देखने लगे। पहिले हथेली की रेखाओं को देखा, फिर उसे दायें और बायें पलटाया। फिर अंगुलियों की लकीरों को देखने लगे, इसके बाद अंगूठे को गौर से देखकर बोले,

"हूँ, ठीक ही है।"

"क्या ठीक है महाराज ?" उसने पूछा।

"बोलो, क्या पूछना चाहती हो ?"

वह मौन रही।

"हम समझ गए। तुम्हें किसी से प्रेम है। अभी वह बिल्कुल नया-नया मालूम देता है। तुम्हारे हाथ की रेखा बतला रही है कि तुमने उस मनुष्य को अभी किसी भीड़ में देखा है।"

"भीड़ में ?"

"मतलब, जहाँ बहुत से आदमी इकट्ठे हुए हों। तुम्हारे हाथ से पता चलता है कि वह आदमी तुमसे प्रेम करता है।"

"परन्तु वह है कौन ?"

"वह एक धनी जमींदार का पुत्र होना चाहिए। उसका नाम 'भ' से आरम्भ होना चाहिये। जैसे 'भगवानसिंह', 'भगवन्त सिंह' और 'भगतसिंह'। 'भ' का अर्थ यह है कि वह बहुत भाग्यवान होना चाहिये, और उसके दिल में तुम्हारे लिए अत्यधिक प्रेम होना चाहिये।"

"उसे मैं कैसे मिल सकती हूँ ?"

"कैसे मिल सकती हो ? जरा अपना हाथ अच्छी तरह धो कर लाओ तो।"

वह भागी-भागी अन्दर गई। जल्दी जल्दी साबुन ढूँढ़ने लगी। उसे शायद चूहे ले गए थे। इस लिए आटे से ही हाथ मलकर वापिस आ गई। अब सन्तजी ने अपना हाथ उस कोमल और सुकुमार हथेली पर फेरा। फिर उसे पूरे ध्यान से देखा और बोले,

"मिल सकती हो, परन्तु उपाय करना होगा।"

"क्या उपाय ?"

"प्रातःकाल उठकर उत्तर की ओर स्थित बगीचे के पीछे, जो एक सन्त की समाधि है, उस पर जाकर दिया जलाना होगा और वहाँ यह धूप (उन्होंने उसे धूप देते हुए कहा) जलानी होगी। एक दिन के नागे के बाद वहाँ फिर जाना होगा। ऐसा करने से तुम्हारा प्रेमी भागा भागा वहाँ आयगा। यदि वहाँ न हुआ तो तुम फिर धूप जलाना, वह वहाँ अवश्य पहुँच जायगा।"

इतना कह कर साधुजी ने जल्दी जल्दी रोटी खाई, लस्सी का कटोरा पिया और अलख जगाते हुए वहाँ से बिदा हुए।

दिलीपकौर ने बिल्कुल ऐसा ही किया और आश्चर्य की बात यह हुई कि साधुजी के कथनानुसार भगतसिंह वहाँ मौजूद थे। इसके बाद वह छिप छिप कर उससे मिलती रही। वे दोनों आपस में बहुत प्रेम करते थे। तो विवाह ही क्यों न हो जाय? उसने अमानतपुर आकर अपने नाई किशन से बातचीत की। उसके हाथ पर दस का नोट रखा। नाई को अधिक समझाने की आवश्यकता नहीं होती। वह उसी दिन जगतपुर गया और वहाँ के नाई से दिलीप कौर के बाप के पास जाकर भगतसिंह की सिफारिश करने को कहा। उसने उसे एक रुपया दिया। गुल्लू नाई एक रुपया देख कर प्रसन्न हो गया और दिलीपकौर के पिता हरदित्तसिंह से जाकर भगतसिंह के खानदान की प्रशंसा के पुल बाँधने लगा। हरदित्त-सिंह पाँच सात मिनट तो सुनता रहा, फिर उसने अपना जूता उतार कर गुल्लू की मरम्मत करना शुरू कर दी। जब चार दर्जन के लगभग जूते लगा चुका तो उसने उसके मुंह पर मुक्के बरसाना शुरू किया।

इनसे तंग आकर और variety के विचार से उसने उसे दोनों हाथों में लिया और नीचे पटक दिया। अब गुल्लू नाई था, जाट नहीं। न तो उसने अधिक घी खाया था, न दूध ही पिया था। अधिक समय तक सहन न कर सका और मूर्छित होकर गिर पड़ा। हरदित्तसिंह ने इधर उधर पानी ढूँढा, परन्तु इस हवेली में जहाँ यह तमाशा हो रहा था, हुक्के के अतिरिक्त और कुछ न था। हरदित्ते ने तुरन्त हुक्के का पानी गुल्लू के मुंह में डाला, कुछ सिर पर डाला, और उसीसे उसकी आँखों पर छींटे मारे। जब गुल्लू को होश आया तो हरदित्ते ने उसे टांग में टांग देकर जमीन पर गिराया, उस पर सवार होकर नीचे से दोनों हाथ उसकी गरदन में डाले और उसके माथे को जमीन पर रगड़ा। नीचे से आवाज आई,

"चौधरीजी! अब बहुत हो गई। अब तो छोड़ दो।"

"साले नौकटे, तुम फिर यह रिश्ता लाओगे?"

"चौधरी जी! यदि मैंने रिश्ते के बारे में जबान भी खोली तो बाप का नहीं, किसी और का होऊंगा।"

"साले, वह तो तू पहिले ही नहीं, तेरे बारे में मैं सब जानता हूँ।"

"चौधरी जी, किसी की सौगन्ध खिला लो, कभी फिर नाम भी लूँ तो।"

"मुझ से तो न लोगे, परन्तु दिलीपो की माँ को जाकर अवश्य उकसाओगे"।

"मैं क़सम खाता हूँ, मैं तो क्या मेरी कई पीढ़ियाँ भी तुम्हारे

घर की तरफ देखने की हिम्मत न करेंगी।"

चौधरी ने उसे छोड़ दिया। वह कपड़े झाड़ कर खड़ा हुआ, और जाने लगा। चौधरी ने पीछे से आवाज़ दी। वह रुका तो चौधरी ने कहा,

"देखो, इस बात का किसी से जिकर न करना।"

"नहीं, चौधरी जी", वह बाजू और सिर हिलाकर बोला, "यह बात करने की थोड़ी है।"

चौधरी के लिए यह एक खेल था, परन्तु गुज्जू एक सप्ताह बिस्तर पर से नहीं उठा। उसका अङ्ग अङ्ग दर्द कर रहा था। तीन दिन तक तो वह मालिश करवाता रहा।

वस्तुत: चौधरी ने यह सब कार्यवाही इस कारण की थी कि उसने दिलीपो का सम्बन्ध धोलियाँ गाँव के एक बूढ़े जैलदार से निश्चित किया था और उसने बारह सौ रु० देने का बचन दिया था। हरदित्ता यह नहीं चाहता था कि उसके हाथ से यह अच्छा सौदा निकल जाय। इसलिए वह दिलीपो के लिये किसी अन्य रिश्ते को सदा के लिए बन्द कर देना चाहता था। इसके बाद किसी नाई को उसके घर जाने का साहस ही नहीं हुआ।

भगतसिंह के लिए यह बड़ी सख्त चोट थी। दिलीपो की शादी धोलियां के गुरमीतसिंह जैलदार से हो गई। भगतसिंह फिर भी छिप छिप कर उससे मिलता रहा। परन्तु एक दिन गुरमीतसिंह के जवान लड़के सुरजीतसिंह ने उसे संदेशा भेजा कि यदि उसने आइन्दा दिलीपो का विचार भी किया तो और

जो कुछ भी हो, उसका सिर उसकी गरदन पर न होगा। भगतसिंह को क्रोध आया, परन्तु उसने ठन्डे दिल से सारी बात पर विचार किया और इस परिणाम पर पहुँचा कि एक जैलदार की पत्नी के लिये सिर को गरदन से जुदा करवाना काफी मंहगा सौदा है। इसके बाद उसकी शादी शारदा से हो गई।

आज कई सालों के बाद दिलीपकौर से फिर उसका मिलन हो रहा था। वस्तुत: उसे भगतसिंह पर अत्यन्त क्रोध था। वह समझती थी कि उसका प्यार सच्चा है, और उससे शादी करने के लिये वह हर मुश्किल को पार कर लेगा। जैलदार के साथ शादी से पूर्व उसने रोकर भगतसिंह से प्रार्थना की थी कि वह उसे इस विपत्ति से बचा ले और वह उसके साथ कहीं भी भाग जाने को तैयार थी। उसका जवान दिल हर आफ़त सहने को तैयार था। परन्तु भगतसिंह उसके साथ झूठे वायदे और टालमटोल करता रहा। यहाँ तक कि उसकी जैलदार के साथ शादी हो गई। शादी के बाद भी उसके वायदे बने रहे, और जब सुरजीतसिंह ने उसे धमकी दी तो उसने दिलीपकौर से मिलना ही बन्द कर दिया।

दिलीपकौर को इस बात का पक्का निश्चय हो गया कि उसका प्रेम झूठा है। वह केवल लोलुपी कुत्ता है, सच्चा प्रेमी नहीं। वह कमीना है, स्वार्थी है। उसने उसे बदनाम किया, झूठे वायदों पर रखा, और उसका अपमान किया। ऐसे दुष्ट से अवश्य ही बदला लेना चाहिये।

इतने में द्वार खुला। दिलीपकौर और सुखदेवसिंह अन्दर आए। वह अब प्रौढ़ा स्त्री थी। उसका यौवन, उसका सौंदर्य और उसकी आभा उसी तरह कायम थी। ये व्यतीत होने वाले वर्ष उसके समीप से व्यतीत होते गए उसको छुए और उस पर प्रभाव डाले बिना। वह काला दुपट्टा ओढ़े गवर्डीन का सूट और गुर्गाबी पहिने थी। भगतसिंह ने उन्हें कुर्सियों पर बिठलाया और कुशल समाचार पूछा। फिर मिठाई और दूध सामने रखा। तब हरदेवसिंह भगतसिंह को संबोधित करके बोला,

"मुझे एक अत्यन्त आवश्यक काम है। अब मैं चलता हूँ।" जैसे सबको यह प्रस्ताव पसन्द आगया।

उसके जाने के बाद भगतसिंह ने द्वार बन्द कर लिये और बोला—

"मुझे बूढ़े के मरने का समाचार तक नहीं मिला।"

"आपको कैसे मिल सकता है!" उसने ताने से कहा। "आपके विचार में तो मैं भी मर चुकी थी।"

"ऐसा क्यों कहती हो? मैं तो जानता था आज नहीं तो कल मरेगा। परन्तु खूंसट ने मरते मरते भी इतने साल लेलिए।"

"और आप इतने साल उसके मरने की प्रतीक्षा करते रहे!"

"बिल्कुल! अब तो मैदान एकदम साफ है। गुरमीतसिंह मरा और अपने साथ शारदा को भी ले गया।"

"या शारदा उसे ले गई।"

"अभी तक इस दुनियाँ में तुम्हारा बूढ़े का साथ था। अब

वहाँ पर शारदा और उसका गठ-जोड़ होगा।"

"और इस दुनिया में ?" दिलीपकौर के मुंह से अचानक निकल गया।

"भगतसिंह और दिलीपकौर का।"

"परन्तु बेचारी सुषमा कहाँ जायगी ?"

"तुम उसे कैसे जानती हो ? क्या उसके बारे में कुछ सुन चुकी हो ?"

"याद रखो औरतों के चार कान होते हैं।"

"और आठ ज़ुबानें।"

"नहीं दो," वह मुस्करा कर बोली, "और इसी कारण सुषमा और भगतसिंह की ख़बर चारों तरफ फैली हुई है।"

"भगतसिंह खबरों की परवा नहीं करता।"

"कुछ ख़बरें अवश्य उसकी परवा करती हैं।" फिर वह बात बदल कर बोली, "तो फिर सुषमा का क्या होगा ?"

"उसका पति अभी जीवित है।"

"परन्तु मरे हुओं से बदतर।"

"क्या यह भी ख़बर है ?"

"बहुत गर्म"।

"तो यह हमारे लिए लाभदायक सिद्ध होगी।"

"लाभदायक ! वह कैसे ?" उसने हैरानी से पूछा।

"बात यह है कि अपना घर बसाने और नई ज़िन्दगी आरम्भ करने के साथ यदि हम रणवीर के व्यापार को भी

संभाल लें तो क्या हर्ज होगा।"

"हर्ज तो कुछ न होगा," वह एक रूखी हँसी हँस कर बोली, "लेकिन लाभ भी कुछ न होगा।"

"लाभ क्यों न होगा" ?

"नहीं नहीं, अवश्य होगा," उसने तुरन्त कुछ सोचकर कहा।

"परन्तु रणबीर अपने जीते जी अपना व्यापार कैसे छोड़ सकता है ?" उसने पूछा।

"तो मरकर ही सही", उसने कठोरता से कहा।

"मरकर !" वह घबरा कर बोली।

"इसमें घबराने की आवश्यकता नहीं। दुनियाँ में ऐसे ही काम चलता है", भगतसिंह बोला।

"यह बात है !" दिलीपकौर सोचकर और सिर हिलाकर बोली।

"क्यों, तुम इसे पसन्द नहीं करतीं ?"

"पसन्द !" दिलीपकौर कुछ सोचने लगी, फिर बोली,

"अच्छा अब मैं चलती हूँ।"

"यहाँ न सोओगी ?"

"नहीं ! अब पक्की तरह घर की मालकिन बनकर ही सोऊंगी।"

"और अब भी क्या आपत्ति है ?" उसने आशा भरी दृष्टि से देखकर कहा।

"इस समय तो आपत्ति ही आपत्ति है"। वह बोली।

"बड़ी कठोर हो।"

"यह केवल आपका विचार है। आपके लिये मेरा दिल बिल्कुल कठोर नहीं।"

"तो अब कहाँ जाओगी ? हरदेवसिंह के यहाँ ?"

"वहीं। उसकी बहिन मेरी धर्म बहिन है।"

"कैसे ?"

"वह मेरी सुसराल ब्याही है। वहाँ पर मेरी उसके साथ बहुत पक्की मित्रता हो गई है।"

"कहीं उसके भाई से तो नहीं ?"

"ऐसा कहते आपको लज्जा नहीं आती ?" उसने रोष के साथ कहा।

"अरी ! मैंने तो हँसी में कहा था और तुम रूठ गई।"

"आपको मुझ पर शक है" ?

"किस कमबख्त को शक है ?" वह घबरा कर बोला। "मैं ने तो हँसी में कहा है।"

"सच कहते हो ?"

"बिल्कुल। वाहगुरु की सौगन्ध।"

"अच्छा, अब चलती हूँ।"

"मैं छोड़ आऊं ?"

"नहीं, मैं चली जाऊंगी।"

"तुम्हारी इच्छा !"

"रोज मिला करूंगी। इसी समय," और वह चली गई।

बाइसवां अध्याय

दिलीपकौर की मुलाक़ात के कुछ दिन बाद ही भगतसिंह के विरुद्ध हड़ताल और विरोधी-प्रदर्शन होने लगे। उसे न ही जनरल मैनेजर के स्थान से हाथ धोना पड़ा अपितु फर्म भी टूट गई। वह जानता था कि इसकी सारी जिम्मेदारी मनोहर बाबू पर है। यदि मनोहर आग पर हाथ रखकर भी उसे आकर विश्वास दिलाता कि इस विषय में उसका कोई हाथ नहीं, और यह सब उत्तमचन्द और मुन्शीराम के षड्यन्त्र का परिणाम है, तो वह कभी भी भरोसा न करता।

यह घटना इस प्रकार अचानक घटी कि उसके होशहवास ही उड़ गये। उसकी सब स्कीमें मिट्टी में मिलती हुई मालूम हुई, और उसकी सब आशाएँ, केवल स्वप्न बनती दिखाई दीं। परन्तु दूसरे गुणों के अतिरिक्त, उसमें एक विशेष गुण यह था कि वह बड़ी आपत्ति में भी एक दम अपने आपको संभाल लेता

और दिल के बजाय दिमाग़ से काम लेना आरम्भ कर देता।

वह ठण्डे दिल से सारी घटना पर विचार करने लगा। अब भी कुछ न बिगड़ा था। यदि कारखाना खतम हो गया है तो वह फिर से चलाया जा सकता है। अगर न भी चलाना हो तो रणवीर की धन सम्पत्ति को अधिकार में करके उसे मार्ग से हटाया जा सकता है, और यह सारा काम इस सावधानी और योग्यता से किया जा सकता है कि किसी को इस पर सन्देह तक न हो।

इस घटना के बाद वह सुषमा से मिला और उससे कहने लगा कि अब उसका यहाँ रहना बेकार है। उसने रणवीर के लिए इतना कुछ किया परन्तु मनोहर ने आकर सब पर पानी फेर दिया। संभव था कि आज वे लोग मुझे जान से ही मार डालते। इस पर रणवीर आकर उल्टा मुझ पर बिगड़ेगा, और सारी बात का जिम्मेदार मुझे ही ठहराएगा। इस सब झगड़े से बचने का एक ही उपाय है कि मैं अपनी जमीन और मकान रणवीर के नाम लिखाकर हरिद्वार चला जाऊँ और जो जीवन के चार दिन बचें उन्हें ईश्वर की सेवा भक्ति में लगाऊँ।

"इसके लिए अभी बहुत समय पड़ा है," वह बोली।

"परन्तु लोग तुम्हारा नाम तो मेरे साथ घसीट रहे हैं," वह बोला। "रणवीर को लोगों ने पहले ही पत्र लिखकर मेरे और तुम्हारे सम्बन्ध के बारे में बहुत कुछ लिख दिया है।"

"फिर?"

"फिर वह आते ही तुम्हारे पीछे पड़ जायगा। यह भी तो हो सकता है कि मनोहर उसे काम का लालच देकर अपनी तरफ कर ले और सब कुछ बतलादे। इसका परिणाम यह होगा कि या तो वह तुम्हें घर से निकाल दे या तुम्हें विष देदे।"

"विष!" वह घबरा कर बोली।

"हाँ, विष। लोग प्रायः ऐसा ही करते हैं। बदनामी से बचने के लिए स्त्री को विष दे देते हैं, और मुझे दृढ़ विश्वास है कि वह तुम्हें घर से निकालने के बजाय जहर देना पसन्द करेगा।"

"फिर?" वह घबरा कर बोली।

"अब तुम देखलो। स्त्रियों की निर्बलता से पुरुष कितना अनुचित लाभ उठाते हैं।"

"पुरुष! पुरुष! पुरुष!" वह दाँत पीस कर बोली। "सदा ही पुरुष। उसका क्या अधिकार है कि वह मुझे जहर दे। मैं क्यों न................"

"क्या कहा? परन्तु स्त्री अबला होती है। उसमें इतना साहस ही कहाँ होता है?" वह व्यंग से बोला।

"क्यों नहीं होता?"

"कष्ट कुढ़ना, अत्याचार सहना, दुखी होना पसन्द करेगी, पुरुष के विरुद्ध कोई कदम उठाने का साहस न करेगी।"

"परन्तु क्या आप इस बारे में मेरी सहायता कर सकते हैं?"

"सुषमा! तुम अभी तक यह नहीं समझ सकीं कि भगतसिंह

बातें कम और काम अधिक करता है। उसने तुम्हारे लिए अब तक क्या नहीं किया ? इतना प्रयत्न करने के बाद उसने तुम्हें इन अत्याचारियों से छुटकारा दिलाया। तुम्हारे प्रेम के लिए, उसने अपनी बदनामी कराई। जो अपमान और बदनामी आज मेरी हुई वह इस कारण कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ। इतना कुछ तो मैं सह चुका हूँ, अब यदि कहो तो जहर भी खाने को तैयार हूँ। कुएं में कूद सकता हूँ। फाँसी पर लटक सकता हूँ। केवल तुम्हारे सङ्केत की आवश्यकता है।"

"नहीं, नहीं, ऐसा न होगा। हमारे प्रेम के मार्ग में कोई बाधा न होगी ! प्रेम, बाधाओं की चिन्ता नहीं करता और न आपत्तियों की हम उन्हें पार करेंगे।"

"परन्तु मार्ग कांटों से भरपूर और भयङ्कर है।"

"जानती हूँ।"

"बिल्कुल ?"

"तो क्या रणवीर..............."

"को मार्ग से हट सकूंगी, यही न ? हाँ बिल्कुल ! एकदम। आप मुझे वह ला दीजिये।"

"वह तो मैं लादूँगा। परन्तु तुम जरा विचार करलो।"

"मैं विचार कर चुकी हूँ।"

"तो ठीक है।"

सुषमा से छुट्टी पाकर, भगतसिंह ने रणवीर को तार दिया कि तुरन्त पहिली गाड़ी से चले आओ। गाड़ी अगले दिल प्रात:काल

स्टेशन पर आती थी। वह वहाँ ही जा पहुँचा।

जाने से पूर्व उसने अपना बिस्तर और सामान रणवीर के घर से उठवा लिया था और सुषमा को समझा दिया था कि नीतिवश ऐसा करना आवश्यक है।

रणवीर के गाड़ी से उतरते ही, भगतसिंह उसे वेटिङ्ग-रूम में ले गया और वहाँ उसने उसे सारी परिस्थिती समझा दी। परन्तु इतना अन्तर रखा कि सब बात उसने अपने ढंग से बतलाई और यह उसे खूब समझा दिया कि सारे का सारा अपराध मनोहर बाबू का है। राजकमल ने उसे घूंस देकर छुड़ाया है और लोगों में इन दोनों ने बेचारी सुषमा को बुरी तरह बदनाम कर दिया है। यदि वह उसे न रोकता तो उसने अब तक कभी की कुएं में छलांग लगाली होती या विष खा लिया होता। दूसरे, मनोहर ने, उत्तमचन्द और मुन्शीराम को रिश्वत देकर अपनी तरफ मिला लिया और इन दोनों ने सब कारीगरों को वहाँ से हटाकर, मनोहर की फर्म में लगवा दिया। मनोहर अपना बदला लेने पर तुला हुआ है। उसने कुछ लोगों से कहा है कि जब तक वह मुझसे और विशेषकर तुमसे बदला नहीं ले लेता, चैन से नहीं बैठेगा। शायद वह तुम्हें कत्ल करने का षड्यन्त्र भी रच रहा है। मुझे कुछ लोगों ने मनोहर की इस चाल के बारे में बताया है। अब जरा तुम संभल कर रहना। परन्तु घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। यदि तुम मेरा साथ दोगे, तो सब ठीक हो जायगा और ऐसा पांसा पलटूंगा कि मनोहर बाबू देखते रह जायंगे।

उनका काम एकदम फिर फेल हो जायगा और रणवीर फर्म फिर चमक उठेगी । भगतसिंह ने यह और कहा कि यदि तुम्हें मुझ पर संदेह है तो अभी बतला दो, क्योंकि मेरा तो अब कुछ है नहीं । बहुत खाया पिया और कमाया है । अब जरा चार दिन राम-भजन में क्यों न बितादूँ । अब केवल एक ही अभिलाषा है, कि तुम्हारे शत्रु के एक बार दांत खट्टे कर, तुम्हारी फर्म को फिर से ऊपर चढ़ा दूं । फिर तुम जानो और तुम्हारा काम ।

रणवीर को इस प्रकार पक्का करके कि कहीं मनोहर के जाल में फिर न फँस जाय, और निश्चित होकर भगतसिंह रणवीर के साथ अमानतपुर को चला । रणवीर के घर दाखिल होते ही सुषमा फूट-फूट कर रोने लगी और बोली—

"मैं अब आपको घर से कहीं न जाने दूंगी । इस बार भाग्य अच्छा था कि बच गई । यदि उस दिन भगतसिंह यहाँ न होते तो आपके भाई के छोड़े हुए आदमियों ने उसी दिन मेरा खून कर दिया होता और घर को जलाकर राख कर दिया होता । अब मैं आपको बिल्कुल न जाने दूंगी ।"

रणवीर घर की दशा देखकर सिटपिटा गया । भगतसिंह ने ठीक कहा था कि उसे घर से बाहर नहीं जाना चाहिये । दौरे के लिये एजेन्टों को भेज देना चाहिये । यह नहीं कि वही सदा दौरे पर रहे । प्राय: एजेन्ट ही जाते परन्तु कभी कभी बड़े व्यापारियों से मिलने के लिये उसका जाना आवश्यक था । उसे यह क्या

मालूम था कि उसके जाने के बाद ही मनोहर जेल से छूट आएगा और आते ही उसके विरुद्ध इतना भयङ्कर तूफान खड़ा कर देगा। मनोहर ने उसका सत्यानाश करने में कुछ कसर नहीं उठा रखी। यदि उसका पूरा दाव चल जाता, तो शायद उसके घर को भी जला डालता। अब वह किसी दया का पात्र नहीं। उससे किसी प्रकार की सहानुभूति नहीं की जा सकती। और उससे इस अपमान और तबाही का प्रतिकार लेना होगा। उसे क्षमा नहीं किया जा सकता। भाई हुआ तो क्या?

इस विषय में भगतसिंह की सम्मति आवश्यक थी।

तेईसवां परिच्छेद

दिलीपकौर प्राय: भगतसिंह से मिलती रहती थी और उससे अत्यधिक प्रेम प्रकट करती। एक दिन बोली—

"देखिये। अब मेरा बुरा हाल हो रहा है। हमें शीघ्र कहीं भाग चलना चहिये।"

"कुछ दिन और रुक जाओ। रणवीर के भाग्य का निपटारा करके ही चलेंगे।"

"अब क्या देरी है?" उसने पूछा।

"कुछ नहीं, अब सब तैयार है।" और उसी शाम वह रणवीर के घर गया। वह वहाँ नहीं था।

यह और भी अच्छा हुआ। उसे सुषमा से सारी बात करने का अवसर मिल गया। बोला,

"देखो सुषमा, अब हम अधिक समय यहाँ नहीं रह सकते। तुम आज रात सारे आभूषण, रुपये और कीमती कपड़े जमा

करलो। सुबह इन सबको घर रखेंगे और कल आधी रात को घर के नीचे खड़ा रहूँगा, तुम तुरन्त मेरे साथ चली आना। कार तैयार मिलेगी, और हम भाग चलेंगे। परन्तु उसका क्या करोगी ?"

"जो कुछ फैसला हुआ था।"

"मैंने यह सोचा है कि रणवीर को एक जड़ी बूटी लाकर दूंगा। तुम उसे पिला देना। उससे वह नहीं मरेगा, अपितु वह चौबीस घण्टे के लिए मूर्छित हो जायगा। इतने में हम भाग खड़े होंगे।"

यह उपाय उसे वस्तुतः दिलीपकौर ने बताया था। उसने कहा था कि रणवीर को एकदम मारना ठीक नहीं। उसे एक ऐसी जड़ी बूटी दी जायगी, जिससे वह एक-दम नहीं मरेगा। वह जड़ी बूटी उसके शरीर पर धीरे धीरे अपना असर डालेगी और वह कुछ दिनों बाद मर जायगा। इस तरह उसके मरने पर किसी को संदेह न होगा।

अगले दिन प्रातः भगतसिंह हरदेवसिंह के घर गया। वहाँ सदा के अनुसार दिलीपकौर ने उन्हें अत्यन्त प्रेम से मिठाई खिलाई और गर्म दूध का गिलास पिलाया। उसने अनुभव किया कि दूध का स्वाद कुछ बदला हुआ है। परन्तु उसने सोचा कि शायद मेरे मुंह का स्वाद खराब हो।

दिलीपकौर बोली—"देखो प्यारे! आज तुम्हारा अन्तिम दिन है।"

"अन्तिम दिन ?" वह हँसकर बोला।

"मेरा मतलब यहाँ पर।"

"ओह! तब सही" उसने बनावटी तौर पर एक लम्बी सांस खींचकर कहा।

"मैं आज रात को बिल्कुल तैयार रहूँगी। बहरामे वाले कुंए पर तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगी।"

"बिल्कुल! यदि भगवान् ने चाहा तो सब ठीक होगा।"

"इसकी तुम चिन्ता न करो। भगवान् हमेशा ही अच्छा करते हैं। उनके घर में कोई अन्याय नहीं।"

"तुम्हारा भगवान् पर इतना भरोसा कब से हुआ है?"

"आज से तुम्हें भी हो जायगा।"

"मुझे भी! खूब" वह अट्टहास के साथ बोला—

"हाँ, यदि स्कीम सफल हुई तो होना ही चाहिये।"

"स्कीम सफल होगी यदि आप यह दवाई जो आपको दी है सुषमा को दे देंगे, और उसे समझाएंगे कि यह दवाई अभी से दूध में भिगोकर रख दे। कम से कम चार घण्टे भिगोनी चाहिये। तुम रणवीर के पास बैठकर दो घण्टे खूब घुल-मिलकर बातें करना, ताकि उसको किसी प्रकार का संदेह न हो।"

"बहुत अच्छा, सरकार। जो आज्ञा।" भगतसिंह ने मुस्करा कर कहा और वहाँ से सीधा रणवीर के मकान पर पहुँचा।

सुषमा ने उसे छत से आते देखा तो तुरन्त ड्योढ़ी में आई और उससे जड़ी बूटी ली। इसके बाद जल्दी-जल्दी अपने कमरे

में चली गई। भगतसिंह सीधा रणवीर के कमरे में पहुँचा। वे कुछ लिख रहे थे।

"क्या कर रहे हो, रणवीर?"

"पत्र लिख रहा हूँ।"

"किसे?"

"मनोहर बाबू को।"

"मनोहर बाबू को?" वह हैरानी से कुर्सी पर उछल कर बोला।

"कल रात उनका नौकर मेरे नाम एक पत्र लाया। वह यह है", उन्होंने मेज पर पड़ा हुआ पत्र भगतसिंह के हाथों पर रख दिया।

"पढ़ो"। भगतसिंह बोला।

"मेरे प्यारे भाई"। रणवीर ने पढ़ना आरम्भ किया।

"मेरे प्यारे" भगतसिंह ने कहा।

"यह हमारा अति-दुर्भाग्य था कि हम पर ऐसी आपत्तियाँ पड़ीं और हमारे बीच में विरोध की दीवार खड़ी हो गई। ऐसी बातें हुई जिनको सुनकर स्वर्गीय पिताजी की आत्मा दुखी होती होगी। मेरे पास इस बात का पूरा और पक्का प्रमाण है कि हमारे बीच घृणा पैदा करने की जिम्मेदारी केवल एक व्यक्ति पर है और वह भगतसिंह है।"

"भगतसिंह है!" भगतसिंह ने ताने से कहा। "उस व्यक्ति ने स्वाभाविक जलन से विवश होकर, हमारी तेज चलने वाली गाड़ी

को उलटने का प्रयत्न किया। गाड़ी तो उलट गई, परन्तु सौभाग्य से पूरी तरह नहीं टूटी।

"मेरे पास इस बात का भी पूरा प्रमाण मौजूद है और यदि भगतसिंह चाहे तो उसे न्यायालय में भी सिद्ध किया जा सकता है कि मेरे घर रिवाल्वर रखने की सारी जिम्मेदारी उसकी ही थी। मेरे पास यह भी प्रमाण मौजूद है कि उसने दूसरे गांव जाकर पिस्तौल खरीदी थी।"

"झूठा कहीं का!" भगतसिंह ने कांपते हुए कहा।

"मुझे तबाह करने की उसने पूरी कोशिश की, परन्तु असफल रहा। अब वह तुम्हें बरबाद कर रहा है। तुम्हारी इज्जत तो उसने तबाह कर ही दी है। सुषमा के साथ उसके गहरे सम्बन्ध को कौन नहीं जानता? तुम्हारा काम उसने नष्ट कर दिया है। यह बिल्कुल असत्य और सफेद झूठ है कि मुन्शीराम और उत्तमचन्द को मैंने या राजकमल ने बहकाया था। ऐसा कहकर वह तुम्हें बरगला रहा है। अब शायद उसकी लोलुप दृष्टि तुम्हारी संपत्ति, तुम्हारे रुपयों, अथवा आभूषणों पर है। यह बड़ी बात नहीं जब कि एक दिन वह और सुषमा तुम्हें चकमा देकर चम्पत हो जाएँ..............."

"बन्द करो इसे"। भगतसिंह चिल्लाकर बोला। "मैं इस पर मुकद्दमा चलाऊंगा। यह मेरा, तुम्हारा और एक कुलीन स्त्री का अपमान है।"

"परन्तु मैं बड़े भाई की हैसियत से तुमको एक बार फिर

समझाता हूँ कि मैं अब भी सब पुरानी घटनाओं को भूलने के लिये तैयार हूँ। तुम्हारी भाभी अब भी तुम्हें याद करके रोती है। हम यह समझने को तैयार हैं कि यह समय एक भयङ्कर स्वप्न था, जो बीत गया। तुम आज ही पवित्र और साफ हृदय से मेरे पास चले आओ या मुझे लिखो। मैं और नीलिमा दोनों तुम्हारे पास आने को तैयार हैं। तुम अभी से काम में शरीक हो जाओ, तुम्हारा वही स्थान होगा जो पहिले था………………।"

"तुम्हें फांसना चाहता है। परन्तु अब वह नहीं फांस सकता।" भगतसिंह दाँत पीसकर बोला। परन्तु जैसे गहरी नींद उस पर आक्रमण कर रही हो। उसकी आंखें एक-दम अपने आप बन्द होने लगीं। शायद वह आँखें बन्द करके सुन रहा था।

"मैं तुम्हारी दो दिन प्रतीक्षा करूंगा। इसके बाद तुम पछताओगे।" यह कहकर रणवीर ने भगतसिंह की तरफ देखा। वह सो गया था। परन्तु यह अजीब नींद है, गरदन एक ओर लटक रही है। टांगें विचित्र रूप से फैलाए हुए है। परन्तु यह जबान बा……ह……हर "…………भगतसिंह भगतसिंह।" रणबीर ने चिल्लाकर उसे हिलाया, "भगतसिंह, भगतसिंह, सुषमा, भगतसिंह मर गया। भगतसिंह मर गया।" उसकी चीखें घर की दीवारें पार कर गईं।

"मर गया! भगतसिंह मर गया!" चिल्लाती हुई सुषमा कमरे में भागी आई। न जाने कैसे और कहाँ से लोगों का एक समूह कमरे में प्रविष्ट हो गया। चारों ओर शोर मच गया। लोग

अपने अपने काम छोड़कर रणवीर के घर पहुँचे। उन्होंने भगतसिंह की लाश को घेर लिया।

"यह ज़हर का मामला है," निहालसिंह बोला।

"इन्होंने इसे मारा है," गुरवचनसिंह चिल्लाकर बोला।

"बाँध लो इन दोनों को"! तीरथराम ने ऊंची आवाज में कहा।

"तुरन्त पुलिस बुलाओ" रहमत पञ्च बोला।

"मार्ग छोड़ दो। मनोहर बाबू आए हैं।" और भीड़ को चीरते हुए मनोहर और राजकमल आगे बढ़े।

"देख लीजिये भाई की करतूत"! भैंरोराम महाजन ने कहा।

"इनका तो यह शत्रु है", चिड़ीमल बोला।

"आप खामोश रहें तो अच्छा होगा।" मनोहर बाबू ने उसे एक मीठी लताड़ दी। फिर भाई से बोला,

"रणवीर यह क्या है?"

"भगतसिंह मर गये।"

"यह तो मैं भी देख रहा हूँ, परन्तु कैसे मरे?"

"अभी अभी मैं उन्हें आपका कलवाला पत्र सुना रहा था। और यह सुनते सुनते मूर्छित हो गए और मर गए।"

"तो इन्हें आपने नहीं, पत्र ने मारा है।" गुरबख्शसिंह पटवारी ने ताने से कहा।

"पटवारीजी!" राजकमल बोले। "आप जैसे समझदार व्यक्ति को ऐसे वाक्य मुंह से नहीं निकालना चाहिये। यदि यह रणवीर का

काम है तो न्याय इन्हें क्षमा नहीं करेगा। पुलिस आएगी और सब पता चल जायगा। हत्या कभी नहीं छिप सकती।"

सब लोगों ने सिर हिलाकर जैसे स्वीकृति दी। मनोहर बाबू की तो सबके दिल में इज़्ज़त थी। पटवारी जी लज्जित होकर चुप हो गये।

जब तक पुलिस न आई कोई वहाँ से न उठा। लोगों को शक था कि रणवीर या सुषमा या कोई नौकर कुछ गड़बड़ न करदे। इसलिये लोगों ने खुद ही सब कमरों का पहरा दिया, और नौकरों को भी वहाँ से हिलने न दिया।

दोपहर से पहिले ही पुलिस की लारी पहुँच गई। पुलिस इन्सपेक्टर चौधरी लालसिंह के साथ चार सिपाही भी थे। चौधरी साहब तुरन्त ही घटना-स्थल पर जा पहुँचे और रणवीर का बयान क़लमबन्द किया। उसने अक्षरशः वही कहा जो सही था और मनोहर बाबू का पत्र चौधरी साहब को सौंप दिया। फिर सिपाहियों को लेकर उन्होंने मकान की तलाशी ली। सारे मकान में कुछ न मिला। तब रामदीन सिपाही की दृष्टि ऊपर ताक़ में रखे हुए गिलास पर पड़ी। उसने संभालकर उसे उठा लिया, और लाकर चौधरी साहब को दे दिया।

चौधरी साहब ने सुषमा को वह गिलास देकर पूछा,

"यह दूध कैसा है?"

वह देखकर घबराई और कांपने लगी। फिर भर्राई हुई आवाज़ में बोली,

"लेकिन मैंने भगतसिंह को कुछ नहीं दिया।"

चौधरी ने बाहर से एक कुत्ता बुलवाया और एक कटोरी में दूध डालकर उसे पिलाया। फिर उस कुत्ते को रस्सी से बाँधकर वहीं रख लिया।

दो घण्टे बाद कुत्ता मर गया। पुलिस ने रणवीर और सुषमा दोनों को हिरासत में ले लिया।

मनोहर बाबू को इस बात का पक्का विश्वास था कि रणवीर भगतसिंह को विष नहीं दे सकता था और पुलिस का यह ख्याल था कि जब भगतसिंह और सुषमा का इतना गहरा प्रेम था तो सुषमा का भगतसिंह को मारना विश्वास के योग्य न था और यह काम केवल रणवीर कर सकता है, क्योंकि अपनी इज्ज़त को बचाने के लिये ऐसा करना स्वाभाविक था।

सरकारी वकील के लिए रणवीर और सुषमा पर अपराध सिद्ध करना अत्यन्त सरल हो रहा था। परन्तु मनोहर के लिए अत्यन्त कठिनाई उपस्थित हो रही थी। उसनें सबसे प्रसिद्ध वकील दीवानचन्द और उनकी सहायता के लिए दूसरे प्रसिद्ध एडवोकेट श्यामचरन को नियुक्त किया था। मनोहर बाबू, राजकमल, दीवानचन्द और श्यामचरन घण्टों इसी मामले पर विवाद करते रहे। मनोहर बाबू ने इन सब से कहा कि इसमें जरा भी सन्देह नहीं कि रणवीर का इस कत्ल में कोई हाथ नहीं। सुषमा के विषय में वह यह न कह सकते थे। परन्तु दूध का गिलास जबरदस्त साक्षी का काम कर रहा था। भगतसिंह का

पोस्ट-मार्टम करने पर उसके शरीर के अन्दर से वही जहर निकला जो कि गिलास में था। हरदेवसिंह के घर से आने के एक घण्टे के अन्दर ही अन्दर भगतसिंह मर गया था।

दीवानचन्द बोले, "मुझे आज प्रयत्न कर लेने दीजिये।" वे सीधे सुषमा के पास गये, जो जेल में एक अलहदा कमरे में थी। वे उससे बोले,

"सुषमा! तुम एक बड़े खानदान की लड़की हो, और अपने पति के खानदान को बचाने के लिये हर उचित और सम्भव प्रयत्न करना तुम्हारा कर्तव्य है। यदि तुम चाहो तो अपने पति को बचा सकती हो, और तुम्हें हम बचा लेंगे।"

"कैसे?"

"तुम अदालत में यह बयान देदो कि भगतसिंह को विष मैंने दिया है।"

"परन्तु ईश्वर जानत है कि मैंने नहीं दिया।"

"सो तो हमें मालूम है। परन्तु उस दूध के गिलास में जो जहर मिला था, वह या तो तुमने मिलाया था या रणवीर ने।"

"वास्तव में वह विष तो भगतसिंह लाया था," उसके मुंह से अचानक निकल गया।

"भगतसिंह!" दीवानचन्द चिल्लाकर बोले। "किसके लिये?"

सुषमा खामोश हो गई।

"अब समझा! तुम दोनों रणवीर को मारना चाहते थे! परन्तु मर गया वह स्वयं, और तुम जीवित रहना चाहती हो।"

"वकील साहब" ! वह कांपती हुई बोली "वकील साबह ! व.......की.......ल.......सा .... !" फिर वह रुक गई।

"कहो, क्या कहना चाहती हो ?" वे बेरुखी से बोले।

"सारी आयु आपका उपकार न भूलूंगी।"

"उसी शर्त पर।"

"जो शर्त कहें वह स्वीकार है।"

"तो तुम आज यह बयान देना कि भगतसिंह को मैंने रण-वीर से छिपा कर दूध पिलाया जब वह सीधा मेरे कमरे में आया, और वह इस कारण कि मेरी सख्त बदनामी हो रही थी। वह बार-बार मना करने पर भी न मानता था।"

"ऐसा ही कह दूँगी।" उसने उदासीनता से कहा।

"यदि तुम ऐसा कह दोगी तो हम तुम्हें छुड़ाने का प्रयत्न करेंगे।"

"आप मुझे मत छुड़ाना। आप मुझे मरने दीजिये। मैं फांसी का दण्ड पाने की हक़दार हूँ। यह सब मेरे कारण हुआ। मैंने इतने पाप किये। इस प्रकार मर कर कुछ तो धुल सकेंगे, और वकील साहिब ! यदि आपने मुझे बचा भी लिया, तो उस जीवन का कोई लाभ न होगा। इससे मरना लाख दर्जे अच्छा है। मेरी सजा केवल मृत्यु है, मृत्यु।"

"परन्तु भगतसिंह को विष किसने दिया ? यह तो बतला दो।"

"वकील साहिब ! जब मैंने आपको इतना गम्भीर रहस्य बतला दिया तो क्या मैं यह बात न बतला सकती थी। भगत-

सिंह को मैंने जहर बिल्कुल नहीं दिया और रणवीर को इसकी कुछ खबर नहीं। वास्तव में भगतसिंह हमारे घर बाहर से ही जहर-भरा दूध पीकर आया था।"

दीवानचन्द हैरान और परेशान रह गये। सुषमा की बात सुनकर उन्हें इस बात का पक्का विश्वास हो गया कि वह बिल्कुल सच कह रही है। परन्तु फिर किसने जहर दिया! यह एक और समस्या थी।

अदालत में सुषमा के बयान सुनकर सब दङ्ग हो गये। उसने अपराध को स्वीकार कर लिया और कहा कि उसने भगतसिंह को इस कारण जहर दिया कि वह उससे मिलने से बाज न आता था। इस कारण उसके पति को इस सम्बन्ध की खबर होने का भय न था।

अदालत के लिये अब कोई कठिनाई न थी। रणवीर को बिल्कुल निर्दोषी ठहराकर छोड़ दिया गया, और सुषमा को आ-जन्म कारावास का दण्ड दिया गया।

दीवानचन्द ने इस फैसले के विरुद्ध बड़ी अदालत में अपील की, परन्तु एक सप्ताह के बाद सुषमा का हृदय की धड़कन बन्द होने के कारण देहावसान हो गया।

चौबीसवां परिच्छेद

जून का मास था। आकाश अङ्गारे बरसा रहा था। पृथ्वी आग उगल रही थी। वायु अग्नि की लपटें-सी फैला रही थी। मनोहर बाबू की बैठक में शरबत पार्टी चल रही थी। मनोहर, राजकमल, रणवीर और नीलिमा शरबत के गिलास संभाले बैठे थे। एक ओर एक नौकर खड़ा था। बाहर की सख्त गर्मी और अन्दर की ठण्डक में कितना अन्तर था। बाहर सख्त लू थी, अन्दर पंखे की ठण्डी हवा। बाहर लू की तेजी परेशान कर रही थी, अन्दर ख़स में से होकर आती हुई ठंडी हवा कितनी आनन्द-दायक थी। शरबत का घूंट लेते हुए, गिलास को मेज पर रखते हुए, नीलिमा बोली,

"राजकमलजी, काश्मीर जाने की बात पक्की हो गई?"

"हमारी तरफ़ से ता पक्की ही है।"

"कच्ची किसकी तरफ़ से है?"

"कामरेड रणवीर की तरफ़ से।"

इस पर सब अट्टहास कर उठे।

"क्यों कामरेड साहब, क्या यह ठीक है ?" नीलिमा देवी बोलीं।

"आधा ठीक है, आधा गलत।"

"कैसे ?" भाभी ने पूछा।

"मैं स्वयं नहीं जाना चाहता। परन्तु आप लोगों को रोकता नहीं।"

"यह बिल्कुल कामरेडों जैसी बात है।" राजकमल सिगरेट का बक्स खोलते हुए बोले।

"और मुझे इस बात का गर्व है कि हम लोग दूसरों के मार्ग में रुकावट बनना नहीं चाहते।"

"और दूसरों से रुकावट सहन नहीं कर सकते"। राजकमल सिगरेट सुलगाते हुए बोले।

"परन्तु एक दो मास के लिये तो आपके काम में रुकावट न होगी।" भाभी ने हँसी से समझाते हुए कहा।

"एक दो मास के लिये ?" रणवीर बोले। "यदि एक दो दिन न जाऊँ तो काम में बाधा आ जाती है। दूसरे, मैं तो लोगों को कठोर परिश्रम करने और कष्ट सहन करने की शिक्षा देता हूँ। फिर स्वयं मैं काश्मीर चला जाऊँ तो वे क्या कहेंगे ?"

"कुछ भी नहीं कहेंगे, आपको केवल भ्रम है।" भाभी बोलीं।

"भाभी !" रणवीर कहने लगा। "आप ऐसी बात हँसी में

कहती हैं, और मैं अत्यन्त गम्भीरता से। मेरे जाने से यहां के सारे काम रुक जावेंगे। अभी देखिये सब काम नये हैं। को-ऑपरेटिव सोसाईटी को बनाये अभी केवल दो मास ही हुए हैं, परन्तु अभी काम कितना शेष है। यह माना कि हमने आगामी फसल के लिये बीज इकट्ठा कर लिया है, और आवश्यकता के लिये 'अनाज फण्ड' भी जमा कर लिया है, परन्तु गोदाम अभी अपूर्ण दशा में ही पड़ा है, उसमें सीमेंट कराना है। यहाँ जिसको जो काम भी दिया जाय, वह पूरा नहीं करता और आलसी बन जाता है। माना कि खाद के गड्ढे खुद गये हैं, परन्तु अभी तो बहुत से लोगों को उनमें खाद तक जमा करना नहीं आता, और कुछ लोगों ने गाँव से भी अभी अपने खाद के ढेर नहीं उठवाये हैं। अभी एक दो गलियों की नालियाँ भी बननी हैं। इस समय लोगों को अवकाश है। इनसे काम लिया जा सकता है। यदि हम कल से ही तालाब की खुदाई आरम्भ करें, तब कहीं जाकर वर्षा से पूर्व काम समाप्त होगा, और अच्छी तरह से जमा किया हुआ पानी वर्ष-भर काम में आयगा। स्कूल और अस्पताल में भी तो कितना काम शेष है।"

"भाई, बात तो स्पष्ट यह है कि जब से तुम रूठे थे, हमारी किसी भी काम में रुचि न रही थी।" मनोहर बाबू बोले। "अब तुम आगये हो। जैसा कहोगे करेंगे।"

"वास्तव में हम लोग काम करने की शक्ति तो रखते हैं परन्तु अभ्यास नहीं, और अभ्यास उत्पन्न करने के लिये कठिन परिश्रम

की आवश्यकता है। अब देखिये न हमने को-ऑपरेटिव सोसाइटी की निगरानी में स्टोर खोला। परन्तु मेम्बरान पूरे तौर पर हिसाब की जाँच नहीं करते। अभी तक सब ही एक दूसरे पर सन्देह करते थे, अब वह धीरे-धीरे दूर हो रहा है। हमारा प्रोग्राम यह है कि वर्षा से पूर्व सारे मार्ग ठीक होजाने चाहियें। इसकी पूर्ति के लिये प्रत्येक किसान को आवश्यक है कि अपने अपने खेत के आगे का मार्ग ठीक करदे। वे इन्कार तो नहीं करते, परन्तु उन्हें जाकर उकसाना पड़ता है। तब कहीं जाकर वे काम करते हैं। इसी तरह नये वृक्ष उगाने का काम पड़ा है।"

"परन्तु कामरेड साहब!" राजकमल बोले। "एक बात तो मैं स्वीकार करता हूँ कि आपको इस काम में अभी दो माह ही हुए हैं, परन्तु सफलता बहुत दिख रही है। अब देखिये तब से एक भी मुकद्दमा अदालत में नहीं गया। पञ्चायत अपने काम को जिस योग्यता से कर रही है, उससे लोगों के दिलों में पञ्चायत की बहुत साख पैदा होगई है। लड़ाई झगड़े भी कम होगये हैं। इन दिनों देहाती बिल्कुल बेकार रहते थे। इसी कारण झगड़े बखेड़े भी होते रहते थे, परन्तु अब सब काम पर लगे हुए हैं। कोई रस्सी बुन रहा है, कोई टोकरी बना रहा है। कोई निवाड़ के काम में लगा हुआ है, तो कोई दरियाँ बुन रहा है। लोगों में काम का उत्साह और उसका महत्त्व प्रति-दिन बढ़ता जाता है।"

"परन्तु इसका स्वास्थ्य तो देखो, प्रति-दिन गिरता जा रहा है।" भाभी बोलीं। "अब तो मैं इसे एक सुन्दर बहू लाकर

दूँगी।"

"भाभी गाली मत दो," रणवीर गम्भीरता से बोला।

"देखो न इस मूर्ख को," भाभी राजकमल को संबोधित करके बोली, "शादी को गाली कहता है।"

"भाभी! शादी को तो नमस्कार करता हूँ। सात जन्म भी इसका नाम न लूंगा। शादी मनुष्य को कितना गिरा देती है!"

"तो तुम्हारा मतलब यह है कि तुम्हारे भैया मेरा गला घोंट दें, तभी ठीक है।"

"कुछ शादियां ऐसी अवश्य होती हैं, जो मनुष्य ही को नहीं, खानदान को भी ऊंचा उठाती हैं।"

"अब होगई भाभी की तारीफ़ शुरू।" मनोहर बाबू ने चुटकी ली।

"और आपको बहुत बुरी लगी होगी"! नीलिमा ने कहा।

"क्यों नहीं?" राजकमल बोले।

"आप लोगों को कौन पूछता है?" निलिमा बोली, "मैं अपने रणबीर को ऐसी लड़की लाकर दूँगी................"।

"जिसे देखते ही मूर्छा आ जाए और नाड़ी बन्द हो जाय," रणवीर बात काट कर बोला।

"हा! हा! हा!" राजकमल और मनोहर बाबू ने कमरा सिर पर उठा लिया।

"इसी बात पर भरो शरबत के गिलास", राजकमल नौकर से बोला।

गिलास भर दिये गए।

"परन्तु रणवीर! अब तुम न नहीं कर सकते। मैंने बात पक्की कर ली है।" भाभी बोलीं।

"चिन्ता मत कीजिये। मैं सारी बात ठीक कर दूँगा, और लड़की वालों को भी ऐसा उत्तर दूँगा कि फिर अमानतपुर की तरफ आने का नाम न लेंगे।"

"कैसे?"

"यहां तो सगाई बन्द कराने वाले पेशा-वर लोग मौजूद हैं। उन्हें रिश्वत दूंगा।"

"अब रिश्वतों का समय लद गया। अब जो ऐसा करता है, उसे पंचायत नहीं छोड़ती।"

"मैं किसी को पता न चलने दूँगा।"

"परन्तु रिश्वत देना अपराध है, और मैं राज खोल दूँगी।"

फिर बोली, "रणवीर! अब तुम्हें शादी करनी ही होगी।"

"भाभी", वह बोला, "तुम्हारे पांव पड़ता हूँ, और मैं तुम्हारी और भैया की सौगन्ध खाकर कहता हूँ कि शादी का नाम न लूंगा। अब मैंने अपने काम ही से शादी कर ली है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि जितना प्रेम मैं इससे करता हूँ उतना न कभी सुषमा से किया था, न किसी और से कर सकूंगा।"

सब मौन हो गये। बात इतनी प्रभावोत्पादक थी कि किसी को विरोध करने का साहस न हुआ।

—इति—